कल्किपुराणम्

हिन्दीभाषानुवादसहितम्

रामस्वरूप शर्मा

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

१२३

श्रीमहर्षि-वेदव्यास-प्रणीत—

कल्किपुराण

मूल और भाषानुवाद सहित

सम्पादक एवं व्याख्याकार

रामस्वरूप शर्मा

चौखम्बा विद्याभवन

वाराणसी

॥ श्रीः ॥

कल्किपुराण

भाषानुवादसहित।

प्रथमोऽध्यायः।

सेन्द्रा देवगणा मुनीश्वरजना लोकाः सपालाः सदा स्वं स्वं कर्म सुसिद्धये प्रतिदिनं भक्त्या भजन्त्युत्तमाः। तं विघ्नेशमनन्तमच्युतमजं सर्वज्ञसर्वाश्रयं वन्दे वैदिकतान्त्रिकादिविविधैः शास्त्रैः पुरो वन्दितम्॥ १ ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥२॥ यद्दोर्दण्डकरालसर्पकवलज्वालाज्वलद्विग्रहा नेतुः सत्कर-

---

इन्द्रसहित सब देवगण, श्रेष्ठ मुनीश्वरोंकी मण्डलियें, सब लोक और लोकपाल सदा अपने २ कामको सिद्ध करनेके लिये प्रतिदिन भक्तिके साथ जिनका भजन करते हैं, वैदिक और तांत्रिक आदि अनेकों ग्रन्थोंने जिनकी वन्दना सबसे पहले की है, उन अनन्त, अच्युत, अजन्मा, सर्वज्ञ और सबके आश्रय विघ्नेशको प्रणाम है ॥ १ ॥ नारायण, नर, नरोत्तम और सरस्वती देवीको प्रणाम करके इतिहास पुराण आदिका कीर्त्तन करे ॥ २ ॥ भूमण्डल पर अत्याचार करनेवाले राजे, जिन भगवान्‌के भुजदण्डरूप कराल सर्पके ग्रास बन उसकी विषमयी ज्वालासे

बालदण्डदलिताः भूपाः क्षितिक्षोभकाः । शश्वत् सैन्धववाहनो द्विजजनिः कल्किः परात्मा हरिः । पायात् सत्ययुगादिकृत् स भगवान् धर्मप्रवृत्तिप्रियः ॥ ३ ॥ इति सूतवचः श्रुत्वा नैमिषारण्यवासिनः । शौनकाद्या महाभागाः पप्रच्छुस्तं कथामिमाम् ॥ ४ ॥ हे सूत ! सर्वधर्मज्ञ ! लोमहर्षणपुत्रक ! । त्रिकालज्ञ ! पुराणज्ञ ! वद भागवतीं कथाम् ॥ ५ ॥ कः कलिः ? कुत्र वा जातो जगतामीश्वरः प्रभुः । कथं वा नित्यधर्मस्य विनाशः कलिना कृतः ? ॥ ६ ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा सूतो ध्यात्वा हरिं प्रभुम् । सहर्षपुलकोद्भिन्नसर्वाङ्गः

भस्मीभूत शरीरवाले और जिन मर्यादापालक भगवान्की श्रेष्ठ तलवारके पहारसे टुकडे २ होजायँगे ऐसे, ब्राह्मणवंश में जन्म लेने वाले और निरन्तर सिंधदेशके घोड़े पर सवार होकर फिर सत्ययुगके आरंभकर्त्ता, धर्मप्रचारके प्रेमी, परमात्मा, विष्णुरूप, जगत्प्रसिद्ध कल्किभगवान् हमारी और तुम्हारी रक्षा करें ॥ ३ ॥ नैमिषारण्यके निवासी महाभाग शौनकादिकोंने सूतजीकी इस बातको सुनकर उनसे इस आगे कहीजानेवाली कथाके विषयमें प्रश्न किया ॥ ४ ॥ हे लोमहर्षणके पुत्र सूतजी ! तुम सकल धर्मोंको और भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान इन तीनों कालकी घटनाओंको जानते हो तथा सकल पुराणोंको भी जानते हो, इसलिये आप हमें कोई भगवत्की कथा सुनाइये ॥ ५ ॥ सकल संसारका स्वामी बनकर प्रभुता चलानेवाला कलियुग कौन है, और कहाँ उत्पन्न हुआ है, उस कलियुगने नित्य धर्मका नाश कैसे करडाला ? ॥६॥ उनकी इस बातको सुनकर आनंदके मारे सूतजीके सब शरीर पर रोमाञ्च खड़े होगये और प्रभु

प्राह तान् मुनीन् ॥ ७ ॥ सूत उवाच । शृणुध्वमिदमाख्यानं भविष्यं परमाद्भुतम् । कथितं ब्रह्मणा पूर्वं नारदाय विपृच्छते ॥ ८ ॥ नारदः प्राह मुनये व्यासायामिततेजसे । स व्यासो निजपुत्राय ब्रह्मराताय धीमते ॥ ९ ॥ स चाभिमन्युपुत्राय विष्णुराताय संसदि । प्राह भागवतान् धर्मान्नष्टादशसहस्रकान् ॥ १० ॥ तदा नृपे लयं प्राप्ते सप्ताहे प्रश्नशेषिणम् । मार्कण्डेयादिभिः पृष्टः प्राह पुण्याश्रमे शुकः ११ तत्राहं तदनुज्ञातः श्रुतवानस्मि याः कथाः । भविष्याः कथयामीह पुण्या भागवतीः शुभाः ॥ १२ ॥ ताः शृणुध्वं महा-

श्रीहरिका ध्यान करके उन मुनियोंसे कहनेलगे ॥ ७ ॥ सूतजीने कहा, कि—आगेको होनेवाली, परम आश्चर्यसे भरी इस कथाको सुनो, यह बहुत समय पहले नारदजीके प्रश्न करने पर उनसे ब्रह्माजीने कही थी ॥ ८ ॥ नारदजीने यह कथा अपारतेजस्वी व्यासमुनिसे कही, उन व्यासदेवने अपने पुत्र बुद्धिमान् ब्रह्मरात (शुकदेव) से कही ॥ ९ ॥ उन्होंने भगवत्सम्बन्धी धर्मोंको अठारह सहस्र श्लोकोंमें भरीसभामें अभिमन्युके पुत्र विष्णुभक्त राजा परीक्षितको सुनाया ।१०। इसप्रकार सातदिन तक हरिचर्चा होनेके अनन्तर राजा परीक्षितका शरीर शान्त होगया, परन्तु प्रश्न पूरा नहीं हुआ, तब मार्कण्डेय आदि ऋषियोंने अपने पवित्र आश्रम में शुकदेवजीसे प्रश्न किया तब उन्होंने उत्तर देना आरम्भ किया ॥ ११ ॥ तहाँ मैंने मार्कण्डेय आदिकी आज्ञा पाकर जो आगेको होनेवाली कथायें सुनी थीं, उन भगवान्‌की मङ्गलरूप पवित्र कथाओंको यहाँ कहता हूं ॥ १२ ॥ हे महाभाग

भागाः ! समाहितधियोऽनिशम् । गते कृष्णे स्वनिलयं प्रादुर्भूतो यथा कलिः ॥ १३ ॥ प्रलयान्ते जगत्स्रष्टा ब्रह्मा लोकपितामहः । ससर्ज घोरं मलिनं पृष्ठदेशात् स्वपातकम् १४ स चाधर्म इति ख्यातस्तस्य वंशानुकीर्त्तनात् । श्रवणात् स्मरणाल्लोकः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १५ ॥ अधर्मस्य प्रिया रम्या मिथ्या मार्जारलोचना । तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी दम्भः परमकोपनः ॥ १६ ॥ स मायायां भगिन्यान्तु लोभं पुत्रश्च कन्यकाम् । निकृतिं जनयामास तयोः क्रोधः सुतोऽभवत् ॥१७॥ स हिंसायां भगिन्यान्तु जनयामास तं कलिम् । वामहस्त-

---

मुनियो ! तुम निरन्तर सावधानचित्त होकर उन कथाओंको सुनो, श्रीकृष्णके अपने धाम (वैकुंठ) को पधार जाने पर जैसे कलियुग प्रकट हुआ वह सुनाता हूँ ॥ १३ ॥ प्रलयकालका अन्त होनेपर जगत्को रचनेवाले लोकपितामह ब्रह्माजीने पीठमेंसे मलिन वर्णके भयानक पातकको रचा१४ वह अधर्म नामसे प्रसिद्ध हुआ, उस अधर्मके वंशका कीर्त्तन श्रवण और स्मरण करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटजाता है ॥ १५ ॥ अधर्मकी सुन्दरी स्त्रीका नाम मिथ्या था, उस की आँखें बिलावकीसी थीं, उसके अतितेजस्वी और महाक्रोधी स्वभावका दंभ नामक पुत्र हुआ ॥ १६ ॥ उस दम्भने अपनी माया नामवाली बहिनमें लोभनामक पुत्र और निकृति (शठता)नामकी कन्याको उत्पन्न किया, उन दोनों के सङ्गसे क्रोध नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १७ ॥ उसने हिंसा नामवाली अपनी बहिनमें उस कलिको उत्पन्न किया, जो बायें हाथमें उपस्थ (लिङ्ग)को पकड़े हुए, शरीरको

धृतोपस्थं तैलाभ्यक्ताञ्जनप्रभम् ॥१८॥ काकोदरं करालास्यं लोलजिह्वं भयानकम् ।। पूतिगन्धं द्यूतमद्यस्त्रीसुवर्णकृताश्रयम् ॥ १९ ॥ भगिन्यान्तु दुरुक्त्यां स भयं पुत्रञ्च कन्यकाम् । मृत्युं स जनयामास तयोश्च निरयोऽभवत् ॥ २० ॥ यातनायां भगिन्यान्तु लेभे पुत्रायुतायुतम् । इत्थं कलिकुले जाता बहवो धर्मनिन्दकाः ॥ २१ ॥ यज्ञाध्ययनदानादिवेदतन्त्रविनाशकाः । आधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयाश्रयाः२२ कलिराजानुगाश्चेरुर्यूथशो लोकनाशकाः । बभूवुः काल-

तेल मलेहुए और कज्जलकी समान कालाभुच था ॥१८॥ उसका पेट काककेसा, मुख विकराल, जिव्हा लपलपाती हुई देखनेमें डरावना, सड़ीहुई दुर्गन्धसे बसाहुआ और जुआ, मद्य, स्त्री (वेश्या) तथा सुवर्णको अपना घर बनाये हुए था ॥ १९ ॥ उसने दुरुक्ति (दुर्वचन कहना) नामक अपनी बहिनमें भय नामक पुत्र मृत्यु नामक कन्याको उत्पन्न किया, इन भय और मृत्युके समागमसे निरय (नरक) नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २० ॥ उसने यातना (नरककी तीव्र पीड़ा) नामकी बहिनमें कितनेही सहस्र पुत्र उत्पन्न किये, इसप्रकार कलिके कुलमें बहुतसे धर्मनिन्दक उत्पन्न होगये२१ वे सब यज्ञ, वेदपाठ, दान धर्मकर्मोंका लोप करनेवाले तथा वेद तन्त्र आदि शास्त्रोंका नाश करनेवाले थे और आधि (मनका कष्ट), व्याधि (शरीरकी पीड़ा), जरा (बुढ़ापा) ग्लानि, दुःख, शोक तथा भयको घर बनाकर रहने लगे२२ वे सब कलिराजकी आज्ञानुसार इकट्ठे होकर लोकोंका नाश करनेके लिये घूमनेलगे, तब मनुष्य धीरे२ भ्रष्ट होकर

विभ्रष्टाः क्षणिकाः कामुका नराः ॥ २३ ॥ दम्भाचारदुराचारास्तातमातृविहिंसकाः । वेदहीना द्विजा दीनाः शूद्रसेवापराः सदा ॥ २४ ॥ कुतर्कवादबहुला धर्मविक्रयिणोऽधमाः । वेदविक्रयिणो व्रात्या रसविक्रयिणस्तथा ॥ २५ ॥ मांसविक्रयिणः क्रूराः शिश्नोदरपरायणाः । परदाररता मत्ता वर्णसङ्करकारकाः ॥ २६ ॥ ह्रस्वाकाराः पापसाराः शठा मठनिवासिनः । षोडशाब्दायुषः श्यालबान्धवा नीचसङ्गमाः२७ विवादकलहक्षुब्धाः केशवेशविभूषणाः । कलौ कुलीना धनिनः पूज्या वार्द्धुषिका द्विजाः ॥ २८ ॥ संन्यासिनो

अल्पजीवी और कामपरायण होगये ॥ २३ ॥ पाखंडके लिये धर्मकर्मका दिखावा करनेवाले, दुराचारी और माता पिताको दुःख देनेवाले होगये, इनमें ब्राह्मण वेदविहीन, दीन और सदा शूद्रोंकी सेवामें तत्पर ॥ २४ ॥ प्रायः कुतर्क और विवाद करनेवाले, धर्मको वेचनेवाले, उचित समय पर संस्कार न होनेसे अधर्म, वेदको वेचनेवाले, संस्कारहीन और घी तैल आदि रसको वेचनेवाले ॥२५॥ मांसविक्रेता, क्रूर. स्त्रीसंभोग और पेट भरनेमेंही मग्न, परस्त्रियोंके प्रेमी, मद्यप, वर्णसङ्कर सन्तान उत्पन्न करने वाले ॥ २६ ॥ ठिगने, पापको बड़ी वस्तु माननेवाले, शठ, मठोंको घर बनानेवाले, सोलह वर्षकी परमायुवाले, सालोंको भाई माननेवाले, नीचोंका सङ्ग करनेवाले, ॥ २७ ॥ विवाद और कलह करके चित्तमें मलिनता (बुग्ज़) रखनेवाले, केश और वेषकी सजावट रखनेवाले कलियुगी ब्राह्मण धनवान् होनेसे कुलीन मानेजाते हैं और जो ब्राह्मण व्याज की आजीवका करते हैं वे बड़े प्रतिष्ठित मानेजाते हैं॥२८॥

गृहासक्ता गृहास्थास्त्वविवेकिनः। गुरुनिन्दापरा धर्मध्वजिनः साधुवञ्चकाः ॥ २९ ॥ प्रतिग्रहरताः शूद्रा परस्वहरणादराः। द्वयोः स्वीकारमुद्वाहः शठे मैत्री वदान्यता ॥ ३० ॥ प्रतिदाने क्षमाऽशक्तौ विरक्तिकरणाक्षमे। वाचालत्वञ्च पाण्डित्ये यशोऽर्थे धर्मसेवनम् ॥३१॥ धनाढ्यत्वञ्च साधुत्वे दूरे नीरे च तीर्थता। सूत्रमात्रेण विप्रत्वं दण्डमात्रेण मस्करी।३२।अल्पशस्या वसुमती नदीतीरेऽवरोपिता। स्त्रियो वेश्यालापसुखाः स्वपुंसा त्यक्तमानसाः ॥३३॥पराम्नलोलुपा विप्राश्चाण्डाल-

कलियुगमें संन्यासी घर बनाकर रहनेके अनुरागी, गृहस्थ, अविचारी, गुरुजनोंके निन्दक, धर्मका चिन्हमात्र धारण करनेवाले तथा साधुका स्वाँग भरकर लोगोंको ठगनेवाले होंगे ॥ २९ ॥ शूद्र प्रतिग्रह लेनेवाले और पराये धनको हरनेके उत्साही होंगे, वर कन्याका आपसमें स्वीकार करलेना ही विवाह माना जायगा, शठोंके साथ मित्रता होगी, बदलेमें कोई वस्तु देना ही दानीपना होगा, अशक्त होना क्षमा कहावेगी,कुछ न करसकनेवाले वैराग्यवान् होंगे, बहुत बकवाद करना पण्डिताई गिनी जायगी और प्रशंसा पानेके लिये लोग धर्मका सेवन करेंगे ॥३०॥३१॥ धनवान् पुरुष साधु माने जायँगे दूरका जल ही तीर्थ माना जायगा, कण्ठमें जनेऊमात्र होनेसे ही ब्राह्मण कहलावेगा, और हाथमें दण्डमात्र होनेसे ही संन्यासी कहलावेगा ।३२। पृथ्वी पर अन्न थोडा उत्पन्न होगा, और बहुधा नदीके तटपर ही खेती बोई जायगी कुलीन स्त्रियें वेश्याओंकी समान बातचीत करनेमें प्रसन्न होंगी, और अपने २ पतिमें मन नहीं लगावेंगी ॥ ३३ ॥ ब्राह्मण पराये अन्नके लोभी

गृहयाजकाः । स्त्रियो वैधव्यहीनाश्च स्वच्छन्दाचरणप्रियाः ३४ चित्रवृष्टिकरा मेघा मन्दसस्या च मेदिनी । प्रजाभक्ता नृपा लोकाः करपीड़ाप्रपीड़िताः ॥ ३५ ॥ स्कन्धे भारं करे पुत्रं कृत्वा क्षुब्धाः प्रजाजनाः । गिरिदुर्गं वनं घोरमाश्रयिष्यन्ति दुर्भगाः ॥ ३६ ॥ मधुमांसैर्मूलफलैराहारैः प्राणधारिणः । एवं तु प्रथमे पादे कलेः कृष्णविनिन्दकाः ॥ ३७ ॥ द्वितीये तन्नामहीनास्तृतीये वर्णसङ्कराः । एकवर्णाश्चतुर्थे च विस्मृताच्युतसत्क्रियाः॥३८॥निःस्वाध्यायस्वधास्वाहावौषडों-

---

होंगे, और चाण्डालोंके घर यज्ञ करावेंगे, स्त्रियें विधवा होकर विधवाधर्मका पालन नहीं करेंगी, किन्तु स्वेच्छाचारिणी होनेमें प्रसन्न रहेंगी ॥ ३४ ॥ मेघ विचित्र वर्षा करेंगे, पृथ्वी पर अन्न थोड़ा होगा,राजा प्रजाको पीडा देंगे और प्रजाके पुरुष करसे अत्यन्त पीडित होंगे ॥ ३५ ॥ प्रजाके हतभाग्य मनुष्य कन्धे पर भार धरे हाथमें पुत्रकी अंगुली पकड़े चित्तमें खिन्न होते हुए दुर्गम, पर्वत और घोर वनमें जाकर रहेंगे और मद्य, मांस, तथा फल मूल खाकर प्राण धारण करेंगे, कलिके प्रथम चरणमें यह दशा रहेगी और लोगं कृष्णनिन्दक होजायँगे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ तथा कलिकालके दूसरे चरणमें प्राणी कृष्णका नाम भी न लेंगे, तीसरे चरणमें वर्णसंकर होजायँगे और चौथे चरणमें सब एकाकार होजायँगे. और विष्णु भगवान्की आराधना करना एकसाथ भूल जायँगे ॥ ३८ ॥ आगेको अब होने वाली संसारकी दशाको भूतरूपसे वर्णन करते हैं, कि— पृथ्वी पर वेदपाठ, स्वधा, स्वाहा, वौषट्, और ओंकारका

कारवर्जिताः । देवा सर्वे निराहाराः ब्रह्माणं शरणं ययुः३९ धरित्रीमग्रतः कृत्वा क्षीणां दीनां मनस्विनीम् । ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं वेदध्वनिनिनादितम् ॥ ४० ॥ यज्ञधूमैः समाकीर्णं मुनिवर्यनिषेवितम् । सुवर्णवेदिकामध्ये दक्षिणावर्त्तमुज्वलम् ॥ ४१ ॥ वह्निं यूपाङ्कितोद्यानवनपुष्पफलान्वितम् । सरोभिः सारसैर्हंसैराह्वयन्तमिवातिथिम् ॥ ४२ ॥ वायुलोललताजालकुसुमालिकुलाकुलैः । प्रणामाह्वानसत्कारमधुरालापवीक्षणैः ॥ ४३ ॥ तद्ब्रह्मसदनं देवाः सेश्वराः क्लिन्नमानसाः । विविशुस्तदनुज्ञाता निजकार्यं निवेदितुम्॥४४॥

प्रचार न रहने पर सब देवता आहार न मिलनेसे कातर होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये, और क्षीण, दीन पृथ्वीदेवी को आगे करलिया, ब्रह्मलोकमें जाकर क्या देखते हैं कि-ब्रह्मलोक वेदध्वनिसे गूँज रहा है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ चारों ओर यज्ञका धूम उठ रहा है, बड़े २ महर्षि बैठे हैं. सुवर्ण की वेदीके मध्यमें उज्जल दक्षिणावर्त्त अग्नि शोभा पारहा है, जल-पुष्प-फल-आदिसे शोभायमान बगीचेमें यज्ञके लिये बहुतसे खम्भे गढे हुए हैं और वह बहुतसे सारस और हंसोंके शब्दवाले सरोवरोंके द्वारा मानो बटोहियोंको बुला रहा है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हंस और शारदोंके झुण्ड, वायुके वेगसे हिलते हुए लतासमूहके पुष्पों पर स्थित भ्रमरोंके समूहसे व्याकुल होकर मानो बटोहियोंके प्रति प्रणाम, आव्हान, सत्कार, मधुर भाषण और अवलोकन कररहे हैं ॥ ४३ ॥ इन्द्रसहित सब देवता अन्तःकरणमें दुःखी होते हुए उस ब्रह्मलोकमें पहुँचे और ब्रह्माजीकी आज्ञासे अपना

त्रिभुवनजनकं सदासनस्थं सनकसनन्दनसनातनैश्च सिद्धैः।
परिसेवितपादकमलं ब्रह्माणं देवता नेमुः ॥ ४५ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये कलि-
विवरणं नाम प्रथमोऽध्यायः।

सूत उवाच। उपविष्टास्ततो देवा ब्रह्मणो वचनात् पुरः। कलेर्दोषाद्धर्महानिं कथयामासुरादरात् ॥ १ ॥ देवानां तद्वचः श्रुत्वा ब्रह्मा तानाह दुःखितान्। प्रसादयित्वा तं विष्णुं साधयिष्यास्यभीप्सितम् ॥ २ ॥ इति देवैः परिवृतो गत्वा गोलोकवासिनम्। स्तुत्वा प्राह पुरो ब्रह्मा देवानां

कार्य निवेदन करनेके लिये तहाँ बैठ गये ॥ ४४ ॥ सनक सनन्दन—सनत्कुमार आदि सिद्ध जिनके चरणोंकी सेवा कर रहे हैं, जो सदा योगासन पर विराजमान रहते हैं उन ब्रह्माको सब देवताओंने प्रणाम किया ॥ ४५ ॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥ छ ॥ छ ॥

सूतजी बोले. कि-तदन्नतर ब्रह्माजीके कहनेसे सब देवता सन्मुख बैठकर आदरके साथ कहने लगे,कि-हे देव! कलि-युगके दोषोंसे धर्मकी बड़ी हानि होरही है॥१॥ देवताओंकी इस बातको सुनकर ब्रह्माजीने उन दुःखी देवताओंसे कहा, कि—जो भक्तोंके दुःख दूर करनेमें प्रसिद्ध हैं, चलो उन विष्णु भगवान्को प्रसन्न करके अपना कार्य सिद्ध करेंगे २ ऐसी सम्मति करके ब्रह्माजी देवताओंको साथ लिये हुए गोलोकमें विष्णु भगवान्के पास गये, और विष्णु भगवान्

हृदयेप्सितम् ॥ ३ ॥ तच्छ्रुत्वा पुण्डरीकाक्षो ब्रह्माणमिदम-
ब्रवीत् । शम्भले विष्णुयशसो गृहे प्रादुर्भवाम्यहम् । सुमत्यां
मातरि विभो ! कन्यायां त्वन्निदेशतः ॥ ४ ॥ चतुर्भिर्भ्रा-
तृभिर्देव ! करिष्यामि कलिक्षयम् । भवन्तो बान्धवा देवाः
स्वांशेनावतरिष्यथ ॥ ५ ॥ इयं मम प्रिया लक्ष्मीः सिंहलं
सम्भविष्यति बृहद्रथस्य भूपस्य कौमुद्यां कमलेक्षणा । भार्यायां
मम भार्येषा पद्मा नाम्नी जनिष्यति ॥६॥ यात यूयं भुवं देवाः
स्वांशावतरणे रताः।राजानौ मरुदेवापी स्थापयिष्याम्यहं भुवि७
पुनः कृतयुगं कृत्वा धर्मान् संस्थाप्य पूर्ववत् । कलिव्याल

की स्तुति करके पहले ब्रह्माजीने देवताओंके हृदयकी अभि-
लाषा निवेदन की ॥ ३ ॥ पुण्डरीकाक्ष विष्णु भगवान्ने
ब्रह्माजीकी इस बातको सुनकर उनसे कहा. कि–हे विभो !
तुम्हारे कहनेसे सम्भल नामक ग्राममें विष्णुयश ब्राह्मणके
घर सुमति नामा ब्राह्मणकन्याके गर्भसे अवतार लूँगा ४
हे ब्रह्मन् ! मैं अपने चार भ्राताओंको साथ लेकर कलियुग
का नाश करूँगा. हे देवताओं ! तुम भी अपने २ अंशसे
उत्पन्न होकर मेरे बन्धु बनोगे ॥ ५ ॥ यह मेरी प्रिया कमल
की समान नेत्रवाली लक्ष्मी बृहद्रथ राजाकी कौमुदी नाम
रानीके गर्भसे जन्म धारण करेगी और पद्मा नामसे प्रसिद्ध
होगी ॥ ६ ॥ हे देवताओं ! अब तुम अपने अंशसे पृथ्वी
पर जाकर जन्म लो, मैं कलियुगका नाश करके फिर मरु
और देवापि इन दो राजाओंका राज्य पृथ्वी पर स्थापित
करूँगा ॥ ७ ॥ फिर सत्ययुगको करके पहिलेकी समान
सनातन धर्मको स्थापित करूँगा, और कलिरूप सर्पका

सन्निरस्य प्रयास्ये स्वालयं विभो ! ।। ८ ।। इत्युदीरितमाकर्ण्य ब्रह्मा देवगणैर्वृतः । जगाम ब्रह्मसदनं देवाश्च त्रिदिवं ययुः ।। ९ ।। महिम्ना स्वस्य भगवान् निजजन्मकृतोद्यमः । विप्रर्षे ! शम्भलग्राममाविवेश परात्मकः ।। १० ।। सुमत्यां विष्णुयशसा गर्भमाधत्त वैष्णम् । ग्रहनक्षत्रराश्यादिसेवितश्रीपदाम्बुजम् ।। ११ ।। सरित्समुद्रा गिरयो लोकाः संस्थाणुजङ्गमाः । सहर्षा ऋषयो देवा जाते विष्णौ जगत्पतौ १२ बभूवुः सर्वसत्वानामानन्दा विविधाश्रयाः । नृत्यन्ति पितरो हृष्टास्तुष्टा देवा जगुर्यशः।।१३।।चक्रुर्वाद्यानि गन्धर्वा ननृतु-

नाश करके अपने धामको चला आऊँगा ।। ८ ।। विष्णु भगवान्के इस वचनको सुनकर ब्रह्माजी देवताओंके सहित ब्रह्मलोकको लौट गये, तदनन्तर देवता भी ब्रह्मलोकसे देवलोकको चले गये ।। ९ ।। हे ब्रह्मर्षे ! परमात्मा विष्णु भगवान् अपनी महिमासे अवतार लेनेका उद्योग करके सम्भल ग्राममें आपहुँचे ।। १० ।। और विष्णुयशके द्वारा सुमतिके उदरमें वैष्णव (जिसमें विष्णु–भगवान्का अंश था) गर्भ धारण कराया, ग्रह,नक्षत्र, राशि आदि सब ही इस गर्भमें स्थित बालकके चरणकमलोंकी सेवा करनेलगे?१ त्रिलोकीनाथ विष्णु भगवान्ने जिस समय जन्म लिया उस समय नदी, समुद्र, पर्वत, देवता, ऋषि और स्थावर जङ्गमरूप सम्पूर्ण प्राणी प्रसन्न हुए ।।१२।। सब प्राणी अपने २ चित्तमें अनेकों प्रकारके आनन्दका अनुभव करने लगे,पितर हर्षमें भरकर नृत्य करनेलगे, देवता संतुष्ट होकर विष्णुभगवान्के यशका गान करनेलगे ।। १३ ।। गंधर्व बाजे बजाने

अप्सरोगणाः ॥ १४ ॥ द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य माधवे मासि माधवः । जाते ददृशतुः पुत्रं पितरौ हृष्टमानसौ ॥१५॥ धातृमाता महाषष्ठी नाभिच्छेत्री तदम्बिका । गङ्गोदकक्लेद-मोक्षा सावित्री मार्जनोद्यता ॥ १६ ॥ तस्य विष्णोरनन्तस्य वसुधाऽधात् पयःसुधाम् । मातृका माङ्गल्यवचः कृष्णजन्म-दिने यथा ॥ १७ ॥ ब्रह्मा तदुपधार्याशु स्वाशुगं प्राह सेव-कम् । याहीति सूतिकागारं गत्वा विष्णुं प्रबोधय ॥ १८ ॥ चतुर्भुजमिदं रूपं देवानामपि दुर्लभम् । त्यक्त्वा मानुषवद्रूपं

लगे अप्सराओंके झुण्ड नृत्य करनेलगे ॥ १४ ॥ वैशाख मासके शुक्लपक्षको द्वादशीके दिन विष्णु भगवान्ने कल्कि रूपसे अवतार धारण किया, उस पुत्रको देखकर माता पिता चित्तमें अत्यंत प्रसन्न हुए ॥ १५ ॥ कल्कि भगवान् के अवतारके समय महाषष्ठी उनकी धातृमाता (धाई) हुई अम्बिका नाभिच्छेत्री (नाल काटनेवाली) हुई और सावित्री आकर गङ्गाजलसे शरीरको धोती हुई कल्कि भगवान्के शरीरको स्वच्छ करनेलगी ॥ १६ ॥ श्रीकृष्ण भगवान्के जन्म दिनकी समान उन अनन्त विष्णु भगवानका कल्कि अवतार होनेके दिन उनके लिये पृथ्वीने दुग्धरूप अमृत पिलाया मातृकायें माङ्गलिक वाक्योंके द्वारा आशीर्वाद देने लगीं ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी इस रहस्यको जानकर अपने शीघ्र-गामी सेवक पवनसे कहनेलगे, कि-तुम सूतिकागृहमें जाकर विष्णु भगवान्से प्रार्थना करो, कि—हे नाथ ! आप विचार कर देखें कि—आपकी इस चतुर्भुज मूर्त्तिका दर्शन देव-ताओंको भी दुर्लभ है, इसकारण आप इस रूपको त्याग

कुरु नाथ ! विचारितम् ॥ १९ ॥ इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा पवनः सुरभिः सुखम् । सशीतः प्राह तरसा ब्रह्मणो वचनादृतः २० तच्छ्रुत्वा पुण्डरीकाक्षस्तत्क्षणात् द्विभुजोऽभवत् । तदा तत् पितरौ दृष्ट्वा विस्मयापन्नमानसौ ॥ २१ ॥ भ्रमसंस्कारवत्तत्र मेनाते तस्य मायया । ततस्तु सम्भलग्रामे सोत्सवा जीवजातयः । मङ्गलाचारबहुलाः पापतापविवर्जिताः ॥ २२ ॥ सुमतिस्तं सुतं लब्ध्वा विष्णुं जिष्णुं जगत्पतिम् । पूर्णकामा विप्रमुख्यानाहूयादात् गवां शतम् ॥ २३ ॥ हरेः कल्याणकृद्विष्णुयशाः शुद्धेन चेतसा । सामर्ग्यजुर्विद्भिरग्र्यै-

मनुष्यकी समान रूप धारण करके अपने विचारे हुए काम को करिये ॥ १८॥ १९ ॥ सुखदायक सुगन्धियुक्त शीतल पवनने ब्रह्माजीके इस वचनको सुनकर शीघ्रतासे कल्कि भगवान्के सूतिकागृहमें जाकर ब्रह्माजीकी विनय सुनाई।।२०।। कमलनयन भगवान्ने उसको सुनकर तत्काल द्विभुजरूप धारण करलिया, उनके माता पिता इस घटनाको देखकर बड़े आश्चर्यमें होगये॥२१॥ और विष्णुभगवान्की मायासे मोहित होकर यह समझा कि—हमको चतुर्भुज रूपकी भ्रान्ति होगई थी, वास्तवमें द्विभुज रूप ही था, तदनन्तर सम्भलके रहनेवाले सब जातियोंके पुरुष उत्सव मनाने लगे सब ही पापताप रहित होकर अनेकों प्रकारके मङ्गलाचार करनेलगे ॥ २२ ॥ सुमति त्रिलोकीनाथ जयशील विष्णु भगवान्को पुत्ररूपसे पाकर पूर्णमनोरथ हुई और ब्राह्मणों को बुलाकर एक सौ गौ दान कीं ॥ २३ ॥ विष्णुयशने भगवान्के कल्याणकी इच्छासे शुद्धचित्त होकर प्रधान २

स्तन्नामकरणे रतः ॥ २४ ॥ तदा रामः कृपो व्यासो द्रौणिर्भिक्षुशरीरिणः । समायाता हरिं द्रष्टुं बालकत्वमुपागतम् ॥ २५ ॥ तानागतान् समालोक्य चतुरः सूर्यसन्निभान् । हृष्टरोमा द्विजवरः पूजयाञ्चक्र ईश्वरान् ॥ २६ ॥ पूजितास्ते स्वासनेषु संविष्टाः स्वसुखाश्रयाः । हरिं क्रोडगतं तस्य ददृशुः सर्वमूर्त्तयः ॥ २७ ॥ तं बालकं नराकारं विष्णुं नत्वा मुनीश्वराः । कल्किं कल्कविनाशार्थमाविर्भूतं विदुर्बुधाः ॥ २८ ॥ नामाकुर्वंस्ततस्तस्य कल्किरित्यभिविश्रुतम् । कृत्वा संस्कारकर्माणि ययुस्ते हृष्टमा-

---

ऋग्वेदी यजुर्वेदी और सामवेदी ब्राह्मणोंसे उनका नामकरण कराया ॥ २४ ॥ उस समय राम, कृपाचार्य, व्यास और अश्वत्थामा यह सब ब्राह्मणोंका रूप धारण करके बालभावको प्राप्त हुए कल्किरूप श्रीहरिका दर्शन करनेको आये ॥ २५ ॥ ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ विष्णुयशने सूर्यकी समान चारों श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको आया हुआ देखकर पुलकितशरीर हो प्रार्थना और पूजा करी ॥ २६ ॥ नाना रूप धारण करने वाले वे राम, कृपाचार्य आदि विष्णुयशसे पूजित होकर अपने २ आसन पर सुखसे बैठे और पिताकी गोदमें कल्किरूप श्री हरिका दर्शन करनेलगे ॥ २७ ॥ उन मुनियोंमें श्रेष्ठ राम कृपाचार्य आदिने मनुष्याकार बालकरूप विष्णु भगवान्‌को नमस्कार करके पृथ्वीके पापरूप मलोंको दूर करनेके निमित्त प्रकट हुए कल्किरूपको जाना ॥ २८ ॥ उन्होंने इस बालकका प्रसिद्ध कल्कि नाम रक्खा, और जातकर्मादि संस्कार करके चित्तमें प्रसन्न होते हुए वहाँसे चले गये २९

नसाः ॥ २६ ॥ ततः स ववृधे तत्र सुमत्या परिपालितः । कालेनाल्पेन कंसारिः शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ ३० ॥ कल्के-र्ज्येष्ठास्त्रयः शूराः कविप्राज्ञसुमन्त्रकाः । पितृमातृप्रियकरा गुरुविप्रप्रतिष्ठिताः ॥ ३१ ॥ कल्केरंशाः पुरोजाताः साधवो धर्मतत्पराः । गार्ग्यभर्ग्यविशालाद्या ज्ञातयस्तदनुव्रताः ॥३२॥ विशाखयूपभूपालपालितास्तापवर्जिताः । ब्राह्मणाः कल्कि-मालोक्य परां प्रीतिमुपागताः ॥ ३३ ॥ ततो विष्णुयशाः पुत्रं धीरं सर्वगुणाकरम् । कल्किं कमलपत्राक्षं प्रोवाच पटना-दृतम् ॥ ३४ ॥ तात ! ते ब्रह्मसंस्कारं यज्ञसूत्रमनुत्तमम् ।

तदनन्तर जिसप्रकार शुक्लपक्षमें चन्द्रमा बढ़ता है तिसीप्रकार सुमति नामक माताके पालन किये हुए कल्कि भगवान् थोड़े ही कालमें बड़े होगये ॥ ३० ॥ कल्कि भगवान्के पहिले उन से बड़े तीन भ्राता और उत्पन्न हुए थे, उन तीनोंके नाम कवि, प्राज्ञ और सुमन्त्र थे, तीनों परम शूर और गुरुका तथा पिता माताका प्रिय कार्य करने वाले थे, सम्पूर्ण गुरु और ब्राह्मण इनकी प्रशंसा करते थे ॥ ३१ ॥ गार्ग्य, भर्ग्य और विशाल आदि धर्मात्मा साधु पुरुष पहले उन कल्कि भगवान् के गोत्रमें ही उत्पन्न हुए, ये सब कल्कि भगवान्के अंश और आज्ञाकारी थे ॥ ३२ ॥ इन सबका विशाखयूप राजाने पालन किया था यह सब ब्राह्मण कल्कि भगवान्का दर्शन करके सन्तापरहित और परम प्रसन्न हुए ॥ ३३ ॥ कि—तदनन्तर विष्णुयशने धैर्यवान् सब गुणोंकीखान कमल-लोचन कुमार कल्किको विद्या सीखनेके योग्य देखकर कहा ३४ हे पुत्र ! अब तुम्हारा उत्तम उपनयन संस्कार करके गायत्री

सावित्रीं वाचयिष्यामि ततो वेदान् पठिष्यसि ॥ ३५ ॥
कल्किरुवाच । को वेदः का च सावित्री केन सूत्रेण संस्कृताः।
ब्राह्मणा विदिता लोके तत्तत्त्वं वद तात ! माम् ॥ ३६ ॥
पितोवाच । वेदो हरेर्वाक् सावित्री वेदमाता प्रतिष्ठिता ।
त्रिगुणञ्च त्रिवृत् सूत्रं तेन विप्राः प्रतिष्ठिताः ॥ ३७ ॥
दशयज्ञैः संस्कृता ये ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः । तत्र वेदाश्च
लोकानां त्रयाणामिह पोषकाः ॥ ३८ ॥ यज्ञाध्ययनदानादि-
तपःस्वाध्यायसंयमैः । प्रीणयन्ति हरिं भक्त्या वेदतन्त्र-
विधानतः ॥ ३९ ॥ तस्मात् यथोपनयनकर्मणोऽहं द्विजैः सह ।

का उपदेश दिलवाऊँगा, फिर तुम वेदाध्ययन करना ॥३५॥
यह सुनकर कल्कि भगवान् कहनेलगे, कि—हे पितः ! वेद किस
को कहते हैं ? और गायत्री कौन वस्तु है ? तथा कैसे सूत्रसे
संस्कारित होने पर जगत्में ब्राह्मण नामसे प्रसिद्धि होसकती है?
इसका सब तत्त्व मुझे बताइये॥३६॥पिता विष्णुयश कहने
लगे कि—हे पुत्र ! भगवान्का वाक्य ही वेद है, सावित्री वेद-
माता नामसे प्रसिद्ध है, त्रिगुणसूत्रमें ब्रह्मग्रन्थि लगाकर
त्रिगुणित करने पर उपवीत होता है, ब्राह्मण इस (जनेऊ)
को धारण करके प्रतिष्ठाके पात्र हैं ॥ ३७ ॥ जिन ब्राह्मणोंके
दश संस्कार होते हैं, उन वेदपाठी ब्राह्मणोंमें ही त्रिलोकीके
वेदोंकी रक्षा होती है ॥३८॥ ब्राह्मण ही यज्ञ, वेदपाठ, दान,
तप, स्वाध्याय, और जितेन्द्रियपनके द्वारा वैदिक और
तांत्रिक विधिके अनुसार भक्तिपूर्वक श्रीहरिको प्रसन्न करते
हैं ॥ ॥ ३९ ॥ इसकारण मैं शुभ दिन देखकर बान्धवजन
और ब्राह्मणोंके साथ बैठकर तुम्हारा उपनयन संस्कार करना

संस्कर्तुं बान्धवजनैस्त्वामिच्छामि शुभे दिने ॥ ४० ॥ पुत्र उवाच । के च ते दश संस्कारा ब्राह्मणेषु प्रतिष्ठिताः । ब्राह्मणाः केन वा विष्णुमर्चयन्ति विधानतः ॥ ४१ ॥ पितोवाच । ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातो गर्भाधानादिसंस्कृतः । सन्ध्यात्रयेण सावित्रीपूजाजपपरायणः ॥ ४२ ॥ तपस्वी सत्यवान् धीरो धर्मात्मा त्राति संसृतिम् । विष्णवर्चनमिदं ज्ञात्वा सदानन्दमयो द्विजः ॥ ४३ ॥ पुत्र उवाच । कुत्रास्ते स द्विजो येन तारयत्यखिलं जगत् । सन्मार्गेण हरिं प्रीणन् कामदोग्धा जगत्त्रये ॥ ४४ ॥ पितोवाच । कलिना बलिना धर्मघातिना द्विजपातिना । निराकृता धर्मरता गता वर्षान्त-

---

चाहता हूँ ॥ ४० ॥ पुत्रने कहा, कि—हे पितः ! ब्राह्मण जिन दश संस्कारोंसे प्रतिष्ठा पाते हैं वे दश संस्कार कौनसे हैं ? और ब्राह्मण किस विधिसे विष्णु भगवान्का पूजन करते हैं ? ॥ ४१ ॥ पिताने कहा, कि—जो ब्राह्मणसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न होकर गर्भाधान आदि दश संस्कारोंसे संस्कृत होता है तीनों सन्ध्याओंमें गायत्रीका जप और पूजन करता है, जो तपस्वी, सत्यवादी, धैर्यवान् और धर्मात्मा होता है वह विष्णु भगवान्के पूजनकी विधिको जानकर सर्वदा आनन्दमय रहता है तथा अन्य प्राणियोंकी संसारसागरसे रक्षा करता है ॥ ४२ ॥४३॥ यह सुनकर पुत्रने कहा, कि—जो सन्मार्गमें स्थित होकर विष्णु भगवान्को प्रसन्न करता है जो त्रिलोकी के मनोरथोंको पूर्ण करता है और जो इस सम्पूर्ण जगत्का उद्धार करता है वह ब्राह्मण कहाँ है ? ॥ ४४ ॥ यह सुनकर पिताने कहा, कि—जो धर्मात्मा ब्राह्मण हैं वे इस समय बाह्य-

रान्तरम् ॥ ४५ ॥ ये स्वल्पतपसो विप्राः स्थिताः कलियुगान्तरे । शिश्नोदरभृतोऽधर्मनिरता विरतक्रियाः ॥ ४६ ॥ पापसारा दुराचारास्तेजोहीनाः कलाविह । आत्मानं रक्षितुं नैव शक्ताः शूद्रस्य सेवकाः ॥४७॥ इति जनकवचो निशम्य कल्किः कलिकुलनाशमनोऽभिलाषजन्मा । द्विजनिजवचनैस्तद्रोपनीतो गुरुकुलवासमुवास साधुनार्थः ॥ ४८ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये कल्कि-
जन्मोपनयनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सूत उवाच । ततो वस्तुं गुरुकुले यान्तं कल्किं निरीक्ष्य सः । महेन्द्राद्रिस्थितो रामः समानीयाश्रमं प्रभुः ॥१॥ प्राह

द्वेषी, धर्मनाशक बलवान् कलियुगसे तिरस्कार पाकर भारतवर्षसे अन्यत्र चले गये हैं ।४५। जो थोडी तपस्या वाले हैं वे ब्राह्मण कलियुगके अधिकारमें हैं परंतु वे मैथुन और पेट भरनेमें तत्पर, अधर्म करनेमें आसक्त, वैदिक कर्मोंसे रहित, पापात्मा, दुराचारी तेजोहीन, और शूद्रोंकी सेवा करने वाले होगये हैं, वे इस कलियुगमें अपनी रक्षा नहीं करसकते॥४६॥ ॥ ४७ ॥ कलियुगके वंशका नाश करनेकी इच्छासे जिन्होंने जन्म लिया था वह भक्तपालक कल्कि भगवान् पिताके इस वचनको सुनकर और पिताके तथा अन्य ब्राह्मणोंके पढेहुए वेदमन्त्रोंसे उपनीत होकर गुरुकुलमें वास करनेको चलेगये ॥ ४८ ॥ दूसरा अध्याय समाप्त ॥

सूतजी कहते हैं, कि-तदनन्तर, कल्कि भगवान् गुरुकुलमें वास करनेको जाते हैं, यह देखकर महेन्द्र पर्वत पर रहनेवाले प्रभावशाली परशुराम उनको अपने आश्रममें लेआये ॥ १ ॥

त्वां पाठयिष्यामि गुरुं मां विद्धि धर्मतः । भृगुवंशसमुत्पन्नं जामदग्न्यं महाप्रभुम् ॥ २ ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञं धनुर्वेदविशारदम् । कृत्वा निःक्षत्रियां पृथ्वीं दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ३ महेन्द्राद्रौ तपस्तप्तुमागतोऽहं द्विजात्मज ! । त्वं पठात्र निजं वेदं यच्चान्यच्छास्त्रमुत्तमम् ॥ ४ ॥ इति तद्वच आश्रुत्य संप्रहृष्टतनूरुहः । कल्किः पुरो नमस्कृत्य वेदाधीती ततोऽभवत् ॥ ५ ॥ साङ्गं चतुःषष्टिकलं धनुर्वेदादिकञ्च यत् । समधीत्य जामदग्न्यात् कल्किः प्राह कृताञ्जलिः ॥ ६ ॥ दक्षिणां प्रार्थय विभो ! या देया तव सन्निधौ । यया मे सर्वसिद्धिःस्याद् या स्यात् त्वत्तोषकारिणी ७रामउवाच।ब्रह्मणा

और कहा, कि–मैं तुमको पढ़ाऊँगा, तुम मुझे धर्मसे गुरु जानो मैं परमप्रभावशाली जमदग्निका पुत्र हूँ और मेरा जन्म भृगुवंश में हुआ है ॥ २ ॥ चारों वेद और व्याकरण आदि छः अङ्गों के तत्त्वोंको मैं जानता हूँ, धनुर्वेदको तो मैं अद्वितीय जानता हूँ मैंने पृथ्वी क्षत्रियहीन करके ब्राह्मणोंको दक्षिणामें देदी थी तदनन्तर मैं तप करनेको महेन्द्र पर्वत पर चला आया,हे ब्राह्मणकुमार ! तुम यहाँ वेद तथा जिस शास्त्रको पढ़नेकी इच्छा हो मेरे पास पढ़ो ॥ ४ ॥ परशुरामजीके इस वचनको सुनकर कल्किजीका रोम २ प्रसन्न होगया और परशुरामजीको नमस्कार करके उनसे वेद पढ़नेका प्रारम्भ करदिया ॥५॥ कल्कि भगवान् परशुरामजीसे चौंसठ कलाओंऔर अङ्गों सहित वेद तथा धनुर्वेद आदि पढ़कर हाथ जोड़ेहुए कहने लगे ॥ ६ ॥ कि-हे-प्रभो! अब कहिये आपको क्या दक्षिणा दूँ,जिससे मुझे सम्पूर्ण सिद्धि और आपको सन्तोष प्राप्त हो ? ॥ ७ ॥ परशु-

प्रार्थितो भूमन! कलिनिग्रहकारणात्। विष्णुः सर्वाश्रयः पूर्णः स जातः शम्भले भवान् ॥ ८ ॥ मत्तो विद्यां शिवादस्त्रं लब्ध्वा वेदमयं शुकम्। सिंहले च प्रियां पद्मां धर्मान् संस्थापयिष्यसि ॥ ९ ॥ ततो दिग्विजये भूपान् धर्महीनान् कलिप्रियान्। निगृह्य बौद्धान् देवापिं मरुञ्च स्थापयिष्यसि॥१०॥ वयमेतैस्तु सन्तुष्टाः साधुकृत्यैः सदक्षिणाः। यज्ञं दानं तपः कर्म करिष्यामो यथोचितम् ॥ ११ ॥ इत्येतत् वचनं श्रुत्वा नमस्कृत्य मुनिं गुरुम्। विल्वोदकेश्वरं देवं गत्वा तुष्टाव शङ्करम् ॥ १२ ॥ पूजयित्वा यथान्यायं शिवं शान्तं महे-

रामजी बोले, कि-हे महात्मन्! पहले ब्रह्माजीने कलियुगका नाश करनेके लिये सर्वाधार पूर्णरूप विष्णु भगवान्से प्रार्थना की थी, वही आप सम्भल ग्राममें प्रकट हुए हो ॥ ८ ॥ तुम मुझसे विद्या, शिवजीसे अस्त्र, और वेदमूर्त्ति शुकको पा तथा सिंहलद्वीपमें प्रिया पद्माके साथ विवाह करके सनातनधर्मकी स्थापना कराोगे ॥ ९ ॥ फिर तुम दिग्विजयके करतेमें धर्महीन कलियुगप्रिय राजाओंका पराजय करके और बौद्धधर्मावलम्वी पुरुषोंका नाश करके और देवापि और मरुको राज्य पर स्थापन करोगे ।१०। हम इन सत्कर्मोंसे ही सन्तुष्ट होजायँगे, और इसको ही दक्षिणा समझेंगे, क्योंकि धर्मकी स्थापना होनेपर हम यथोचित यज्ञ, दान और तप आदि कर्म करसकेंगे ॥११॥ इस प्रकार परशुरामजीकी बातें सुनकर और तिन परशुरामजी को नमस्कार करके विल्वोदकेश्वर देवदेव महादेवजीके समीप गये और उनकी स्तुति करनेलगे ।१२। तिन शान्त मूर्ति शीघ्र प्रसन्न होनेवाले शिवजीका विधिपूर्वक पूजन और साष्टांग

श्वरम् । प्रणिपत्याशुतोषं तं ध्यात्वा प्राह हृदि स्थितम् १३ कल्किरुवाच । गौरीनाथं विश्वनाथं शरण्यं भूतावासं वासुकी-कण्ठभूषम् । त्र्यक्षं पञ्चास्यादिदेवं पुराणं वन्दे सान्द्रानन्द-सन्दोहदक्षम् ॥ १४ ॥ योगाधीशं कामनाशं करालं गङ्गा-सङ्गक्लिन्नमूर्द्धानमीशम् । जटाजूटाटोपरिक्षिप्तभावं महाकालं चन्द्रभालं नमामि ॥ १५ ॥ श्मशानस्थं भूतवेतालसङ्गं नाना-शस्त्रैः खड्गशूलादिभिश्च । व्यग्रात्युग्रा बाहवो लोकनाशे यस्य क्रोधोद्भूतलोकोऽस्तमेति ॥ १६ ॥ यो भूतादिः पञ्च-भूतैः सिसृक्षुः तन्मात्रात्मा कालकर्मस्वभावैः । प्रहृत्येदं प्राप्य

प्रणाम करके हृदयमें ध्यान करते हुए कहने लगे १३ कल्कि भगवान् बोले, कि—जो गौरीपति विश्वनाथ सबके अनन्य रक्षक और भूतगणोंके आश्रय हैं, वासुकि सर्प जिनके कण्ठ का भूषण है, जिनके तीन नेत्र और पाँच मुख हैं, उन सांद्र आनंदसंदोह (मुक्तिसुख) देनेवाले पुराणपुरुष आदिदेव को नमस्कार है ॥ १४ ॥ जो योगके स्वामी कामका नाश करनेवाले और जो करालरूप हैं, जिनका मस्तक गङ्गाके सङ्ग से गीला रहता है, जिनके जटाजूटकी अपूर्व शोभा है, ऐसे महाकालरूप चंद्रभाल शिवजीको मेरा प्रणाम है ॥ १५ ॥ जो सदा भूतगण और वेतालोंके साथ श्मशानमें वास करते हैं, जिनके हाथोंमें खड्ग शूल आदि अनेकों अस्त्र शस्त्र शोभा देते हैं, और प्रलयकालमें जिनके क्रोधसे उत्पन्न हुई अग्निमें सम्पूर्ण लोक अस्त होजाते हैं, जो भूतादि कहिये तामस अह-ङ्काररूप हैं, और पञ्चतन्मात्रारूप होकर अदृष्ट तथा कालके साथ सृष्टिकी रचना करते हैं, जो जीवरूपको प्राप्त होकर सब

जीवत्वमीशो ब्रह्मानन्दो रमते तं नमामि ॥ १७ ॥ स्थितौ विष्णुः सर्वजिष्णुः सुरात्मा लोकान् साधून धर्मसेतून् बिभर्ति । ब्रह्माद्यांशे योऽभिमानी गुणात्मा शब्दाद्यङ्गैस्तं परेशं भजामि १८ यस्याज्ञया वायवो वान्ति लोके ज्वलत्यग्निः सविता याति तप्यन् । शीतांशुः खे तारकैः सग्रहैश्च प्रवर्त्तते तं परेशं प्रपद्ये १९ यस्याश्वासात् सर्वधात्री धरित्री देवो वर्षत्यम्बु कालः प्रमाता। मेरुर्मध्ये भुवनानाञ्च भर्त्ता तमीशानं विश्वरूपं नमामि २० इति कल्किस्तवं श्रुत्वा शिवः सर्वात्मदर्शनः । साक्षात् प्राह हसन्नीशः पार्वतीसहितोऽग्रतः ॥२१॥ कल्केः संस्पृश्य हस्तेन

असत् पदार्थोंको त्याग ब्रह्मानंदमें मग्न रहते हैं, तिन शिवजीको मेरा प्रणाम है ॥१६॥१७॥ जो जगत्की रक्षाके लिये देवात्मा सर्वविजयी, विष्णुरूपको धारण करके धर्मके सेतुरूप साधु पुरुषोंकी रक्षा करते हैं, और जो शब्दादि रूपसे गुणात्मा होकर ब्रह्माभिमानी होते हैं, तिन शिवजीको मेरा ।नमस्कार है ॥ १८ ॥ जिनकी आज्ञासे जगत्में पवन चलता है, अग्नि प्रज्वलित होता है, सूर्य ताप और प्रकाश फैलाता हुआ विचरता है, चंद्रमा, ग्रह और तारागण आकाशमें प्रकाशित होते हैं, तिन शिवजीकी मैं शरण हूँ ॥ १९ ॥ जिनकी आज्ञासे पृथ्वी सम्पूर्ण विश्वको धारण करलेती है, इंद्र देवता वर्षा करते हैं, काल कार्योंका विभाग करता है और सम्पूर्ण विश्व का आधाररूप मेरु मध्यमें स्थित रहता है, तिन विश्वरूप शिव जीको मेरा नमस्कार है ।२०। सर्वज्ञ शिवजी कल्कि भगवान् की इस स्तुतिको सुनकर पार्वतीके साथ साक्षात् प्रकट होगये और मुसकराकर कहनेलगे ॥ २१ ॥ शिवजीने पहिले प्रीति

समस्तावयवं मुदा । तमाह वरय श्रेष्ठावरं यत्तेऽभिकांक्षितम् २२
त्वया कृतमिदं स्तोत्रं ये पठन्ति जना भुवि । तेषां सर्वार्थसिद्धिः
स्यादिह लोके परत्र च॥२३॥ विद्यार्थी चाप्नुयाद्विद्यां धर्मार्थी
धर्ममाप्नुयात् । कामानवाप्नुयात् कामी पठनाच्छ्रवणादपि २४
त्वं गारुडमिदं चाश्वं कामगं बहुरूपिणम् । शुकमेनञ्च सर्वज्ञं
मया दत्तं गृहाण भोः २५ सर्वशास्त्रास्त्रविद्वांसं सर्ववेदार्थपारगम् ।
जयिनं सर्वभूतानां त्वां वदिष्यन्ति मानवाः २६ रत्नत्सरुं करा-
लञ्च करवालमहाप्रभम् । गृहाण गुरुभारायाः पृथिव्या भार-

पूर्वक हाथसे कल्कि भगवान्के सम्पूर्ण अङ्गोंको छूकर कहा, कि–हे श्रेष्ठ ! तुम्हारी जो इच्छा हो वही वरदान माँगलो ॥२२॥ तुमने जो यह स्तुति की है भूतल पर तुम्हारी की हुई इस स्तुतिको जो पुरुष पढ़ेंगे, इस लोक और परलोकमें उन के सब कार्य सिद्ध होंगे ॥ २३ ॥ यदि विद्यार्थी पाठ करेगा तो विद्या पावेगा धर्मका इच्छुक धर्म पावेगा, और जो भोग्य वस्तुओंकी चाहनासे पाठ करेगा उसको भोग्य वस्तुओंकी प्राप्ति होगी, मनुष्य जो २ इच्छा करके तुम्हारे इस स्तोत्रका पाठ करेगा अथवा श्रवण करेगा उसको वे सम्पूर्ण कामनायें प्राप्त होंगी॥२४॥ यह घोडा गरुड़के अंशसे उत्पन्न हुआ है और यह चाहे तहाँ जासकता है तथा अनेकों रूप धारण करने वाला है, यह शुक (तोता) भी सर्वज्ञ है, यह घोडा और शुक तुम्हें देता हूँ इनको ग्रहण करो ॥२५॥ इस घोड़े और शुकके प्रभावसे सब पुरुष तुमको सर्वशास्त्रज्ञ, सम्पूर्ण अस्त्रविशारद, सर्ववेदपारदर्शी और सर्वविजयी कहैंगे ॥ २६ ॥ यह विक-राल तलवार देता हूँ इसको लो, इसकी मूठ रत्नजटित

साधनम् ॥ २७ ॥ इति वच आश्रुत्य नमस्कृत्य महेश्वरम् । शम्भलग्राममगमत् तुरगेण त्वरान्वितः ॥ २८ ॥ पितरं मातरं भ्रातॄन् नमस्कृत्य यथाविधि । सर्वं तद्वर्णयामास जामदग्न्यस्य भाषितम् ॥ २९ ॥ शिवस्य वरदानञ्च कथयित्वा शुभाः कथाः । कल्किः परमतेजस्वी ज्ञातिभ्योऽप्यवदन्मुदा ॥ ३० ॥ गार्ग्यभर्ग्यविशालाद्यास्तच्छ्रुत्वा नन्दिताः स्थिताः । कथोपकथनं जातं शम्भलग्रामवासिनाम् ॥ ३१ ॥ विशाखयूपभूपालः श्रुत्वा तेषाञ्च भाषितम् । प्रादुर्भावं हरेर्मेने कलिनिग्रहकारकम् ३२ माहिष्मत्यां निजपुरे यागदानतपोव्रतान् ।

है, यह अतिप्रभाववाली है, यह तलवार ही महाभार युक्त पृथ्वीका भार दूर करनेमें साधन होगी ॥ २७ ॥ कल्कि भगवान्ने विल्वोदकेश्वरके इस कथनको सुनकर उनको नमस्कार किया और उस घोड़े पर चढ़कर शीघ्रही सम्भल ग्रामको चलेगये ।२८। तहाँ पहुंच पिता–माता और भ्राताओंको प्रणाम करके परशुरामजी का कहा हुआ सब वृत्तान्त सुनाया २९ परमतेजस्वी कल्किभगवान् शिवजीसे प्राप्त हुए वरदानकी बात क्रमसे उनको सुनाकर चित्तमें प्रसन्न होते हुए अपनी जातिके ब्राह्मणोंके पासगये और उनके सामने वह सब मङ्गल-समाचार कहा ॥ ३० ॥ गार्ग्य, भर्ग्य, विशाल आदि कल्कि भगवान्के इस सब वृत्तान्तको सुनकर प्रसन्न हुए, फिर संभल ग्राममें रहनेवाले पुरुषोंमें परस्पर केवल इस बातकी ही चर्चा होनेलगी ॥ ३१ ॥ विशाखयूप राजाने उनके इस सब वृत्तान्तको पुरुषोंके मुखसे सुना और यह जानलिया, कि-कलिका नाश करनेको श्रीहरिने अवतार धारण किया है ३२

ब्राह्मणान क्षत्रियान् वैश्यान् शूद्रानपि हरेः प्रियान् ॥ ३३ ॥ स्वधर्मनिरतान् दृष्ट्वा धर्मिष्ठोऽभून्नृपः स्वयम् । प्रजापालः शुद्धमनाः प्रादुर्भावाच्छ्रियः पतेः ॥ ३४ ॥ अधर्मवंश्यास्तान् दृष्ट्वा जनान् धर्मक्रियापरान् । लोभानृतादयो जग्मुस्तद्देशात् दुःखिता भृशम् ॥३५॥ जैत्रं तुरगमारुह्य खड्गञ्च विमलप्रभम् । दंशितः सशरं चापं गृहीत्वागात् पुराद्बहिः ३६ विशाखयूपभूपालः प्रायात् साधुजनप्रियः । कल्किं द्रष्टुं हरेरंशमाविर्भूतञ्च शम्भले ॥ ३७ ॥ कविं प्राज्ञं सुमन्तुञ्च पुर-

राजा विशाखायूपने देखा, कि-अपनी माहिष्मती नगरीमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र सबही यज्ञ करनेवाले दान देनेवाले, तप करनेवाले और व्रतधारी होगये हैं ॥ ३३ ॥ लक्ष्मीपति भगवान्‌का अवतार होनेपर सबको ही धर्म्ममें तत्पर देखकर राजा आप भी धर्म्मपरायण होगया, उस समय वह निर्मल अन्तःकरणसे प्रजाका पालन करनेलगा ३४ जो धर्म्महीनोंके वंशमें उत्पन्न हुए थे, उनको भी निरन्तर धर्म्मके कामोंमें मन लगाते हुए देख लोभ मिथ्याभाषण आदि कलियुगके कुटुम्बी अंतःकरणमें दुःखित हो उस देशको छोड़ भागे ॥३५॥ तदनन्तर कल्कि भगवान् निर्मल-कान्तियुक्त खड्ग और धनुष बाणको ले तथा कवचको पहरकर जयशाली घोड़े पर चढ़ नगरसे बाहर निकले ॥ ३६॥ और साधु पुरुषोंको प्यारा राजा विशाखयूप सम्भल ग्राममें श्रीहरिके अंशरूप कल्कि भगवान्‌को प्रकट हुआ जानकर दर्शन करने को आया ॥ ३७ ॥ उसने देखा, कि-जिसप्रकार देवराज इन्द्र देवताओंको साथ लेकर उच्चैःश्रवा घोड़े पर सवार होता

स्कृत्य महाप्रभम् । गार्ग्यभर्ग्यविशालैश्च ज्ञातिभिः परिवारितम् ॥ ३८ ॥ विशाखयूपो ददृशे चन्द्रं तारागणैरिव । पुराद्वहिः सुरैर्यद्वदिन्द्रमुच्चैःश्रवःस्थितम् ॥ ३९ ॥ विशाखयूपोऽवनतः सम्प्रहृष्टतनूरुहः । कल्केरालोकनात् सद्यः पूर्णात्मा वैष्णवोऽभवत् ॥ ४० ॥ सह राज्ञा वसन् कल्किः धर्मानाह पुरोदितान् । ब्राह्मणक्षत्रियविशामाश्रमाणां समासतः ॥४१॥ ममांशान् कलिविभ्रष्टानिति मज्जन्मसङ्गतान् ।राजसूयाश्वमेधाभ्यां मां यजस्व समाहितः ॥ ४२ ॥ अहमेव परोलोको धर्मश्चाहं सनातनः । कालस्वभावसंस्कारः कर्मानुगतयो मम ४३

है और जिसप्रकार चन्द्रमा तारागणोंसे घिराहुआ होता है, तिसी प्रकार कवि प्राज्ञ, सुमन्त आदि कान्तिमान् पुरुषोंके साथ और गार्ग्य, भर्ग्य, विशाल आदि जातिके पुरुषोंसे घिरे हुए कल्कि भगवान् घोड़े पर चढ़ेहुए आरहे हैं ३८-३९ राजा विशाखयूपने कल्कि भगवान्का दर्शन करके पुलकितशरीर होकर प्रणाम किया और कल्कि भगवान्के अनुग्रहसे तत्काल पूर्ण विष्णुभक्त होगया ॥ ४० ॥ कल्कि भगवान्ने कुछ दिनों पर्यन्त राजा विशाखयूपके साथ निवास किया और संक्षेपसे पहिले वर्णन किएहुए ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्योंके वर्णाश्रमधर्मका इस प्रकार वर्णन किया ॥ ४१ ॥ कि-मेरे अंशरूप धर्म्मात्मा पुरुष कलिकालमें भ्रष्ट होगये थे, वे इस समय मेरा अवतार होनेसे सब धर्म्मपरायण और इकट्ठे होगये हैं, सो अब तुम सावधान होकर राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंसे मेरी आराधना करो ॥ ४२ ॥ मैं ही परमलोक और मैं ही सनातनधर्म्म हूं; धर्म अधर्मरूप अदृष्ट काल और स्वभाव कर्म तथा संस्कार मेरे ही अनुगामी हैं ४३

सोमसूर्यकुले जातौ देवापिमरुसंज्ञकौ। स्थापयित्वा कृतयुगं कृत्वा यास्यामि सद्गतिम् ॥ ४४ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा राजा कल्कि हरिं प्रभुम्। प्रणम्य प्राह सद्धर्मान् वैष्णवान् मनसेप्सितान्॥४५॥ इति नृपवचनं निशम्य कल्किः कलिकुलनाशनवासनावतारः। निजजनपरिषद्विनोदकारी मधुरवचोभिराह साधुधर्मान् ॥४६॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये कल्कि-
वरलाभनामकस्तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सूत उवाच। ततः कल्किः सभामध्ये राजमानो रविर्यथा। बभाषे तं नृपं धर्ममयो धर्मान् द्विजप्रियान् ॥ १ ॥ कल्किरुवाच। कालेन ब्रह्मणो नाशे प्रलये मयि सङ्गता। अहमेवा-

मैं चंद्रवंशी और सूर्यवंशी देवापि तथा मरु इन दोनों राजाओं को राज्यसिंहासन पर स्थापन करके फिर सत्ययुगका स्थापन करता हुआ वैकुण्ठ लोकको जाऊँगा ॥४४॥ राजा विशाखयूप कल्कि भगवान्की इस बातको सुनकर और उनको नमस्कार करके अपनी इच्छाके अनुसार वैष्णवधर्म विषयक प्रश्न करनेलगा ॥४५॥ कलिके कुलका नाश करनेकी वासना से अवतार लेने वाले कल्कि भगवान् राजाके इस कथनको सुनकर अपने सेवकोंका मन प्रसन्न करनेके निमित्त मधुर वाणीसे साधुओंका धर्म वर्णन करने लगे ॥ ४६ ॥ तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

सूतजी कहते हैं, कि-हे ऋषियो! तदनंतर धर्मरूप कल्कि भगवान् सभामें सूर्यकी समान विराजमान होकर उस राजा से ब्राह्मणोंके प्रिय धर्मोंको कहनेलगे ॥ १ ॥ कल्कि भगवान् बोले, कि-जब समय आने पर महाप्रलय होगा, जिस

समेवाग्रे नान्यत् कार्यमिदं मम ॥ २ ॥ प्रसुप्तलोकतन्त्रस्य द्वन्हीनस्य चात्मनः । महानिशान्ते रन्तुं मे समुद्भूतो विराट् प्रभुः ॥ ३ ॥ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । तदङ्गजोऽभवत् ब्रह्मा वेदवक्त्रो महाप्रभुः ॥४॥ जीवोपाधेर्ममांशाच्च प्रकृत्या मायया स्वया । ब्रह्मोपाधिः स सर्वज्ञो मम वाग्वेदशासितः ॥ ५ ॥ ससर्ज जीवजातानि कालमायांशयोगतः । देवा मन्वादयो लोकाः सप्रजापयः प्रभुः ॥ ६ ॥ गुणिन्या मायांशा ये नानोपाधौ ससर्जिरे । सोपाधय इमे

समय ब्रह्मा भी लय होजायँगे, उस समय सम्पूर्ण जगत् मेरे में ही लीन होगा, पहिले केवलमैं ही था; और कुछ नहीं था ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण प्राणी और सब पदार्थ मुझसेही उत्पन्न हुए हैं ॥ २ ॥ जिस समय सम्पूर्ण जगत् हुआ सोया था जिस समय परमात्मासे भिन्न कोई भी वस्तु नहीं थी, उस महारात्रिके अंतमें सृष्टि रचनारूप क्रीडा करनेको मेरा विराट रूप प्रकट हुआ था ॥ ३ ॥उस विराटरूप पुरुषके हजार मस्तक, हजार नेत्र, और हजार चरण थे, तिस विराट पुरुष के शरीरसे वेदमुख परमप्रभावशाली ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ ४ ॥ उन सर्वज्ञ ब्रह्माजीने मेरे वाक्यरूप वेदकी आज्ञा पाकर जीवात्मा और पुरुष नामक मेरे अंशसे तथा अपनी मायारूप प्रकृतिके द्वारा मेरे अंशरूप कालकी सहायता से जीवोंकी रचना करनेका आरम्भ किया, पहिले प्रजापति मनु आदि मनुष्य और देवताओंकी सृष्टि हुई ॥ ५ ॥६ ॥ यद्यपि ये सब मेरे ही अंश हैं, परन्तु सत्व, रज, और तम इन तीन गुणोंसे युक्त मायाके बलसे नानाप्रकारकी उपा-

लोका देवाः सस्थाणुजङ्गमाः ॥ ७ ॥ ममांशा मायया सृष्टा यतो मय्याविशन् लये । एवंविधा ब्राह्मणा ये मच्छरीरा मदात्मिकाः ॥ ८ ॥ मामुद्धरन्ति भवने यज्ञाध्ययनसत्क्रियाः । मां प्रसेवन्ति शंसन्ति तपोदानक्रियास्विह ॥ ९ ॥ स्मरन्त्यामोदयन्त्येव नान्ये देवादयस्तथा । ब्राह्मणा वेदकारो वेदा मे मूर्त्तयः पराः ॥ १० ॥ तस्मादिमे ब्राह्मणजास्तैः पुष्टास्त्रिजगज्जनाः । जगन्ति मे शरीराणि तत्पोषे ब्रह्मणो वरः ११ तेनाहं तान् नमस्यामि शुद्धसत्त्वगुणाश्रयः । ततो जगन्मयं पूर्व

धियोंको धारण करते हैं, उस मायासे ही सम्पूर्ण देवता, सम्पूर्ण लोक, और स्थावर जङ्गम आदि सब ही नामरूप को प्राप्त हुए हैं ॥ ७ ॥ जो मायाके बलसे उत्पन्न हुए हैं वे मेरे ही अंश हैं, और मेरेमें ही लीन होंगे; ये सब ब्राह्मण मुझरूप ही हैं ॥ ८ ॥ जो ब्राह्मण यज्ञ अध्ययन आदि सत्कर्म करते हैं वे इस लोकमें मेरा उद्धार करते हैं- जो तप-दान आदि सत्कर्म करते समय मेरे नामोंका कीर्त्तन करते हैं, और मेरी सेवामें प्रेम करते हैं वे मेरा उद्धार, करते हैं ॥ ९ ॥ वेदवक्ता ब्राह्मण जिसप्रकार मेरा स्मरण कर सकते हैं, और मुझे प्रसन्न कर सकते हैं उसप्रकार देवता तथा और कोई भी नहीं करसक्ता है, क्योंकि-वेद ही मेरी सबसे उत्तम मूर्त्ति है ॥ १० ॥ ये वेद ब्राह्मणोंके द्वाराही प्रकाशित हुए हैं, इन वेदोंसे पृथ्वीतलके सब मनुष्योंकी रक्षा होती है, सब प्राणी मेरा ही शरीर है, इसकारण मेरे शरीरका पालन करनेमें ब्राह्मण ही मुख्य साधन हैं ॥ ११ ॥ इसकारण मैं शुद्ध सत्त्वगुणका आश्रय लेकर ब्राह्मणोंको नमस्कार करता हूं,

मां सेवन्तेऽखिलाश्रयाः ॥ १२ ॥ विशाखयूप उवाच । विप्रस्य लक्षणं ब्रूहि त्वद्भक्तिः का च तत्कृता । यतस्तवानुग्रहेण वाग्बाणा ब्राह्मणाः कृताः ॥ १३ ॥ कल्किरुवाच । वेदा मामीश्वरं प्राहुरव्यक्तं व्यक्तिमत्परम् । ते वेदा ब्राह्मणमुखे नानाधर्मे प्रकाशिताः ॥ १४ ॥ यो धर्मो ब्राह्मणानां हि सा भक्तिर्मम पुष्कला । तयाहं तोषितः श्रीशः सम्भवामि युगे युगे १५ ऊर्ध्वन्तु त्रिवृतं सूत्रं सधवानिर्मितं शनैः । तन्तुत्रयमधोवृत्तं यज्ञसूत्रं विदुर्बुधाः ॥ १६ ॥ त्रिगुणं तद्ग्रन्थियुक्तं वेदप्रवरसंमितम् । शिरोधरात् नाभिमध्यात् पृष्ठार्द्धपरिमाणकम् ॥१७॥

सबके आश्रयरूप ब्राह्मण भी मुझे जगत्रूप मानकर सेवा करते हैं ॥१२॥ भगवान्के कथनको सुनकर राजा विशाखयूप बोला, कि हे भगवन् ! ब्राह्मणोंके क्या २ लक्षण हैं ? और ब्राह्मण आपकी कैसी भक्ति करते हैं ? जो आपकी कृपासे उन ब्राह्मणोंके वाक्यही बाणरूप होते हैं यह कहिये ॥ १३ ॥ श्रीकल्कि भगवान् बोले, कि–जो वेद मुझे सम्पूर्ण चराचर पदार्थोंसे श्रेष्ठ ईश्वर कहते हैं तिन वेदोंके ब्राह्मणोंके मुखोंमें होनेसे अनेकों प्रकारसे धर्मका प्रकाश होता है ॥१४॥ ब्राह्मणाका जो धर्म है वह ही मेरी निर्मल भक्ति है उस भक्तिसे प्रसन्न होकर मैं लक्ष्मी सहित युगयुगमें अवतार धारण करता हूं ॥ १५ ॥ सौभाग्यवती ब्राह्मणी त्रिगुणित करके सूत्रको बटै, उस सूत्रको त्रिवृत् (तिहैरा) करके ग्रन्थि देलेय, इसको यज्ञोपवीत कहते हैं ॥ १६ ॥ वेद और प्रवरोंके अनुसार ग्रन्थियोंसे युक्त उस यज्ञोपवीनको तिहैरा धारण करै, और उसको पीठके आधे भागमें गलेसे

यजुर्विदां नाभिमितं सामगानामधः दिधिः । वामस्कन्धेन विधृतं यज्ञसूत्रं बलप्रदम् ॥१८॥ मृद्भस्मचन्दनाद्यैस्तु धारयेत् तिलकं द्विजः । भाले त्रिपुण्डं कर्माङ्गं केशपर्यन्तमुज्ज्वलम् ॥ १९ ॥ पुण्ड्रमङ्गुलिमानन्तु त्रिपुण्ड्रं तत् त्रिधा कृतम् । ब्रह्मविष्णु-शिवावासं दर्शनात् पापनाशनम् ॥ २० ॥ ब्राह्मणानां करे स्वर्गा वाचो वेदा करे हविः । गात्रे तीर्थानि रागाश्च नाडीषु प्रकृतिस्त्रिवृत् ॥२१॥ सावित्री कण्ठकुहरा हृदयं ब्रह्मसंज्ञितम् । तेषां स्तनान्तरे धर्मः पृष्ठोऽधर्मः प्रकीर्त्तितः ॥ २२ ॥ भूदेवा ब्राह्मणा राजन् ! पूज्या वन्द्या सदुक्तिभिः । चतुराश्रम्य-

---

नाभिपर्य्यन्त लटकता रक्खै ॥१७॥ यजुर्वेदी ऐसा यज्ञोप-वीत धारण करैं,सामवेदियोंका यज्ञोपवीत नाभिसे नीचा होना चाहिये, यह विधि है, वायें कन्धे पर धारण कियाहुआ यज्ञोप-वीत बलदायक होता है ॥ १८ ॥ ब्राह्मण मृत्तिका भस्म और चन्दन आदिका तिलक धारण करैं, और ललाटसे शिखा पर्यन्त धर्म कर्मके अङ्गरूप उज्ज्वल त्रिपुण्ड्रको धारण करैं ॥ १९ ॥ अंगुलीकी तुल्य पुण्ड्र त्रिगुणित करने पर त्रिपुण्ड्र कहलाता है, यह त्रिपुण्ड्र ब्रह्मा विष्णु और शिवका निवासस्थान है, इसका दर्शन करनेसे पापोंका नाश होता है ॥ २० ॥ स्वर्ग ब्राह्मणोंके हाथमें है, उनके वाक्यमें वेद, हाथमें हव्य, शरीरमें सम्पूर्ण तीर्थ और धर्मानुराग तथा नाभि में त्रिगुणरूप प्रकृति विद्यमान रहती है, ॥ २१ ॥ सावित्री उनके कंठछिद्रमें रहती है और उनका अन्तःकरण ब्रह्मरूप है, उनके हृदयमें धर्म और पृष्ठदेशमें अधर्म कहा है ॥ २२ ॥ हे राजन् ! ब्राह्मण पृथ्वीतलके देवता हैं, इस कारण उनकी

कुशला मम धर्मप्रवर्त्तकाः ॥ २३ ॥ बालाश्चापि ज्ञानवृद्धास्तपोवृद्धा मम प्रियाः । तेषां वचः पालयितुं अवतारः कृता मया ॥ २४ ॥ महाभाग्यं ब्राह्मणानां सर्वपापप्रणाशनम् । कलिदोषहरं श्रुत्वा मुच्यते सर्वतो भयात् ॥२५॥ इति कल्किवचः श्रुत्वा कलिदोषविनाशनम् । प्रणम्य तं शुद्धमनाः प्रययौ वैष्णवाग्रणीः ॥ २६ ॥ गते राजनि सन्ध्यायां शिवदत्तशुको बुधः । चरित्वा कल्किपुरतः स्तुत्वा तं पुरतः स्थितः ॥२७॥ तं शुकं प्राह कल्किस्तु सस्मितं स्तुतिपाठकम् । स्वागतं भवता

पूजा और सुन्दर वचनोंके द्वारा सत्कार करना चाहिये विशेष कर ब्राह्मण गृहस्थ आदि चारों वर्णोंकी स्थापना कर भगवद्-धर्मोंका प्रचार करते हैं ॥ २३ ॥ ब्राह्मणोंमें जो बालक हो वह भी ज्ञानियोंमें तथा तपस्वियोंमें वृद्ध और मेरा प्रिय होता है, मैंने ब्राह्मणोंके वाक्यकी रक्षा करनेके लिये ही अवतार धारण किये हैं।२४।जो पुरुष ब्राह्मणोंके परमभाग्यरूप इस इतिहासको सुनते हैं उनके सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं और कलियुगके दोषोंसे छूटजाते हैं, तथा किसीप्रकार का भी भय उनको नहीं सताता है ॥ २५ ॥ परम विष्णुभक्त विशाखयूप कल्कि भगवान्के मुखसे कलियुगके दोषोंको दूर करनेवाले इस इतिहासको सुनकर शुद्धचित्तसे नमस्कार करके चलागया २६ राजा विशाखयूपके चले जानेपर सायङ्कालके समय परमपंडित शिवका दिया शुक सारे दिन विचरकर कल्कि भगवान्के पास आया और स्तुति कर उनके सन्मुख खड़ा हो गया ॥ २७ ॥ कल्कि भगवान् शुकको स्तुति करतेहुए देखकर मुसकराते हुए कहनेलगे, कि-तुम अच्छे आये,तुम किस

कस्माद्द देशात् किं खादितं ततः । २८॥ शुक उवाच । शृणु नाथ ! वचो मह्यं कौतूहलसमन्वितम् । अहं गतश्च जलधेर्मध्ये सिंहलसंज्ञके ॥ २९ ॥ यथावृत्तं द्वीपगतं तच्चित्रं श्रवणप्रियम् । बृहद्रथस्य नृपतेः कन्यायाश्चरितामृतम् ॥ ३० ॥ कौमुद्यामिह जाताया जगतां पापनाशनम् । चरितं सिंहले द्वीपे चातुर्वर्ण्यजनावृते ॥ ३१ ॥ प्रासादधर्मसदनपुरराजिविराजिते । रत्नस्फाटिककुड्यादिस्वर्लताभिर्विभूषिते ॥ ३२ ॥ स्त्रीभिरुत्तमवेषाभिः पद्मिनीभिः समावृते । सरोभिः सारसैर्हंसैरुपकूलजलाकुले ॥३३॥ भृङ्गरङ्गप्रसङ्गाढ्ये पद्मैः कल्हारकुन्दकैः । नाना-

---

देशसे आये और वहाँ क्या आहार किया ? ॥ २८ ॥ यह सुन शुकने कहा,कि-हे नाथ ! मैं एक कुतूहलकी बात कहता हूँ उसको सुनिये, मैं समुद्रके मध्यमें सिंहलद्वीपमें गया था ॥ २९ ॥ उस द्वीपका वृत्तान्त बडा ही चमत्कारी था, उस द्वीपके रहनेवाले बृहद्रथ राजाकी एक कन्या है उसका चरित्र अमृतकी समान श्रवण करनेमें बडा ही मधुर है॥ ३० ॥वह कन्या कौमुदी नामक राजरानीके गर्भसे उत्पन्न हुई है. उसके चरित्रका श्रवण करने पर जगत्के पाप दूर होजाते हैं, सिंहलद्वीपमें ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चारों वर्ण रहते हैं ३१ राजाओंके महल सुन्दर अटारी, रमणीय गृह और नगर शोभा देरहे हैं कहीं रत्नमय और कहीं स्फटिककी दीवारें अपूर्व शोभा पारही हैं, जहाँ तहाँ सुनहरी लतायें शोभा देरही हैं॥३२॥चारों ओर उज्वल वेशवालीं पद्मिनी कामिनी निवास करती हैं स्थान २ में सरोवर हैं, उनमें सारस और हंसोंके समूह तीर पर बैठ क्रीड़ा करते हैं,चारों ओर कमल

म्बुजलताजालवनोपवनमण्डिते ॥ ३४ ॥ देशे बृहद्रथो राजा महाबलपराक्रमः । तस्य पद्मावती कन्या धन्या रेजे यशस्विनी ॥ ३५ ॥ भुवने दुर्लभा लोकेऽप्रतिमा वरवर्णिनी । काममोहकरी चारुचरित्रा चित्रनिर्मिता ॥ ३६ ॥ शिवसेवापरा गौरी यथा पूज्या सुसम्मता । सखीभिः कन्यकाभिश्च जपध्यानपरायणा ३७ ज्ञात्वा ताञ्च हरेर्लक्ष्मीं समुद्भूतां वराङ्गनाम् । हरः प्रादुरभूत् साक्षात् पार्वत्या सह हर्षितः ॥३८॥ सा तमालोक्य वरदं शिवं गौरीसमन्वितम् । लज्जिताधोमुखी

कल्हार और कुन्दके पुष्पों पर भ्रमरोंके समूह झङ्कार करते हैं, चारों ओर कमलवन और लताओंके प्रतान तथा वगीचे शोभा देरहे हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ऐसे स्थान पर वह महाबली पराक्रमी बृहद्रथ राजा रहता है, उसकी शोभामयी कन्या चित्रमें लिखी हुई लक्ष्मीकी समान, परमधन्य यशस्विनी, पद्मावती नामवाली है, ऐसा कन्यारत्न तीनों लोकमें भी मिलना दुर्लभ है, उस कन्याका चरित्र बड़ा ही रमणीय है, विधाताने उसको ऐसी बनाया है कि-उसको देखनेसे मालूम होता है, कि-यह कामदेवके मनको मोहित करनेवाली मानों रति ही है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ वाल्यावस्थामें सखियोंके सहित शिवजीकी सेवा करनेमें तत्पर पार्वती जिसप्रकार सबकी पूज्य और माननीय थीं, तिसीप्रकार वह कन्या भी सखियों के तथा अन्य कन्याओंके सहित जप ध्यान आदि करनेमें तत्पर रहती है ॥ ३७ ॥ जब शिवजीने जाना, कि—यह वराङ्गी विष्णुभगवान्की प्रिया लक्ष्मीने अवतार लिया है, उसी समय हृदयमें प्रसन्न होकर पार्वतीके सहित प्रकट हो

किञ्चिन्नोवाच पुरतः स्थिता ॥३९॥हरस्तामाह सुभगे ! तव नारायणः पतिः। पाणिं ग्रहीष्यति मुदा नान्यो योग्यो नृपात्मजः ॥ ४० ॥ कामभावेन भुवने ये त्वां पश्यन्ति मानवाः । तेनैव वयसा नार्यो भविष्यन्त्यपि तत्क्षणात् ॥ ४१ ॥ देवासुरास्तथा नागा गन्धर्वाश्चारणादयः । त्वया रन्तुं यथाकाले भविष्यन्ति किल स्त्रियः ॥ ४२ ॥ विना नारायणं देवं त्वत्पाणिग्रहणार्थिनम् । गृहं याहि तपस्त्यक्त्वा भोगायतनमुत्तमम् ॥ ४३ ॥ मा क्षोभय हरेः पत्नि ! कमले ! विमलं कुरु । इति दत्त्वा वरं सोमस्तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥ ४४ ॥ हरवरमिति

गये ॥ ३८ ॥ वह पद्मावती पार्वतीसहित महादेवजीको वर देनेको प्रकट हुआ देखकर लज्जासे नीचेको मुख किये चुप चाप खडी होगई ॥ ३९ ॥ तब भूतपति महादेवजी उससे कहनेलगे, कि—हे सुभगे ! श्रीनारायण तुम्हारे पति होंगे वह प्रसन्नचित्तसे तुम्हारा पाणिग्रहण करेंगे और कोई राजकुमार तुम्हारे योग्य नहीं है ॥ ४० ॥ इस लोकमें जो पुरुष कामवासनायुक्त मनसे तुम्हारा दर्शन करेंगे, तत्काल उस अवस्थाकी ही स्त्री होजायँगे ॥४१॥ देवता, दैत्य, नाग. गन्धर्व.चारण आदि तथा और जो पुरुष तुम्हारे साथ सहवास करनेकी इच्छा करेंगे, निःसन्देह तत्काल स्त्रीरूप हो जायँगे ॥ ४२ ॥ परन्तु तुम्हारा पाणिग्रहण करना चाहने वाले श्रीनारायणको यह शाप नहीं लगेगा, अतः तुम तपस्याको त्यागकर घरको जाओ सकल सुख भोगोंके योग्य इस कोमल शरारको क्लेशित मत करो, हे विष्णुप्रिये ! हे कमले ! इस शरीरको निर्म्मल करा, मृत्युञ्जय महादेवजी

सा निशम्य पद्मा समुचितमात्ममनोरथप्रकाशम्। विकसित-वदना प्रणम्य सोमं निजजनकालयमाविवेश रामा ॥ ४५ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये हरवर-प्रदाननामकश्चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

शुक उवाच । गते बहुतिथे काले पद्मां वीक्ष्य बृहद्रथः । निरूढ़यौवनां पुत्रीं विस्मितः पापशङ्कया ॥ १ ॥ कौमुदीं प्राह महिषीं पद्मोद्वाहेऽत्र कं नृपम् । वरयिष्यामि सुभगे! कुलशील-समन्वितम् ॥ २ ॥ सा तमाह पतिं देवी शिवेन प्रतिभाषि-तम् । विष्णुरस्याः पतिरिति भविष्यति न संशयः ३ इति

इसप्रकार वरदान देकर तहाँही अन्तर्ध्यान होगये ॥४३-४४॥ वह इसप्रकार शिवजीसे अपने मनोरथके अनुसार उचित वरदानको पाकर प्रसन्नचित्त हुई, और उन महादेवजीको नमस्कार कर अपने पिताके घरको चली गयी ॥ ४५ ॥ चौथा अध्याय समाप्त॥ ४ ॥

शुक बोला, कि–बहुतसा काल व्यतीत होने पर राजा बृहद्रथ अपनी कन्या पद्माको पूर्णयौवना देखकर पापकी आशङ्कासे चिन्ता करने लगा, अर्थात् सत्पात्र मिलने तक विवाहसे पहले कन्या जितनी वार रजस्वला हो उस कन्याके पिता माता उतनी वार जीवहत्याके पापभागी होते हैं, इस विचारमें पड़गया ॥ १ ॥ और कौमुदी नामक अपनी रानी से बोला, कि–हे सुभगे! कौनसे कुलशीलवान राजाके साथ पद्माका विवाह करूँ? ॥ २ ॥ यह सुनकर कौमुदी रानी अपने पति बृहद्रथसे बोली, कि–हे नाथ! महादेवजीने कह दिया है, कि–निःसन्देह विष्णुभगवान् इस कन्याके पति

तस्या वचः श्रुत्वा राजा प्राह कदेति ताम्। विष्णुः सर्वगुहावासः पाणिमस्या ग्रहीष्यति ॥४॥ न मे भाग्योदयः कश्चिद्द येन जामातरं हरिम्। वरयिष्यामि कन्यार्थे वेदवत्या मुनेर्यथा ५ इमां स्वयंवरां पद्मां पद्मामिव महोदधेः। मथनेऽसुरदेवानां तथा विष्णुर्ग्रहीष्यति ॥ ६ ॥ इति भूपगणान् भूपः समाहूय पुरस्कृतान्। गुणशीलवयोरूपविद्याद्रविणसंवृतान् ॥ ७ ॥ स्वयंवरार्थं पद्मायाः सिंहले बहुमङ्गले। विचार्य कारयामास स्थानं भूपनिवेशनम् ॥ ८ ॥ तत्रायाता नृपाः सर्वे विवाहकृतनिश्चयाः। निजसैन्यैः परिवृताः स्वर्णरत्नविभूषिताः ९

होंगे ॥३॥ इस बातको सुनकर राजाने कहा, कि-हे प्रिये ! सर्वान्तर्यामी विष्णुभगवान् इस कन्याका पाणिग्रहण कब करेंगे ॥ ४ ॥ मेरा ऐसा भाग्य कहाँ है ? जो श्रीहरिको कन्यादान देकर जामाता बनाऊँगा ? इसकारण जैसे मुनि-कन्या वेदवती स्वयम्वरके स्थानमें उपस्थित हुईथी तैसेही मैं देवता और दैत्योंके समुद्रको मथने पर निकली हुई पद्मा (लक्ष्मी) की समान इस अपनी पद्माका स्वयम्वर करूँगा तब विष्णुभगवान् इसको ग्रहण करलेंगे ॥५॥६॥ ऐसी सम्मति करके बृहद्रथ राजाने गुणवान्, सुशील, विद्यावान् ऐश्वर्यवान् और तरुण अवस्थाके राजाओंको सन्मानपूर्वक बुलवाया ॥ ७ ॥ और उस कन्याके स्वयम्वरके लिये सिंहलद्वीपमें अनेकों प्रकारके माङ्गलिक कार्य्य करनेकी आज्ञा दी; फिर विचार करके राजाओंके बैठालनेके लिये स्थान बनवाया ॥ ८ ॥ राजे लोग स्वयम्वरके स्थानमें आकर और यथायोग्य सत्कार पाकर अपने२ आसन पर

रथान् गजानश्ववरान् समारूढा महाबलाः॥श्वेतच्छत्रकृतच्छायाः श्वेतचामरवीजिताः ॥ १० ॥ शस्त्रास्त्रतेजसा दीप्ता देवाः सेन्द्रा इवाभवन् ।रुचिराश्वः सुकर्मा च मदिराक्षो दृढाशुगः ११ कृष्णसारः पारदश्च जीमूतः क्रूरमर्दनः । काशः कुशाम्बुर्वसुमान् कङ्कः कथनसञ्जयौ॥१२॥ गुरुमित्रः प्रमाथी च विजृम्भः सृञ्जयोऽक्षमः । एते चान्ये च बहवः समायाता महाबलाः१३ त्रिविशुस्ते रङ्गगता स्वस्वस्थानेषु पूजिताः॥ वाद्यताण्डवसंहृष्टा-श्चित्रमाल्याम्बराधराः ॥ १४ ॥ नानाभोगसुखोद्रिक्ताः काम-

---

बैठगये. वे सब राजे सुवर्ण और रत्नोंके आभूषणोंसे सजे हुए और अपनी अपनी सेनाके साथ स्वयम्बरके स्थानमें विराजगये ॥ ९ ॥ इनमेंसे कोई रथ पर बैठनेवाले, कोई हाथी पर बैठने वाले, और कोई उत्तम घोड़ों पर बैठने वाले थे;ये सब राजकुमार महावली परम पराक्रमी श्वेत छत्रधारी थे; और सबके ऊपर चँवर डुलरहे थे ॥ १० ॥ वे सब राजकुमार अस्त्र शस्त्रोंके तेजसे प्रकाशवान् होनेके कारण देवताओं सहित इन्द्रकी समान शोभायमान होरहे थे इनके नाम रुचिराश्व, सुकर्मा, मदिराक्ष, दृढाशुग, कृष्णसार पारद, जीमूत, क्रूरमर्दन, काश, कुशाम्बु, वसुमान, कङ्क, कथन, संजय, गुरुमित्र,प्रमाथी,विजृम्भ, सृञ्जय और अक्षम तथा और भी बहुतसे महावली राजे आये थे११-१३जब ये राजे स्वयम्वरके स्थानमें आकर अपने२ स्थानपर सत्कारके साथ बैठ गये तब नृत्य, गान आदि होनेलगा, उसको सुनकर राजा बड़े प्रसन्न हुए उनकी चित्र विचित्र माला और वस्त्रोंसे वरसभाकी अपूर्व शोभा हुई१४नाना प्रकारके सुखों

रामा रतिप्रदाः । तानालोक्य सिंहलेशः स्वां कन्यां वरवर्णिनीम् ॥ १५ ॥ गौरीं चन्द्राननां श्यामां तारहारविभूषिताम् । मणिमुक्ताप्रवालैश्च सर्वांगालङ्कृतां शुभाम् १६ किं मायां मोहजननीं किं वा कामप्रियां भुवि । रूपलावण्यसम्पत्त्या न चान्यामिह दृष्टवान् ॥१७ ॥ स्वर्गे क्षितौ वा पाताले ऽप्यहं सर्वत्रगो यदि । पश्चाद्दासीगणाकीर्णां सखीभिः परिवारिताः ॥ १८ ॥ दौवारिकैर्वेत्रहस्तैः शासितान्तःपुराद्बहिः । पुरोवन्दिगणाकीर्णां प्रापयामास तां शनैः ॥ १९ ॥

में आसक्त उन राजाओंको देखकर सबके ही नयन और मन प्रफुल्लित होने लगे,सिंहलद्वीपके राजा बृहद्रथने इन सब राजाओंको देखकर परम रूपवती अपनी कन्याको लानेकी आज्ञा दी ॥ १५ ॥ वह कन्या गौरवर्ण, चन्द्रमुखी, श्यामा, सुलक्षणा, रमणीय हारोंसे भूषित, और मणि, मोती तथा मूँगोंके आभूषणोंसे सब अङ्गोंमें सजी हुई थी ॥ १६ ॥उस परम रूपवती कन्याको देखकर,मैं अपने मनमें विचारने लगा कि–यह कन्या क्या है, साक्षात् मोहजननी माया है?अथवा कामदेवकी प्रिया साक्षात् रतिने ही पृथ्वी पर अवतार लिया है ? मैं यद्यपि स्वर्ग, मृत्युलोक, और पातालके सब स्थानों में घूमा हूँ परन्तु उस कन्याके समान रूप लावण्य और किसीमें नहीं देखा, वह कन्या जिस समय बाहर निकली उस समय सैकड़ों सखी उसको चारों ओरसे घेरकर चलीं और दासियें पीछे २ चलीं ॥१७॥१८॥ हाथमें बेंत धारण करनेवाले द्वारपालोंसे रक्षित वह पद्मा इसप्रकार रणवास मेंसे बाहर निकली, वन्दीगण आगे २ स्तुति करतेहुए चले

नूपुरैः किङ्किणीभिश्च क्वणन्तीं जनमोहिनीम् । स्वागतानां नृपाणाञ्च कुलशीलगुणान् बहून् ॥ २० ॥ शृण्वन्ति हंसगमना रत्नमालाकरग्रहा । रुचिरापाङ्गभङ्गेन प्रेक्षन्ती लोलकुण्डला ॥ २१ ॥ नृत्यत्कुन्तलसोपानगंडमण्डलमण्डिता । किञ्चित् स्मेरोल्लसद्वक्त्रदशनद्योतदीपिता ॥२२॥ वेदीमध्यारुणक्षौमवसना कोकिलस्वनी । रूपलावण्यपण्येन क्रेतुकामा जगत्त्रयम् ॥२३॥ समागतां तां प्रसमीक्ष्य भूपाः संमोहिनीं कामविमूढचित्ताः । पेतुः क्षितौ विस्तृतवस्त्रशस्त्राः रथाश्वमत्तद्विपवाहनास्ते ॥ २४ ॥ तस्याः स्मरक्षोभनिरीक्षणेन स्त्रियो

वह क्रमसे उस स्वयम्वरकी सभामें पहुँची॥१६॥उसके नूपुर और किंकणियोंकी ध्वनिसे सभामें मोहित करनेवाला अपूर्व शब्द होनेलगा, जो राजे सभामें आये थे, उनके कुल शील, और गुणोंको सुनती हुई चञ्चलकुण्डलोंवाली और मंद २ चलनेवाली वह कन्या हाथमें रत्नोंकी माला लेकर अपूर्व कटाक्षोंसे देखनेलगी ॥ २१ ॥ केशोंकी लटें हिलनेसे उसके कपोलोंकी अपूर्व शोभा होरही थी, मुस्करानसे और मुखकमलकी प्रसन्नतासे उसके दाँतोंकी कान्ति शोभा पारही थी ॥ २२ ॥ उस कन्याका उदर वेदीकी समान मध्यभागमें दुर्बल था,वह रेशमी लाल वस्त्र धारण किये हुए थी, उसके कण्ठका स्वर कोकिलाकेसा था,मानो वह कन्या रूपलावण्यस्वरूप मूल्य देकर त्रिलोकीको मोल लेनेकी अभिलाषा कर रही थी ॥ २३ ॥वे रथवाहन, अश्ववाहन और मत्तगजवाहन राजे उस मोहित करनेवाली कन्याको सभामें आई हुई देखकर कामदेवके वशमें हो पृथ्वी पर गिरनेलगे और

बभूवुः कमनीयरूपाः। बृहन्नितम्बस्तनभारनम्राः सुमध्यमा-स्तत्स्मृतिजातरूपाः ॥ २५ ॥ विलासहासव्यसनातिचित्राः कान्ताननाः शोणसरोजनेत्राः। स्त्रीरूपमात्मानमवेक्ष्य भूपाः तामन्वगच्छन् विशदानुवृत्त्या ॥ २६ ॥ अहं वटस्थः परिधर्षितात्मा पद्माविवाहोत्सवदर्शनाकुलः। तस्या वचोऽन्तर्हृदि दुःखितायाः श्रोतुं स्थितः स्त्रीत्वमितेषु तेषु ॥२७॥ जानीहि कल्के! कमलाविलापं श्रुतं विचित्रं जगतामधीश!। गते विवाहोत्सवमङ्गले सा शिवं शरण्यं हृदये निधाय ॥ २८ ॥ तान्

अपने वस्त्र तथा अस्त्र शस्त्रोंको सम्भालना भी भूलगये२४ फिर उठकर राजे कामदेवसे पीड़ित हो उस कन्याकी ओर देखते ही स्त्रीरूप होगये, स्त्रियोंके शरीरोंमें जैसे चिन्ह होते हैं वैसेही चिन्ह उनके शरीरोंमें भी होगये,सुन्दर और दुर्वल मध्यभागसे बड़ी ही शोभा पानेलगे, उनमें रूप लावण्यकी अपूर्व सुन्दरता आगयी स्थूलनितंब और स्तनोंके भारसे उनका शरीर कुछ२ नमगया२५ वे सब विलास-हास्य-और नृत्य गीतादिमें प्रवीण होगई, उनका मुख स्त्रियोंकी समान रमणीय प्रतीत होनेलगा, नेत्र लाल कमलकी समान विशाल होगये, वे राजे अपना स्त्रीरूप देखकर सुन्दर वेशसे पद्माके पीछे२ चलनेलगे ॥ २६ ॥ मैं पद्माके विवाहका उत्सव देखनेके लिये वटके वृक्ष पर बैठा था, मेरा चित्त चलायमान होरहा था, राजाओंके स्त्रीरूप होनेसे पद्माने अपने हृदयमें दुःख माना,मैं पद्माकी बात सुननेको कुछ देर और बैठा रहा ॥ २७ ॥ हे कल्कि-भगवान्! आप जगत्के स्वामी हो, आपको सब विदित है, तथापि कुछ कहता हूं, हे भगवन्! माङ्गलिक विवाह

दृष्ट्वा नृपतीन् गजाश्वरथिभिस्त्यक्तान् सखित्वं गतान्। स्त्रीभावेन समन्वितानुगतान् पद्मां विलोक्यान्तिके। दीना त्यक्तविभूषणा विलिखती पादांगुलैः कामिनी। ईशं कर्त्तुं निजनाथमीश्वरवचस्तथ्यं हरिं साऽस्मरत्॥ २६॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये पद्मास्वयंवरे भूपतीनां स्त्रीत्वकथनं नाम पंचमोऽध्यायः॥ ५॥

शुक उवाच। ततः सा विस्मितमुखी पद्मा निजजनैर्वृता। हरिं पतिं चिन्तयन्ती प्रोवाच विमलां स्थिताम्॥१॥ पद्मोवाच। विमले! किं कृतं धात्रा ललाटे लिखनं मम। दर्शनादपि लोकानां पुंसां स्त्रीभावकारकम्॥२॥ ममापि मन्दभाग्यायाः

का उत्सव वीतजाने पर कमला (पद्मा) ने हृदयमें अपने रक्षक महादेवजीका ध्यान करके जिसप्रकार विलाप किया, वह जैसा मैंने सुना था अब मैं आपसे कहता हूं, सुनिये२८ पद्माने जब देखा, कि—मेरे साथ विवाहकी इच्छा वाले राजे स्त्रीका रूप धारण करके,हाथी—घोड़े रथी आदि सेनाओंसे विलग होकर मेरी सखी बनेहुए हैं, तव उसने हृदयमें दुःखित हो शरीरके आभूषणोंको उतार दिया, और पैरके अंगूठेसे भूमिको कुरेदने लगी, और उसने शिवजीके वाक्यको सत्य करनेके निमित्त अपने नाथ ईश्वर श्रीहरिके चिन्तवनमें मन को लगाया॥ २६॥ पाँचवाँ अध्याय समाप्त॥ ५॥

शुक बोला, कि—हे भगवन्! तदनन्तर सखियोंसहित वह पद्मा आश्चर्य्यमें होकर अपने पति श्रीहरिका चिन्तवन करती हुई समीपमें खड़ी विमला नामक सखीसे कहनेलगी॥ १॥ पद्मा बोली, कि—हे विमले! क्या विधाताने मेरे ललाटमें

पापिन्याः शिवसेविनम् । विफलत्वमनुप्राप्तं बीजमुप्तं यथोषरे३ हरिर्लक्ष्मीपतिः सर्वजगतामधिपः प्रभुः । मत्कृतेऽप्यभिलाषं किं करिष्यति जगत्पतिः ॥ ४ ॥ यदि शम्भोर्वचो मिथ्या यदि विष्णुर्न मां स्मरेत् । तदाहमनले देहं त्यक्ष्यामि हरिभाविता ॥ ५ ॥ क्व चाहं मानुषी दीना क्वासौ देवो जनार्दनः । निगृहीता विधात्राहं शिवेन परिवञ्चिता ६ विष्णुना च परित्यक्ता मदन्या कात्र जीवति ॥७॥ इति नाना-विलापिन्या वचनं शोचनाश्रयम् । पद्मायाश्चारुचेष्टायाः श्रुत्वा यातस्तवान्तिके ॥ ८ ॥ शुकस्य वचनं श्रुत्वा कल्किः परम-

---

यही लिखदिया था, कि-मुझे देखतेही पुरुष स्त्री होजायँगे २ मैं अत्यन्त मन्दभाग्य और पापिन हूं, ऊषर भूमिमें बोएहुए बीजकी समान मेरा शिवपूजन वृथाही हुआ ॥ ३ ॥ जगत्के पालक, त्रिलोकीनाथ, प्रभु, लक्ष्मीपति, श्रीहरि क्या मेरी अभिलाषा करेंगे ? ॥ ४ ॥ यदि शिवजीका वाक्य मिथ्या है, और यदि विष्णु भगवान् मेरी सुध नहीं लेंगे तो मैं श्रीहरि का ध्यान करती हुई अग्निमें जलकर अपना शरीर त्याग दूंगी ॥५॥कहाँ मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होनेवाली अतिदीन मैं और कहाँ दिव्यरूप विष्णुभगवान्?अर्थात् मेरा विष्णुभगवान् से विवाह होना असम्भव प्रतीत होता है अधिक क्या कहूं, विधाता मुझसे विमुख होरहा है, न जाने शिवजीने मुझे क्यों धोखा दिया ? ॥ ६ ॥ देखो मैं विष्णुभगवान्के बिना जीरही हूं ऐसी दशामें मुझसे दूसरी कोई भी जीवित नहीं रहती॥७॥ शुक कहने लगा, कि-हे भगवन् ! मैं पद्माके ऐसे अनेक प्रकारके शोकजनक विलापको सुनकर आपके समीप

विस्मितः । तं जगाद पुनर्याहि पद्मां बोधयितुं प्रियाम् ॥९॥ मत्सन्देशहरो भूत्वा मद्रूपगुणकीर्त्तनम्। श्रावयित्वा पुनः कीर! समायास्यसि बान्धव ! १०सा मे प्रिया पतिरहं तस्या दैवविनिर्मितः । मध्यस्थेन त्वया योगमावयोश्च भविष्यति॥११॥ सर्वज्ञोऽसि विधिज्ञोऽसि कालज्ञोऽसि कथामृतैः । तामाश्वास्य ममाश्वासकथास्तस्याः समाहर ॥ १२ ॥ इति कल्केर्वचः श्रुत्वा शुकः परमहर्षितः । प्रणम्य तं प्रीतमनाः प्रययौ सिंहलं त्वरन् ॥ १३ ॥ खगः समुद्रपारेण स्नात्वा पीत्वामृतं पयः । बीजपूरफलाहारो ययौ राजनिवेशनम् ॥ १४ ॥ तत्र कन्या-

---

आया हूं ॥ ८ ॥ कल्कि भगवान् शुकके कहनेको सुनकर आश्चर्यमें होगए और कहने लगे, कि-हे शुक ! तुम प्रियतमा पद्माको समझानेके लिये फिर तहाँ जाओ ॥ ९ ॥ हे शुक ! तुम मेरे बन्धु हो, इससमय तुम मेरा सन्देशा पहुंचानेवाले दूत बनकर पद्माके पास जाओ, और उसको मेरा रूप गुण विस्तारसे सुनाकर फिर यहाँ लौट आओ ॥१०॥ पद्मा मेरी प्रिया है और मैं उसका पति हूँ, यह योग विधाता ने पहिले ही बना रक्खा है,इस विषयमें तेरे मध्यस्थ होजाने से हम दोनोंका मेल होजायगा ॥ ११ ॥ तुम सर्वज्ञ हो, कार्य सिद्ध करनेकी रीतिको और समयको जानते हो, इसलिये अपने वचनामृतोंसे पद्माको आश्वासन देकर तथा उसकी शान्तिके समाचार लेकर लौट आओ ॥ १२ ॥ कल्कि भगवान्की इस बातको सुनकर शुक परमप्रसन्न हुआ और उन को प्रणाम करके मनमें प्रसन्न हो शीघ्रतासे सिंहलद्वीपकी ओरको चल दिया ॥ १३ ॥ वह शुक समुद्रके पार पहुँचकर,

पुरं गत्वा वृक्षे नागेश्वरे वसन् । पद्मामालोक्य तां प्राह शुको मानुषभाषया॥१५॥ कुशलं ते वरारोहे ! रूपयौवनशालिनि! । त्वां लोलनयनां मन्ये लक्ष्मीरूपामिवापराम् ॥ १६ ॥ पद्माननां पद्मगन्धां पद्मनेत्रां कराम्बुजे । कमलं कालयन्तीं त्वां लक्षयामि परां श्रियम् ॥ १७ ॥ किं धात्रा सर्वजगतां रूपलावण्यसम्पदाम् । निर्मितासि वरारोहे ! जीवानां मोहकारिणी ! ॥ १८ ॥ इति भाषितमाकर्ण्य कीरस्यामितमद्भुतम् । हसन्ती प्राह सा देवी तं पद्मा पद्ममालिनी ॥१९॥

तहाँ स्नान और अमृतमय जलको पीकर बीजपूर नामक फल खाये और राजमन्दिरमें जापहुँचा ॥ १४ ॥ तहाँ पद्माके महलमें पहुँचकर नागकेसरके वृक्ष पर बैठगया, और पद्मा को देखकर मनुष्यकी वाणीमें कहनेलगा कि--॥ १५ ॥ हे सुन्दरि ! तुम कुशल तो हो ? मैं देखता हूँ,कि–तुम परम रूपवती और पूर्णयौवना हो, तुम्हारे दोनों नेत्र चंचल और अत्यन्त मनोहर हैं, मैं तुम्हें दूसरी लक्ष्मी मानता हूँ॥१६ ॥ तुम्हारा मुख कमलकी समान है, तुम्हारे शरीरमेंसे कमल की समान सुगन्ध आती है, तुम्हारे नेत्र कमलकी समान हैं और तुम्हारे हाथमें कमल विराजमान है इन लक्षणोंसे प्रतीत होता है, कि–तुम दूसरी लक्ष्मी ही हो ॥ १७ ॥ हे सुन्दरि ! हे सम्पूर्ण प्राणियोंको मोहित करनेवाली ! प्रतीत होता है कि-विधाताने सम्पूर्ण जगत्की रूपलावण्यमयी सम्पत्तिको इकट्ठा करके तुम्हें रचा है ॥ १८ ॥ कमलोंकी माला पहरे हुए वह पद्मा शुकके ऐसे अलौकिक और अद्भुत वाक्यको सुनकर मुसकराती हुई कहनेलगी ॥ १९ ॥ कि—तू कौन

कस्त्वं ! कस्मादागतोऽसि ? कथं मां शुकरूपधृक् । देवो वा दानवो वा त्वम् ? आगतोऽसि दयापरः ॥२०॥ शुक उवाच। सर्वज्ञोऽहं कामगामी सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् । देवगन्धर्वभूपानां सभासु परिपूजितः ॥ २१ ॥ चरामि स्वेच्छया खे त्वां ईक्षणार्थमिहागतः।त्वामहं हृदि सन्तप्तां त्यक्तभोगां मनःस्विनीम् ॥ हास्यालापसखीसंगदेहाभरणवर्जिताम् । विलोक्याहं दीनचेताः पृच्छामि श्रोतुमीरितम् । कोकिलालापसन्तापजनकं मधुरं मृदु ॥ २३ ॥ तव दन्तौष्ठजिह्वाग्रचुलिताक्षरपंक्तयः । यत्कर्णकुहरे मग्नास्तेपां किं वर्ण्यते तपः ॥ २४ ॥ सौकुमार्यं

है और कहाँसे आया है? तू शुकरूपधारी कोई देवता है?या दैत्य है ? तू दया करके मेरे पास किस लिये आया है?२० यह सुनकर शुक बोला कि-मैं सर्वज्ञ और सर्वशास्त्रके अर्थ तथा तत्त्वको जाननेवाला हूँ, मैं कामगामी हूँ अर्थात् जिस समय जहाँ चाहूँ तहाँ जासकता हूँ देवता गन्धर्व और राजाओं की सभाओंमें मेरा बड़ा आदर है।। २१ ।।मैं अपनी इच्छानुसार आकाशमार्गमें विचर रहा था, तुम्हें देखनेके लिये यहाँ आया हूँ तुम विचारवती हो तो भी मैं तुम्हें अत्यन्तखिन्न और भोगसुखसे विमुख देखरहा हूँ ॥.२२ ॥ तुमने हास्य, भाषण सखियोंका सङ्ग और देहके आभूषणोंको त्याग दिया है, तुम्हारी ऐसी दशा देखकर मेरा चित्त खिन्न होरहा है मैं तुम्हारा कोकिलाकी कूकसे भी मधुर और कोमल वाक्य सुननेके लिये तुम्हारे सन्तापका कारण जानना चाहता हूँ ।।२३।। तुम्हारे दाँत, ओठ और जिव्हाके अग्रभागसे निकले हुए अक्षरोंकी पंक्तियें जिनके कानोंमें प्रविष्ट होतीं हैं उनकी

शिरीषस्य क्व कान्तिर्वा निशाकरे। पीयूषं क्व वदन्त्येवानन्दं ब्रह्मणि ते बुधाः ॥२५॥ तव बाहुलताबद्धा ये पास्यन्ति सुधाननम्। तेषां तपोदानजपैर्व्यर्थैः किं जनयिष्यति ॥२६॥ तिलकालकसंमिश्रं लोलकुण्डलमण्डितम्। लोलेक्षणोल्लसद्वक्त्रं पश्यतां न पुनर्भवः ॥२७॥ बृहद्रथसुते ! स्वाधिं वद भामिनि ! तत्कृते। तपःक्षीणामिव तनूं लक्षयामि रुजं विना। कनकप्रतिमा यद्वत् पांशुभिर्मलिनीकृता ॥ २८ ॥ पद्मोवाच। किं रूपेण कुलेनापि धनेनाभिजनेन वा। सर्वं निष्फलतामेति

तपस्याका क्या वर्णन होसकता है ? ॥२४॥ तुम्हारे सामने सिरसके फूलकी सुकुमारता और चन्द्रमाकी कान्ति अतितुच्छ मालूम होती है, विद्वान् पुरुष अमृत और ब्रह्मानन्दकी प्रशंसा करते हैं, परन्तु तुम्हारे सामने वह भी अति तुच्छ है, ॥ २५ ॥ जो पुण्यात्मा तुम्हारी भुजारूप लताओंसे लिपट कर तुम्हारे रसनामृतका पान करेंगे, उनको स्वर्गके साधनरूप जप, तप, और दान आदि धर्माचरणका और क्या फल मिलेगा? ॥ २६ ॥ जो प्राणी तुम्हारे इस तिलक और अलकोंसे शोभायमान, चञ्चल कुण्डलोंसे भूषित और चञ्चल नेत्रोंसे विराजमान मुखकमलका दर्शन करेंगे उनका दूसरा जन्म नहीं होगा अर्थात् मुक्ति होजायगी ॥२७॥ हे बृहद्रथकी पुत्रि ! बताओ तुम्हारे मनमें क्या दुःख है ? हे भामिनी ! मैं देखता हूँ, कि–तुम्हारा यह शरीर रोगके विना ही तपस्यासे दुर्बल हुआसा प्रतीत होता है, तुम्हारा यह शरीर सोनेकी प्रतिमाकी समान भी धूलिसे मलिन हो रहा है ॥ २८ ॥ यह सुनकर पद्माने कहा, कि––हे शुक !

यस्य दैवमदक्षिणम् ॥ २६ ॥ शृणु कीर ! समाख्यानं यदि वाविदितं तव । बाल्य-पौगण्ड-कैशोरे हरसेवां करोम्यहम् ३० तेन पूजाविधानेन तुष्टो भूत्वा महेश्वरः । वरं वरय पद्मे ! त्वमित्याह प्रियया सह ॥ ३१ ॥ लज्जयाधोमुखीमग्रे स्थितां मां वीक्ष्य शङ्करः । प्राह ते भविता स्वामी हरिर्नारायणः प्रभुः ॥ ३२ ॥ देवो वा दानवो वान्यो गन्धर्वो वा तवेक्षणात् । कामेन मनसा नारी भविष्यति न संशयः ॥३३॥ इति दत्वा वरं सोमः प्राह विष्ण्वर्चनं यथा । तथाहं ते प्रवक्ष्यामि समाहितमनाः शृणु ॥ ३४ ॥ एताः सख्यो नृपाः पूर्वमाहृता ये

दैव जिसके प्रतिकूल है, उसक रूप, कुल, धन, और उच्च-वंशमें जन्म आदि किस कामका है ? सब वृथा है ॥ २६ ॥ हे शुक ! यदि तुम्हें मेरा वृत्तान्त मालूम नहीं है तो मैं ही कहती हूँ, सुनो–मैंने पौगण्ड, बाल्य और किशोर अवस्था में महादेवजीका पूजन किया है ॥ ३० ॥ उस पूजनसे प्रसन्न होकर पार्वती सहित महादेवजी आकर कहनेलगे, कि—हे पद्मे ! तू वरदान माँग ॥ ३१ ॥ शङ्करने मुझे अपने सामने स्थित और लज्जासे नीचेको मुख किये हुए देखकर कहा, कि–प्रभु नारायण श्रीहरि तेरे पति होंगे ॥३२॥ देव,दानव, गन्धर्व अथवा और जो कोई कामवासनायुक्त हृदयसे तुझे देखेगा, वह निःसन्देह उसी क्षण स्त्री होजायगा ॥ ३३ ॥ भगवान् महादेवजीने इसप्रकार वरदान देकर विष्णु पूजन की जैसी विधि बताई थी वह तुमसे कहती हूँ, सावधान हो कर सुनो ॥३४॥ यह जो मेरी सखियें हैं सब पहिले राजा थे, मेरे पिताने मुझे पूर्ण यौवनवती और अतिसुन्दरी देख

स्वयम्वरे। पित्रा धर्मार्थिना दृष्ट्वा रम्यां मां यौवनान्विताम् ३५ स्वागतास्ते सुखासीना विवाहकृतनिश्चयाः। युवानो गुणवन्तश्च रूपद्रविणसम्मताः ॥ ३६ ॥ स्वयंवरगतां मां ते विलोक्य रुचिरप्रभाम्। रत्नमालाश्रितकरां निपेतुः काममोहिताः ३७ तत उत्थाय संभ्रान्ताः संप्रेक्ष्य स्त्रीत्वमात्मनः। स्तनभारनितम्बेन गुरुणा परिणामिताः ॥ ३८ ॥ ह्रिया भिया च शत्रूणां मित्राणामतिदुःखदम्। स्त्रीभावं मनसा ध्यात्वा मामेवानुगताः शुक ! ॥ ३९ ॥ पारिचर्या हररताः सख्यः सर्वगुणान्विताः। मया सह तपोध्यानपूजाः कुर्वन्ति सम्मताः ४०

कर अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिये इन सब राजाओंका मेरे स्वम्वरमें बुलवाया था ॥३५॥ ये सब तरुण गुणवान्, रूपवान और अत्यन्त ऐश्वर्यवान् थे, ये सब मेरा पाणिग्रहण करनेकी इच्छासे वड़े प्रसन्न होते हुए आये थे और स्वयम्वरका सभामें सुखसे बैठे थे ॥३६॥ मैं रत्नोंकी माला लेकर मनोहर कांतिको फैलाती हुई स्वयम्वर सभामें आयी ये राजे मुझे देखकर कामदेवसे मोहित होकर पृथ्वी पर गिरनेलगे ॥३७॥ और फिर अचंभेके साथ उठकर इन्होंने देखा, कि-हमारे शरीरमें स्त्रीके चिन्ह प्रकट होरहे हैं, अतिभारी नितंब और दोनों स्तनोंके भारसे उनका शरीर शोभा पारहा है ॥ ३८ ॥ हे शुक ! तदनन्तर अपनेको प्रत्यक्ष स्त्री रूप देखकर इन्होंने फिर शत्रु वा मित्र किसीको भी लज्जा और भयके कारण अपना मुख दिखानेकी इच्छा नहीं की और फिर मनमें विचार करके मेरी ही सखी बनगये ३९ ये मेरी सखियें संपूर्ण गुणयुक्त और मेरी प्रेमपात्र हैं, ये सब

तदुदितमिति संन्निशम्य कीरः श्रवणसुखं निजमानसप्रकाशम्
समुचितवचनैः प्रतीच्य पद्मां सुरहरयजनं पुनः प्रचष्टे ॥४१॥
इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये शुक-
पद्मासंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

शुक उवाच । विष्णवर्चनं शिवेनोक्तं श्रोतुमिच्छाम्यहं शुभे धन्यासि कृतपुण्यासि शिवाशिष्यत्वमागता ॥१॥ अहं भाग्यवशादत्र समागम्य तवान्तिकम् । शृणोमि परमाश्चर्यं कीराकारनिवारणम् ॥२॥ भगवद्भक्तियोगञ्च जपध्यानविधिं मुदा । परमानन्दसन्दोहदानदक्षं श्रुतिप्रियम् ॥ ३ ॥ पद्मोवाच । श्रीविष्णोरर्चनं पुण्यं शिवेन परिभाषितम् । यच्छ्रद्धयानुष्ठि-

मेरे साथ तप, विष्णुपूजा और विष्णु भगवान्का ध्यान करती हैं ॥ ४० ॥ इसप्रकार कानोंको सुख देनेवाले और अपने मनकी इच्छाके अनुरूप पद्माके वाक्यको सुनकर शुक ने उचित वचनोंसे पद्माको सन्तोष दिया और विष्णुपूजा विषयक कथाकी वार्ता करनेलगा॥४१। छठा अध्याय समाप्त

शुक बोला, कि-हे कल्याणि! तुम धन्य हो, तुमने बड़ा पुण्य किया है, जो तुम शिवकी शिष्य हुई, मैं तुमसे शिवजी की वर्णन कीहुई विधि सुननी चाहता हूं ॥ १ ॥ मैं प्रारब्धवश आज तुम्हारे पास आपहुंचा हूं, अब मैं तुमसे परम अद्भुत विष्णुपूजनकी रीति सुनूंगा, जिससे फिर मुझे पक्षी का शरीर धारण न करना पडेगा॥२॥ इसके साथही भगवान् के भक्तियोग भगवान्का ध्यान तथा जपकरना चाहिये, विष्णुपूजाका प्रकरण सुननेमें मधुर और परम आनन्ददायक है ॥ ३ ॥ पद्मा बोली कि-हे शुक ! शिवजीकी वर्णन की

तस्य श्रुतस्य गदितस्य च ॥४॥ सद्यः पापहरं पुंसां गुरुगोब्रह्मघातिनाम् । समाहितेन मनसा शृणु कीर ! यथोदितम्॥५॥ कृत्वा यथोक्तकर्माणि पूर्वाह्णे स्नानकृतच्छुचिः।प्रक्षाल्य पाणी पादौ च स्पृष्टापः स्वासने वसेत् ॥६॥ प्राचीमुखः संयतात्मा साङ्गन्यासं प्रकल्पयेत् । भूतशुद्धिं ततोऽर्घ्यस्य स्थापनं विधिवच्चरेत् ॥ ७ ॥ ततः केशवकृत्यादिन्यासेन तन्मयो भवेत् । आत्मानं तन्मयं ध्यात्वा हृदिस्थं स्वासने न्यसेत् ॥ ८ ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः । यथोपचारैः संपूज्य मूलमन्त्रेण देशिकः ॥९॥ ध्यायेत् पादादिकेशांत हृदयाम्बुज-

---

हुई विष्णुपूजनकी विधि पुण्यदायक है, इसको श्रद्धापूर्वक सुनने अनुष्ठान करने और वर्णन करने पर, मनुष्यके गोहत्या, गुरुहत्या, और ब्रह्महत्या आदि पातक शीघ्रही दूर होजाते हैं, हे शुक ! शिवजीने जैसी बतायी थी वह अब मैं तुझे सुनाती हूं, सावधानचित्त होकर सुन ॥ ४ ॥ ५ ॥ मनुष्य प्रातःकालके समय स्नान और नित्यकर्म करके पवित्रताके साथ हाथ पैर धोकर तथा आचमन करके अपने आसन पर बैठे ॥ ६ ॥ फिर एकाग्र चित्त होकर, पूर्वाभिमुख बैठकर अङ्गन्यास, भूतशुद्धि और विधिपूर्वक अर्घ स्थापन करे । ७ । तदनन्तर केशवकृत्य न्यास आदिके द्वारा तन्मय होकर और अपनेको विष्णुमय भावना करके हृदयमें स्थित विष्णुभगवान्को मनसे कल्पना किए हुए आसन पर स्थापन करे ॥ ८ ॥ तदनन्तर मन्त्र (ओं नमो भगवते वासुदेवाय) का उच्चारण करता हुआ पाद्य, अर्घ, आचमनीय, स्नानीयवस्त्र, और भूषण आदि

मध्यगम् । प्रसन्नवदनं देवं भक्ताभीष्टफलप्रदम् ॥ १० ॥ ओं नमो नारायणाय स्वाहा । योगेन सिद्धविबुधैः परिभाव्यमाणं लक्ष्म्यालयं तुलसिकांचितभक्तभृङ्गम् । प्रोत्तुङ्गरक्तनखरांगुलिपत्रचित्रं गङ्गारसं हरिपदाम्बुजमाश्रयेऽहम् ॥ ११ ॥ गुम्फन्मणिप्रचयघट्टितराजहंससिञ्जत्सुनूपुरयुतं पदपद्मवृन्तम् । पीताम्बराञ्चलविलोलचलत्पताकं स्वर्णत्रिवक्त्रवलयञ्च हरेः स्मरामि ॥ १२ ॥ जंघे सुपर्णगलनीलमणिप्रवृद्धे शोभास्पदारुणमणिद्युतिचञ्चुमध्ये । आरक्तपादतललम्बनशोभमाने लोके

सामग्रीसे पूजन करके हृदयरूपी कमलके मध्यमें स्थित प्रसन्नमुख, भक्तोंको इच्छितफल देनेवाले, दिव्यरूप, विष्णु भगवान्का चरणकमलसे लेकर केशपर्यन्त ध्यान करे६-१०

ध्यानकी समाप्ति होनेपर "ओं नमो नारायणाय स्वाहा" इस मन्त्रका उच्चारण करके आगे कहेहुए स्तोत्रका पाठकरे) योगसिद्धि पायेहुए विचारवान् पुरुप सदा जिनका ध्यान करते हैं, जो लक्ष्मीके आश्रय हैं, जिनके भक्तरूप भ्रमर तुलसीसे व्याप्त रहते हैं,जिनकी अत्यन्त लालवर्ण नखों वाली अँगुलीरूप पत्रसे गङ्गाजल चित्रित होरहा है, उन श्रीहरिके चरण कमलोंका मैं आश्रय लेता हूँ ॥ ११ ॥ विष्णुभगवान् के जो चरणकमल गुथीहुई मणियोंके समूहसे और राजहंसकी समान शब्दायमान सुन्दर नूपुरोंसे शोभायमान होरहे हैं, जो पीतवस्त्रके अञ्चलसे चंचलतामयी पताकाकी समान शोभायमान होरहे हैं, जिनके सुवर्णके बनेहुए तीन मुखवाले वलय (खँडुए) की कान्ति फैलरही है उन, श्रीहरिके चरण कमलोंका स्मरण करता हूँ ॥ १२ ॥ जो जँघायें गरुड़के

क्षणोत्सवकरे च हरेः स्मरामि ॥ १३ ॥ ते जानुनी खगपतेर्भुज मूलसङ्गरंगोत्सवावृततडिद्वसने विचित्रे । चञ्चत्पतत्रिमुखनिर्गतसामगीतविस्तारितात्मयशसी च हरेः स्मरामि ॥१४॥ विष्णोः कटिं विधिकृतान्तमनोजभूमिं जीवाण्डकोषगणसङ्गदुकूलमध्याम् । नानागुणप्रकृतिपीतविचित्रवस्त्रां ध्यायेन्निबद्धवसनां खगपृष्ठसंस्थाम् ॥ १५ ॥ शातोदरं भगवतस्त्रिवलिप्रकाशम् आवर्त्तनाभिविकसद्विधिजन्मपद्मम् । नाडीनदीगण-

---

कण्ठमें धारण कीहुई नीलकान्त मणिकी प्रभासे जिनकी कान्ति बढ़रही है जिनके मध्यमें गरुड़की अरुणवर्ण मणिकी समान चोंच शोभाको बढ़ारही है, जिनके नीचे लम्बायमान कुछ लालवर्ण चरणोंके तलुए शोभित होरहे हैं, जो भक्तवृन्द के नेत्रोंको आनन्द देनेवाली हैं उन श्रीहरिकी दोनों जंघाओं का मैं स्मरण करता हूँ ॥ १३ ॥ उत्सवके समय धारण कियेहुए कन्धेपर धरीहुई बिजलीकी समान पीतवस्त्रके विचित्र वर्णकी प्रभासे जिनकी दोनों जघायें रँगी हुई हैं गरुड़ जीके चञ्चल मुखसे निकलेहुए सामवेदके गानेसे जिनका माहात्म्य बढ़गया है ऐसे, विष्णुभगवान्के दोनों जानुका स्मरण करता हूँ ॥ १४ ॥ जो ब्रह्मा, यम और कामदेवका आधार सत्त्वादि त्रिगुणरूप प्रकृति, पीत और विचित्र वस्त्ररूपसे जहाँ निवास करती है; जीवोंके बीजका आधारयुक्त दुकूलवस्त्र जहाँ शोभा पाता है, उस गरुड़की पीठपर स्थित विष्णुभगवान्की कमरका मैं ध्यान करता हूँ ॥ १५ ॥ जिसमें त्रिवलि शोभा पारही है, जहाँ गोल नाभिरूप सरोवरमेंके ब्रह्मका जन्मस्थानरूप कमल खिलरहा है, जहाँ नाड़ीरूप नदियोंके रससे

रसोत्थसितान्त्रसिन्धुं ध्यायेऽण्डकोषनिलयं तनुलोमरेखम् ॥ वक्षः पयोधितनयाकुचकुंकुमेन ; हारेण कौस्तुभमणिप्रभया विभातम्। श्रीवत्सलक्ष्म हरिचन्दनजप्रसूनमालोचितं भगवतः सुभगं स्मरामि ॥ १७ ॥ बाहू सुवेशसदनौ वलमाङ्गदादिशोभास्पदौ दुरितदैत्यविनाशदक्षौ । तौ दक्षिणौ भगवतश्च गदासुनाभतेजार्जितौ सुललितौ मनसा स्मरामि ॥१८॥ वामौ भुजौ मुररिपोर्धृतशङ्खपद्मौ श्यामौ करीन्द्रकरवन्मणिभूषणाढ्यौ । रक्ताङ्गुलिप्रचयचुम्बितजानुमध्यौ पद्मालयाप्रियकरौ रुचिरौ स्मरामि ॥ १९ ॥ कण्ठं मृणालममलं मुखपङ्कजस्य

आँतेंरूप समुद्र शोभित होरहा है, जो ब्रह्माण्डका आधार है और जिसमें सूक्ष्म रोमराजि शोभित होरही है, भगवान्के क्षीण (दुर्बल) उदरका मैं स्मरण करता हूँ ॥१६॥ लक्ष्मीके कुचोंके कुंकुम हार तथा कौस्तुभमणिकी कान्तिसे विराजमान श्रीवत्सचिन्हसे युक्त हरिचन्दन नामक कल्पवृक्षके पुष्पोंकी मालासे विभूषित, परम रमणीय भगवान्के वक्षःस्थलका स्मरण करता हूँ ॥ १७ ॥ जो दोनों बाहु सुन्दर वेशके स्थान और खँडुए-बाजूबन्द आदि आभूषणोंसे शोभायमान है; जो बाहु दुष्टदैत्योंका नाश करनेमें चतुर हैं; जो बाहु गदा और सुदर्शनचक्रके तेजसे सबको जीतरहे हैं, भगवान्के उन दोनों सुन्दर दाहिने भुजोंका मनसे स्मरण करता हूं ॥ १८ ॥ मुरारि भगवान्की जो दोनों बाईं भुजा हाथीकी सूंड़की समान श्यामवर्ण और शङ्ख पद्मको धारण कियेहुए हैं, जिनमें मणिजटित आभूषण शोभा पारहे हैं, जिनकी रक्तवर्ण अंगुलियें जानुओंको स्पर्श कररही हैं, विष्णुभगवान्के प्रिय, तिन मनो-

लेखात्रयेण वनमालिकया निवीतम् । किंवा विमुक्तिवसमन्त्रकसत्फलस्य वृत्तं चिरं भगवतः सुभगं स्मरामि ॥२०॥ रक्ताम्बुजं दशनहासविकाशरम्यं रक्ताधरौष्ठवरकोमलवाक्सुधाढ्यम् । सन्मानसोद्भवचलेक्षणपत्रचित्रं लोकाभिराममलञ्च हरेः स्मरामि ॥ २१ ॥ शूरात्मजावसथगन्धविदं सुनासं भ्रूपल्लवं स्थितिलयोदयकर्मदक्षम् । कामोत्सवञ्च कमलाहृदयप्रकाशं संचिन्तयामि हरिवक्त्रविलासदक्षम् ॥ २२ ॥ कर्णौ लसन्मकरकुण्डलगण्डलोलौ नानादिशाञ्च नभसश्च विकास-

हर दोनों वाम भुजोंका स्मरण करता हूँ ॥ १९ ॥ सुखरूपी कमलकी दण्डीरूप निर्मल तीन रेखाओंके युक्त, वनमालासे शोभायमान, मुक्तदशामें स्थित रहनेके मन्त्ररूप, रमणीय फल के गुच्छेरूप, भगवान्के परमसुन्दर कण्ठका निरन्तर ध्यान करता हूं ॥ २० ॥ लालकमलकी समान लाल ओष्ठोंसे परम रमणीय, हँसनेके समय दाँतोंके प्रकाशसे परम सुन्दर, वचनरूप अमृतयुक्त, मनको प्रसन्न करनेवाले चञ्चल-नेत्रयुक्त, पत्ररचनासे चित्रित और त्रिलोकीके मनको हरण करनेवाले श्रीहरिके निर्म्मल मुखकमलका स्मरण करता हूं २१ जिसके प्रभावसे यमलोकका गन्ध भी नहीं सूंघना पड़ता, जिसकी समीपतासे उत्तम नासिका शोभित होरही है, जिससे जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होते हैं, जिससे कामदेव का उत्सव प्रकट होता है और जिसका दर्शन करनेसे लक्ष्मी का हृदय प्रसन्न होता है तथा श्रीहरिका मुखकमल शोभायमान होता है तिस भ्रूयुगल (दोनों भौं) का स्मरण करता हूं ॥ २२ ॥ गण्डस्थल पर चञ्चल मकराकृत कुण्डलोंकी

गेहौ। लोलालकप्रचयचुम्बनकुञ्चिताग्रौ लग्नौ हरेर्मणिकिरीट-तटे स्मरामि ॥ २३ ॥ भालं विचित्रतिलकं प्रियचारुगन्धगो-रोचनारचनया ललनाक्षिसख्यम् ।ब्रह्मैकधामप्रणिकांतकिरीट-जुष्टं ध्यायेन्मनोनयनहारकमीश्वरस्य ॥ २४ ॥ श्रीवासुदेव-चिकुरं कुटिलं निबद्धं नानासुगन्धिकुसुमैः स्वजनादरेण । दीर्घं रमाहृदयगाशमनं धुनन्तं ध्यायेऽम्बुवाहरुचिरं हृदयाब्जमध्ये२५

शोभासे जो विभूषित होरहे हैं, जिनके द्वारा अनेकों दिशायें और आकाशमण्डल प्रकाशित हैं, जिनका अग्रभाग चञ्चल अलकोंके स्पर्शसे कुछ टेढ़ासा प्रतीत होता है, जो मणिजटित किरीटके समीपमें लग रहे हैं, उन श्रीहरिके दोनों कर्णोंका स्मरण करता हूँ ॥ २३ ॥ जो विचित्र तिलकसे शोभायमान होरहा है, जो प्रिय और मनोहर गन्धयुक्त गोरोचनकी पत्र-रचनासे सुन्दर नेत्रकी तुल्यताको धारण कररहा, जो ब्रह्मा का अद्वितीय आश्रय है, जिसके विषैं मणिजटित रमणीय किरीट विराजमान होरहा है, जो सबके मन और नेत्रोंको हरणकरता है उस श्रीहरिके ललाटका स्मरणकरता हूँ २४ भक्तोंने जिसको आदरके साथ नानाप्रकारके सुगन्धित पुष्पोंसे बांधा है, ऐसे कुटिल,दीर्घ, लक्ष्मीके मनकी भावना को दूर करनेवाले, वायुसे किञ्चिन्मात्र कम्पायमान कियेहुए और कृष्णवर्ण मेघमण्डलकी समान सुन्दर श्रीवासुदेव भग-वान्के केशपाशका अपने हृदयकमलमें चिन्तवन करता हूँ ॥ २५ ॥ जिनका शरीर मेघकी समान श्याम है, जिनके

नेत्राकारं सोमसूर्यप्रकाशं सुभ्रून्नसं शक्रचापैकमानम् । लोकातीतं पुण्डरीकायताक्षं विद्युच्चैलञ्चाश्रयेऽहं त्वपूर्वम् २६ दीनं हीनं सेवया वेदवत्या पापैस्तापैः पूरितं मे शरीरम् । लोभाक्रान्तं शोकमोहाधिविद्धं कृपयादृष्ट्या पाहि मां वासुदेव!२७ ये भक्त्याद्यां ध्यायमानां मनोज्ञां व्यक्तिं विष्णोः षोडशश्लोकपुष्पैः । स्तुत्वा नत्वा पूजयित्वा विधिज्ञाः शुद्धा मुक्ता ब्रह्मसौख्यं प्रयान्ति ॥ २८ ॥ पद्मेरितमिदं पुण्यं शिवेन परिभाषितम् । धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं परम् ॥ २९ ॥

दोनों नेत्र चन्द्रमा और सूर्यकी समान हैं, जिनकी दोनों भौं इंद्रधनुषकी समान हैं, जिनकी नासिका लम्बी है, जिनके नेत्र कमलकी समान विशाल हैं, और जिनका पीतवस्त्र बिजली की समान है. ऐसे अद्भुतमूर्त्ति विष्णु भगवान्की मैं शरणागत हूँ ॥ २६ ॥ मैं अतिदीन हूं और वेदविहित सेवा आदि भी मैंने नहीं की है, मेरा शरीर पाप और तापोंसे भराहुआ है. लोभ, मोह, शोक, और मानसी पीड़ासे मैं विंधाहुआ हूँ, इसकारण हे वासुदेव ! कृपादृष्टि करके रक्षा करिये ॥ २७ ॥ जो पुरुष भक्तिपूर्वक विष्णुभगवान्की इस आद्य मनोहर मूर्त्तिका ध्यान करके तथा सोलह श्लोकरूप पुष्पों द्वारा स्तुति करकै नमस्कार और पूजन करेंगे, विधि को जाननेवाले सब पुरुष शुद्ध और मुक्त होकर ब्रह्मानन्दको प्राप्त होयँगे ॥ २८ ॥ पद्माका कहा हुआ यह शिवकृत (शिवजीका उपदेश किया हुआ) अति पवित्र धन-यश-आयु-और स्वर्गरूप फलका देनेवाला, परम कल्याणका स्थान

पठन्ति ये महाभागास्ते मुच्यन्तेऽहंसोऽखिलात् । धर्मार्थकाम-मोक्षाणां परत्रेह फलप्रदम् ॥ ३० ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये हरिभक्तिविवरणं
नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

समाप्तश्चायं प्रथमांशः ।

द्वितीयोंऽशः ।

सूत उवाच । इति पद्मावचः श्रुत्वा कीरो धीरः सतां मतः । कल्किदूतः सखीमध्ये स्थितां पद्मामथाब्रवीत् ॥ १ ॥ वद पद्मे साङ्गपूजां हरेरद्भुतकर्मणः । यामास्थाय विधानेन चरामि भुवनत्रयम् ॥ २ ॥ पद्मोवाच । एवं पादादिकेशान्तं ध्यात्वा तं

और परलोक तथा इस लोकमें धर्म-अर्थ-काम-और मोक्ष-रूप फलका देनेवाला है, जो महात्मा पुरुष इस स्तोत्रका पाठ करेंगे वे सम्पूर्ण पापोंसे छूट जायँगे ॥ २६ ॥ ३० ॥ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥

समाप्तश्चायं प्रथमोंऽशः ।

सूतजी कहतेहैं कि-हे ऋषियों ! साधुमण्डलीमें आदर पानेवाला, परम चतुर कल्किभगवानका दूत वह शुक सखियोंके बीचमें बैठीहुई पद्माकी ! इस बातको सुनकर कहने लगा ॥ १ ॥ कि-हे पद्मे ! अद्भुत कर्म करनेवाले श्रीहरिका पूजन सब अङ्गोंके सहित वर्णन करो, मैं विधिपूर्वक उसका अनुष्ठान करके त्रिलोकीमें विचरूँगा ॥ २ ॥ पदमा बोली कि-मूलमन्त्रको जाननेवाला साधक पुरुष जगदीश्वर विष्णुभगवान्को पूर्णात्मा जानकर और इसप्रकार चरणसे

जगदीश्वरम् । पूर्णात्मा देशिको मूलं मन्त्रं जपति मन्त्रवित् ३ जपादनन्तरं दण्डप्रणतिं मतिमांश्चरेत् । विश्वक्सेनादिकानान्तु दत्वा विष्णुनिवेदितम् ॥ ४ ॥ तत उद्वास्य हृदये स्थापयेन्मनसा सह । नृत्यन् गायन् हरेर्नाम तं पश्यन् सर्वतः स्थितम् ॥ ५ ॥ ततः शेषं मस्तकेन कृत्वा नैवेद्यभुग्भवेत् । इत्येतत् कथितं कीर ! कमलानाथसेवनम् ॥ ६ ॥ सकामानां कामपूरमकामामृतदायकम् । श्रोत्रानन्दकरं देवगन्धर्वनरहृत्प्रियम् ।७। शुक उवाच । समीरितं श्रुतं साध्वि ! भगवद्भक्तिलक्षणम् । त्वत्प्रसादात् पापिनो मे कीरस्य भुवि मुक्तिदम् ।८।

लेकर केशपर्य्यन्त ध्यान करके मूलमन्त्रका जप करें ॥ ३ ॥ बुद्धिमान पुरुष जप करके दण्डवत प्रणाम करे, फिर विश्वक्सेन आदि पार्षदोंको पाद्य-अर्घ्य-नैवेद्य आदि देकर भगवान्को निवेदन कीहुई वस्तु हृदयमें रखकर और उन सर्वव्यापी भगवान्का मनसे चिन्तवन करके मनही मनमें नृत्य गान और हरिकीर्त्तन करे ॥ ४ ॥ ५ ॥ फिर निर्माल्यको मस्तक पर धारण करके नैवेद्य भोजन करे, हे शुक ! यह मैंने लक्ष्मीपति भगवान्के पूजनकी रीति सुनादी ॥ ६ ॥ इसप्रकार पूजन करने पर कामनावान् पुरुषका मनोरथ पूर्ण होता है और कामनारहित पुरुषको मुक्ति मिलती है; यह देवता, गन्धर्व और मनुष्योंके हृदयको आनन्द देनेवाला तथा सबके कर्णोंको सुखदायक है ॥ ७ ॥ शुक बोला, कि-हे पतिव्रते ! तुमने विष्णुभगवान्की भक्तिके विषयमें जो कुछ कहा, वह मैंने सुना, अब मैं पापात्मा पक्षी होकर भी तुम्हारे अनुग्रहसे मुक्ति पाऊँगा ॥ ८ ॥ परन्तु मैं तुमको रत्नजटित

किन्तु त्वां काञ्चनमयीं प्रतिमां रत्नभूषिताम् । सजीवामिव पश्यामि दुर्लभां रूपिणीं श्रियम् ॥९॥ नान्यां पश्यामि सदृशीं रूपशीलगुणैस्तव । नान्यो योग्यो गुणी भर्त्ता भुवनेऽपि न दृश्यते ॥ १० ॥ किन्तु पारे समुद्रस्य परमाश्चर्यरूपवान् । गुणवानीश्वरः साक्षात् कश्चिद्द दृष्टोऽतिमानुषः ११ न हि धातृकृतं मन्ये शरीरं सर्वसौभगम् । यस्य श्रीवासुदेवस्य नान्तरं ध्यानयोगतः ॥१२॥ त्वया ध्यातं तु यद्रूपं विष्णोरमिततेजसः । तत् साक्षात्कृतमित्येव न तत्र कियदन्तरम् १३ पद्मोवाच । ब्रूहि तन्मम किं कुत्र जातः कीर ! परावरम् ।

आभूषणोंसे अलंकृत चेतनतायुक्त सुवर्णकी प्रतिमाकी समान देखरहा हूँ तुम्हारासा रूप त्रिलोकीमें दुर्लभ है, मुझे प्रतीत होता है, कि-तुम साक्षात् लक्ष्मी हो ॥ ९ ॥ तुम्हारासा रूप, गुण और स्वभाव किसी दूसरी स्त्रीमें देखनेमें नहीं आता और तुम्हारे योग्य गुणवान् पति भी त्रिलोकीमें (एकके सिवाय दूसरा) कोई नहीं दीखता है ॥ १० ॥ परन्तु समुद्रके पार परम-आश्चर्य रूपवान्, अलौकिक पुरुष, साक्षात् ईश्वररूप, एक गुणवान् पात्रको मैंने देखा है॥११॥ उसका सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर विधाताका रचाहुआसा नहीं प्रतीत होता, मैंने अनेकों प्रकारसे विचार कर देखा, परन्तु भगवान् वासुदेवसे उसमें कुछ भी भेद नहीं है ॥ १२ ॥ तुमने परमतेजस्वी विष्णुभगवान्की जिस मूर्त्तिका ध्यान किया है, मुझे प्रतीत होता है, कि—उसही मूर्त्तिका मैंने साक्षात् दर्शन किया था, उसमें किञ्चिन्मात्र भी भेद नहीं दीखता ॥१३॥ यह सुनकर पद्मा बोली, कि-हे शुक ! क्या कहा? फिर

जानासि तत्कृतं कर्म विस्तरेणात्र वर्णय ॥ १४ ॥ वृक्षादागच्छ पूजां ते करोमि विधिशोभिताम् । बीजपूरफलाहारं कुरु साधु पयः पिब ॥ १५ ॥ तव चञ्चुयुगं पद्मरागादारुणमुज्ज्वलम् । रत्नसंघट्टितमहं करोमि मनसः प्रियम् ॥ १६ ॥ कन्धरं सूर्यकान्तेन मणिना स्वर्णघट्टिना । करोम्याच्छादनं चारुमुक्ताभिः पक्षतिं तव ॥ १७ ॥ पतत्रं कुङ्कुमेनांगं सौरभेणातिचित्रितम् । करोमि नयनानन्ददायकं रूपमीदृशम् १८ पुच्छमच्छमणिव्रातघर्घरेणातिशब्दितम् । पादयोर्नूपुरालापलापिनं त्वां करोम्यहम् ॥ १९ ॥ तवामृतकथाव्रातत्यक्ताधि

कहो ? उन्होंने कहाँ जन्म लिया है ? यदि तुम्हें विस्तारपूर्वक विदित हो तो कहो, उन्होंने क्या क्या कर्म किये हैं ? ॥ १४ ॥ तुम वृक्षसे नीचे उतर आओ, मैं विधिपूर्वक तुम्हारा सत्कार करूँगी, यहाँ बीजपूर फल हैं, उनको भक्षण करके थोडासा निर्मल जलपान करलो ॥ १५ ॥ पद्मराग मणिसे भी अधिक लाल और अति उज्ज्वल तुम्हारी चोंचको तुम्हारी इच्छानुसार रत्नोंसे जड़वादूंगी १६ सुवर्णमें पुई हुई सूर्य्य कान्तमणिसे तुम्हारे कण्ठको भूषित करूँगी, तुम्हारे दोनों परोंको मोतियोंसे गुँथा दूंगी ॥१७॥ तुम्हारे पर और शरीरको सुगन्धित कुंकुमसे चित्रित करके तुम्हारा ऐसा रूप बना दूंगी कि देखने पर सबके नेत्रोंको आनन्द होगा ॥ १८ ॥ तुम्हारी पूंछ निर्मल मणियोंसे गुंथादूंगी, इससे उड़नेके समय अतिसुन्दर 'घर घर' शब्द होगा, तुम्हारे दोनों चरणोंको ऐसा सजाऊंगी कि-उड़नेके समय नूपुरोंकासा शब्द होगा ॥ १९ ॥ तुम्हारे अमृतरूप

शाधि मामिह । सखीभिः संगताभिस्ते किं करिष्यामि तद्वद २०
इति पद्मावचः श्रुत्वा तदन्तिकमुपागतः । कीरो धीरः प्रसन्नात्मा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ २१ ॥ कीर उवाच । ब्रह्मणा प्रार्थितः श्रीशो महाकारुणिको वभौ । शम्भले विष्णुयशसो गृहे धर्मरिरक्षिषुः ॥ २२ ॥ चतुर्भिर्भ्रातृभिर्ज्ञातिगोत्रजैः परिवारितः । कृतोपनयनो वेदमधीत्य रामसन्निधौ ॥ २३ ॥ धनुर्वेदश्च गान्धर्वं शिवादश्वमसिं शुकम् । कवचञ्च वरं लब्ध्वा शम्भलं पुनरागतः ॥ २४ ॥ विशाखयूपभूपालं प्राप्य शिक्षाविशेषतः । धर्मानाख्याय मतिमानधर्मांश्च निराकरोत् २५

वचनोंको सुननेसे मेरे मनकी पीड़ा दूर होगयी, अब आज्ञा करो कि-मैं सखियोंके सहित तुम्हारा कौनसा प्रिय कार्य करूं ॥ २० ॥ पद्माके इस वाक्यको सुनकर वह शुक मनमें प्रसन्न हुआ और धीरे२ पद्माके समीप पहुंचकर सब वृत्तांत कहने लगा ॥ २१ ॥ शुक बोला, कि—लक्ष्मीपति परमदयालु भगवान् ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे धर्म्मको स्थापन करनेके लिये सम्भल ग्राममें विष्णुयश नाम वाले ब्राह्मणके यहाँ अवतार लेकर विराजमान हैं ॥ २२ ॥ उनके चार भ्राता और गोत्र तथा जातिके पुरुष उनके अनुकूल कार्य्य करते हैं, यज्ञोपवीत होनेपर उन्होंने परशुरामजीसे वेद पढ़ा है।२३। वह धनुर्वेद और गान्धर्व वेद सीखकर तथा महादेवजीसे अश्व—खड्ग-शुक—कवच और वरदान पाकर सम्भलग्राम में लौटआये हैं ॥ २४ ॥ फिर उन परमप्रवीण कल्कि भगवान्ने विशाखयूप नामवाले राजासे मिलकर शिक्षाके द्वारा धर्मका प्रकाश और अधर्मकार्योंका नाश किया ।२५। यह

इति पद्मा तदाख्यानं निशम्य मुदितानना । प्रस्थापयामास शुकं कल्केरानयनादृता ॥ २६ ॥ भूषयित्वा स्वर्णरत्नैस्तमुवाच कृताञ्जलिः ॥ २७ ॥ पद्मोवाच । निवेदितं तु जानासि किमन्यत् कथयाम्यहम् । स्त्रीभावभयभीतात्मा यदि नायाति स प्रभुः ॥२८॥ तथापि मे कर्मदोषात् प्रणतिं कथयिष्यसि । शिवेन यो वरो दत्तः स मे शापोऽभवत् किल ॥२९॥ पुंसां मद्दर्शनेनापि स्त्रीभावं कामतः शुक ! । श्रुत्वेति पद्मामामन्त्र्य प्रणम्य च पुनः पुनः ।। ३० ॥ उड्डीय प्रययौ कीरः शंभलं कल्किपालितम् । तमागतं समाकर्ण्य कल्किः परपुरञ्जयः ३१

वृत्तान्त शुकके मुखसे सुनकर पद्मा का मुखकमल खिल उठा, फिर कल्किभगवान्को लानेको आदरके साथ शुकको भेजा ॥२६॥ पद्मा सुवर्ण और रत्नोंसे उसको भूषित करके हाथ जोड़े हुए कहनेलगी ॥२७॥ पद्मा बोली, कि-हे शुक ! जो कुछ मेरा निवेदन है सो वह तो तुम्हें विदित ही है, और अधिक क्या कहूँ हम स्त्री जाति सदा स्वाभाविक भयभीत रहती हैं, यदि वह प्रभु नहीं आवें तो भी मेरा प्रणाम कहकर मेरे कर्मोंके दोषसे जो कुछ हुआ है सो निवेदन कर देना, और कहदेना कि महादेवजीने मुझे जो वरदान दिया था, वह मेरेलिए शापरूप होगया ॥ २८ ॥२९॥ हे शुक ! जो पुरुष कामवासनायुक्त हृदयसे मेरा दर्शन भी करलेता है वह स्त्रीरूप होजाता है, इसप्रकार सन्देशा सुनकर और पद्माको सम्भाषण पूर्वक वारम्वार प्रणाम करके वह शुक तहाँसे उड़कर चलदिया, और कल्कि भगवान्की रक्षा किये हुए सम्भल नगरमें पहुंचा, अधर्मियोंके नगरोंको जीतनेवाले

क्रोड़े कृत्वा तं ददर्श स्वर्णरत्नविभूषितम् । सानन्दं परमानन्द-दायकं प्राह तं तदा ॥ ३२ ॥ कल्किः परमतेजस्वी परस्मिन्नमलं शुकम् । पूजयित्वा करे स्पृष्ट्वा पयःपानेन तर्पयन् ३३ तन्मुखे स्वमुखं दत्त्वा पप्रच्छ विविधाः कथाः । कस्माद्देशाच्चरित्वा त्वं दृष्टापूर्वं किमागतः ? ॥ ३४ ॥ कुत्रोषितः कुतो लब्धं मणिकाञ्चनभूषणम् । अहर्निशं त्वन्मिलिनं वाञ्छितं मम सर्वतः ॥ ३५ ॥ तवानालोकनेनापि क्षणं मे युगवद्भवेत् ॥ ३६ ॥ इति कल्केर्वचः श्रुत्वा प्रणिपत्य शुको भृशम् । कथयामास पद्मायाः कथाः पूर्वोदिता यथा ॥ ३७ ॥ संवाद-

---

कल्कि भगवान्ने शुकके आनेकी बातें सुनकर उस परमानन्ददायक शुकको गोदीमें लेकर देखा कि–वह सुवर्ण और रत्नोंसे भूषित होरहा है, तब तो कल्कि भगवान् आनन्द-पूर्वक उस शुकसे, सुवर्णादिसे भूषित होनेका कारण बूझने लगे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ परम तेजस्वी कल्कि भगवान्ने प्रथम तो उस पवित्र शुकको बाएँ हाथसे स्पर्श करके सत्कार-पूर्वक जलपान आदिसे तृप्त किया ॥ ३३ ॥ फिर उसके मुख पर अपना मुख लगाकर अनेकों प्रकारकी बातें बूझने लगे, कि–हे शुक ! तुमने आजकल किस देशमें विचरकर कौनसी अपूर्व वस्तु देखी ? तुम इतने समय पर्य्यन्त कहाँ रहे ? और सुवर्ण तथा रत्नोंके आभूषण तुम्हें कहाँसे मिले ? मैं रात्रि दिन सर्वथा तुमसे मिलनेकी इच्छा करता था ३४-३५ तुम्हारा दर्शन न होनेसे मुझे क्षणमात्र भी युगकी समान प्रतीत होता था ॥ ३६ ॥ शुकने कल्कि भगवान्की इस बात को सुनकर बारम्बार नमस्कार किया, फिर पहले पद्माने जो कुछ कहा था वह निवेदन किया ॥ ३७ ॥ और पद्मा

ात्मनस्तस्या निजालङ्कारधारणम्। सर्वं तद्वर्णयामास तस्याः प्रणतिपूर्वकम् ॥ ३८ ॥ श्रुत्वेति वचनं कल्किः शुकेन सहितो मुदा। जगाम त्वरितोऽश्वेन शिवदत्तेन तन्मनाः ॥ ३९ ॥ समुद्रपारममलं सिंहलं जनसंकुलम्। नानाविमानबहुलं भास्वरं मणिकाञ्चनैः ॥४०॥ प्रासादसदनाग्रेषु पताकातोरणाकुलम्। श्रेणीसभापणाट्टालपुरगोपुरमण्डितम् ॥ ४१ ॥ पुरस्त्रीपद्मिनीपद्मगन्धामोदद्विरेफिणीम्। पुरीं कारुमतीं तत्र ददर्श पुरतः स्थिताम् ॥ ४२ ॥ मरालजालसञ्चालविलोल-

---

ने जैसा व्यवहार किया था, उसके साथ जैसा वार्तालाप हुआ था, उसने जिसप्रकार आभूषण दिये थे, वह सब प्रणाम करके सुनाया ॥ ३८ ॥ इस वृत्तान्तको सुनकर कल्कि भगवान्का मन उस पद्मामें ही जापड़ा और शुकको साथ लेकर शिवजीके दियेहुए घोड़े पर चढ़कर शीघ्रतासे, चित्तमें प्रसन्न होते हुए सिंहलद्वीपको चलदिये ॥ ३९ ॥ वह सिंहलद्वीप समुद्रके पार बसाहुआ, असंख्यों मनुष्योंसे भरा नानाप्रकारके विमानोंसे शोभायमान और मणि तथा सुवर्णकी ढेरियोंसे प्रकाशवान् था ॥ ४० ॥ वह सिंहलद्वीप अटारी और घरोंके सन्मुख पताका तथा वन्दनवार होनेके कारण अत्यन्त शोभा पारहा था, पंक्तिके क्रमसे वनाई हुई सभायें दूकानों महलों और नगरके द्वारोंसे अत्यन्त शोभा पारहा था ॥ ४१ ॥ कल्कि भगवान्ने सिंहलद्वीपमें पहुंच कर कारुमती नामक नगरी देखी, उस पुरीमें पुरस्त्रीरूप कमलनियोंकी, सुगन्धसे भ्रमरोंके समूह आनन्दित होरहे थे ॥ ४२ ॥ उस नगरीके मध्यमें जो बहुतसे सरोवर थे

कमलान्तरम् । उन्मीलिताब्जमालालिकलिताकुलितं सरः४३ जलकुक्कुटदात्यूहनादितं हंससारसैः। ददर्श स्वच्छपयसां लहरीलोलवीजितम् ॥ ४४ ॥ वनं कदम्बकुद्दालशालतालाम्रकेसरैः । कपित्थाश्वत्थखर्जूरबीजपूरकरञ्जकैः ॥४५॥ पुन्नागपनसैर्नागरङ्गैरर्जुनशिंशपैः । क्रमुकैर्नारिकेलैश्च नानावृक्षैश्च शोभितम् । वनं ददर्श रुचिरं फलपुष्पदलावृतम् ॥४६॥ दृष्ट्वा हृष्टतनुः शुकं सकरुणः कल्किः पुरान्ते वने प्राह प्रीतिकरं

उनका जल हंसोंके समूहोंके फिरनेसे चञ्चल होरहा था, उन कल्कि भगवान्ने जिन सरोवरोंको देखा वे सब खिलेहुए कमलों पर स्थित भ्रमरोंसे व्याप्त होरहे थे, उनके चारों ओर हंस, सारस, जलमुरग और दात्यूह (कुञ्ज) पक्षियोंके समूह शब्द कररहे थे; निर्मल जलकी तरङ्गोंके सङ्गसे शीतल हुए पवनके द्वारा समीपके बगीचोंके वृक्ष हिलरहे थे, उन सब बगीचोंमें कदम्ब, कुद्दाल (कचनार). शाल, ताल, आम्र, बकुल (मौलसिरी), कपित्थ (कैथ), अश्वत्थ (पीपल) खजूर, बीजपूर, (जँबीरी नीबू), करञ्जक, पुन्नाग (नागकेशर), पनस (कठल). नागरङ्ग (नारङ्गी) अर्जुन, सीसों, क्रमुक (सुपारी) और नारियल आदि अनेकों प्रकारके वृक्ष शोभा पारहे थे; कल्कि भगवान्ने फल और सुन्दर फूलोंसे विराजमान उस वनको देखा ।४३-४६। उन कल्कि भगवान्ने नगरके समीपके वनमें ठहरकर और बगीचे आदि सबको देखकर चित्तमें आनन्द माना, और करुणार्द्र हृदयसे आदरपूर्वक शुकसे प्रेमयुक्त वचन बोले, कि- हे शुक ! इस स्थान पर हमें स्नान करना चाहिये, शुक भी

यचोऽत्र सरसि स्नातव्यमित्यादृतः । तच्छ्रुत्वा विनयान्वितः प्रभुमतं यामीति पद्माश्रमं । तत्सन्देशमिह प्रयाणमधुना नत्वा स कीरोऽवदत् ॥ ४७ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे
कल्केरागमनवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सूत उवाच । कल्किः सरोवराभ्यासे जलाहरणवर्त्मनि । स्वच्छस्फटिकसोपाने प्रवालाचितवेदिके ॥१॥ सरोजसौरभव्यग्रभ्रमद्भ्रमरनादिते । कदम्बपोतपत्रालिवारितादित्यदर्शने ॥ २ ॥ सप्तुवासासने चित्रे सदश्वेनावतारितः । कल्किः प्रस्थापयामास शुकं पद्माश्रमं मुदा ॥ ३ ॥ स नागेश्वरप

प्रभुके इस अभिप्रायको जानकर नम्रतापूर्वक कहने लगा, कि-मैं पद्माके स्थानको जाता हूं, इसप्रकार आज्ञा लेकर शुक पद्माके समीप गया, और कल्किभगवान्का सन्देशा तथा वहां आगमनका शुभ समाचार सुनाया ॥ ४७ ॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

सूतजी बोले, कि-हे शौनकादि ऋषियो ! उस सिंहलद्वीप की शोभा देखनेके अनन्तर कल्कि भगवान् अपने श्रेष्ठ घोड़े परसे उतरे और सरोवरके समीप जल लेजानेके मार्गपर, स्वच्छ स्फटिककी पैरियोंवाली मूँगोंसे जड़ीहुई चौतरीके ऊपर सुन्दर आसन पर बैठगये और देखा, कि-सरोवरके कमलोंकी सुगन्ध पर भौंरे "घुं घुं" शब्द करतेहुए चारों ओर उड़रहे हैं, कदम्बके नये पौधोंके पत्तोंके झुंडोंसे उस स्थानकी धूप दूर होरही है, कल्किभगवान्ने तहाँ बैठकर हृदयमें प्रसन्न होतेहुए शुकको पद्माके पास भेजा ॥१-३॥

ध्यस्थः शुको गत्वा ददर्श ताम् । हर्म्यस्थां विषिणीपत्र-शायिनीं सखीभिर्वृताम् ॥ ४ ॥ निश्वासवाततापेन म्लायतीं वदनाम्बुजम् । उत्क्षिपन्तीं सखीदत्तकमलं चन्दनोक्षितम् ॥ ५ ॥ रेवावारिपरिस्नातं परागास्यं समागतम् । धृत-नीरं रसगतं निन्दन्तीं पवनं प्रियम् ॥ ६ ॥ शुकः सकरुणः साधुवचनैस्तामतोषयत् । सा, त्वमेह्येहि, ते स्वस्ति, स्वागतं? स्वस्ति मे शुभे ! ॥ ७ ॥ गते त्वय्यतिव्यग्राहं शान्तिस्तेऽस्तु

वह शुक पद्माके स्थानमें पहुंचकर नागकेशरके वृक्षपर जा बैठा और देखा, कि-पद्मा ऊपरकी अटारीमें कमलके पत्तोंकी शय्यापर सोरही है, सखियें चारोंओर घेरकर बैठीहुई हैं४ जिसका मुखकमल विरहाग्निसे तपीहुई स्वासोंकी गरम वायु से कुम्हला रहा है, वह पद्मा सखियोंके दियेहुए चन्दनसे लिप्त खिलेहुए कमलको हाथसे घुमारही है ॥ ५ ॥ रेवा-नदीके जलसे सींचाहुआ, कमलकी परागसे युक्त, जलमिश्रित दक्षिण दिशाका सरस वायु सबको प्रिय प्रतीत होरहा है, परन्तु पद्मा उसकी निन्दा ही कररही है ॥ ६ ॥ इतनेमें ही शुकने दयायुक्त हृदयसे प्रिय वाक्य कहकर पद्माको सन्तोष दिया, शुकको देखते ही पद्मा बोली, कि-हे शुक ! आओ आओ, मेरे समीप आओ मेरे पास आओ, तुम कुशलसे तो हो ? शुक बोला, कि-हे शोभने ! मैं सब प्रकारसे कुशल हूँ ॥ ७ ॥ पद्मा बोली, कि-हे शुक ! तुम जिस समयसे गये हो मैं तबसे ही मनमें अत्यन्त व्याकुल होरही हूँ, शुक बोला, कि-अब रसायनसे तुम्हारा सब सन्ताप दूर होजा-

रसायनात् । रसायनं दुर्लभं मे, सुलभं ते शिवाश्रमे ॥ ८ ॥
क्व मे भाग्यविहीनाया ? इहैव वरवर्णिनि ! । देवि ! त्वं सरसस्तीरे प्रतिष्ठाप्यागता वयम् ॥ ९ ॥ एवमन्योऽन्यसंवाद-मुदितात्ममनोरथे । मुखं मुखेन नयनं नयने सादृता ददौ १०
विमला मालिनी लोला कमला कामकन्दला । विलासिनी चारुमती कुमुदेत्यष्टनायिकाः ॥ ११ ॥ सख्य एता मतास्ता-भिर्जलक्रोडार्थमुद्यताः । पद्मा प्राह सरस्तीरमायान्तु सा मया स्त्रियः ॥ १२ ॥ इत्याख्यायाशु शिविकामारुह्य परिवारिता।

यगा, पद्मा बोली कि-हे शुक ! मेरे सन्तापकी औषधि मिलना अति-कठिन है, यह सुनकर शुकने कहा, कि-हे शिवकी सेवक ! तुम्हारे सन्तापको दूर करनेकी औषधि दुर्लभ नहीं है, किन्तु बहुत ही सुलभ है ॥८॥ पद्मा बोली कि-हे शुक ! मैं मन्दभाग्य हूँ, फिर मेरा मनोरथ किस प्रकार और कहाँसे पूरा होसकेगा ? शुक बोला, कि-हे वरवर्णिनि ! तुम्हारा मनोरथ यहां ही सिद्ध होजायगा, हे देवि ! मैं उनको यहाँ ही सरोवरके तटपर बैठाकर आरहा हूँ ॥ ९ ॥ पद्मा और शुकका इसप्रकार परस्पर वार्तालाप होनेपर पद्मा अपना मनोरथ सिद्ध होनेकी आशा पाकर हृदयमें प्रसन्न हुई फिर उसने आदरपूर्वक अपना मुख शुक के मुखसे और अपने नेत्र शुकके नेत्रोंसे लगादिये ॥१०॥ विमला, मालिनी, लोला, कमला, कामकन्दला, विलासिनी चारुमती, और कुमुदा, ये आठ नायिका, उसकी प्रिय सखी थीं, उसने इन आठों सखियोंके साथ जलक्रीड़ाका विचार किया और उन सखियोंसे बोली, कि-हे सखियों ! तुम मेरे साथ सरोवरके तटपर चलो ॥ ११-१२ ॥ पद्मा

सखीभिश्चारुवेशाभिर्भूत्वा स्वान्तःपुराद्बहिः। ययौ तत्ररितं द्रष्टुं भैष्मी यदुपतिं यथा ॥ १३ ॥ जनाः पुमांसः पथि ये पुरस्थाः प्रदुद्रुवुः स्त्रीत्वभयाद् दिगन्तरम्। श्रृंगाटके वा विपणिस्थिता ये निजांगनास्थापितपुण्यकार्याः ॥ १४ ॥ निवारितां तां शिविकां वहन्त्यः नार्योऽतिमत्ता बलवत्तराश्च। पद्मा शुकोक्त्या तदुपपुपस्था जगाम ताभिः परिवारिताभिः सरोजलं सारसहंसनादितं प्रफुल्लपद्मोद्भवरेणुवासितम्। चेरुर्विगाह्याशु सुधाकरालसाः कुमुद्वतीनामुदयाय शोभनाः१६

यह बात कहकर उसी समय पालकीमें सवार होगई, सखियों ने उज्वल वस्त्र धारण करलिये और सब रणवासमें से उस के चारों ओर घिरकर चलदीं, जिसप्रकार श्रीकृष्णका दर्शन करने रुक्मिणी नगरमेंसे बाहर आई थी, तिसी प्रकार वह कल्किभगवानका दर्शन करने नगरके बाहर गयी १३ मार्गमें, चौकमें, और बाजारमें जो नगरके लोग फिर रहे थे सब पद्माकी पालकीको आती हुई देखकर स्त्रीरूप होने के भयसे चारोंओरको भागगये उन पुरुषोंकी स्त्रियें अपने२ पतियोंको कुशलपूर्वक आते हुए देखकर देवपूजन आदि पुण्यकर्म करने लगीं ॥ १४ ॥ इस प्रकार मार्गमें कोईभी पुरुष नहीं रहा, यौवनसे मत्त हुई और बलवती स्त्रियें पालकीको उठाये लेजारही थीं, पद्मा शुकके कहनेके अनुसार उस शिविकामें बैठीहुई सखियोंके साथ सरोवरको गयी ॥१५॥ तदनन्तर चन्द्रवदना सुन्दर स्त्रियें सारस और हंसोंकी मधुरध्वनिसे युक्त, खिलेहुए कमलोंकी परागसे बसे हुए सरोवरके जलमें स्नान करके कुमुदनीको विकसित करने

तासां मुखामोदमदान्धभृङ्गाः विहाय पद्मानि मुखारविन्दे ।
लग्नाः सुगन्धाधिकमाकलय्य निवारिताश्चापि न तत्यजुस्ते १७
हासोपहासैः सरसप्रकाशैः वाद्यैश्च नृत्यैश्च जले विहारैः । कर-
ग्रहैस्ता जलयोधनार्त्ताश्चकर्ष ताभिर्वनिताभिरुच्चैः १८ सा
कामतप्ता मनसा शुकोक्तिं विविच्य पद्मा सखिभिः समेता ।
जलात् समुत्थाय महार्हभूषा जगाम निर्दिष्टकदम्बषण्डम् १९
सुखे शयानं मणिवेदिकागतं कल्किं पुरस्तादतिसूर्यवर्चसम् ।

के अभिप्रायसे चन्द्रमाको ढूंढनेके निमित्त विचरनेलगीं, अर्थात् उस पद्माका चित्त प्रसन्न करनेके निमित्त कल्कि-भगवान्को ढूँढनेलगी, भौंरे उनके मुखकमलकी सुगन्धके मदसे अन्धे होकर विकसित कमलको छोड़कर उनके मुख-कमलों पर बैठने लगे; वह सुन्दरी बारम्बार उन भौंरोंको उड़ाती थीं, परन्तु भौंरे मुखरूपी कमलमें अधिक सुगन्धि देखकर दूर नहीं होते थे ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ पद्माने रसयुक्त हास्य भरे बाजेके शब्द और नृत्यके द्वारा, उन सखियोंके हाथ पकड़कर अनेक प्रकारकी जलकी क्रीड़ा करके सखियों के मनको हरलिया, और उन सखियोंने भी उस पद्माको प्रसन्न किया ॥ १८ ॥ तदनन्तर कामदेवसे पीड़ित हुई वह पद्मा मनही मनमें शुकके वाक्यको विचारकर सखियोंसहित जलमेंसे निकली, फिर बहुमूल्य आभूषणोंको धारण करके शुकके बताए हुए कदम्बके नीचे गयी ॥ १९ ॥ उसने शुक के साथ कदम्बके नीचे जाकर देखा, कि–सामने मणि-जटित चौंतरे पर कल्कि भगवान् शयन करके सुखनिद्रा लेरहे हैं, उनका तेजपुञ्ज सूर्यके भी तेजको तिरस्कार कररहा

महामणिव्रातविभूषणाचितं शुकेन सार्द्धं तमुदक्ततेशम् ॥२०॥
तमालनीलं कमलापतिं प्रभुं पीताम्बरं चारुसरोजलोचनम्।
आजानुबाहुं पृथुपीनवक्षसं श्रीवत्ससत्कौस्तुभकान्तिराजितम्
तदद्भुतं रूपमवेक्ष्य पद्मा संस्तम्भिता विस्मृतसत्क्रियार्था।
सुप्तं तु संबोधयितुं प्रवृत्तं निवारयामास विशङ्कितात्मा २२
कदाचिदेषोऽतिबलोऽतिरूपी मद्दर्शनात् स्त्रीत्वमुपैति साक्षात्।
तदात्र किं मे भविता भवस्य वरेण शापप्रतिमेन लोके २३
चराचरात्मा जगतामधीशः प्रबोधितस्तदहृदयं विविच्य। ददर्श

है, उनके सब अङ्ग बहुमूल्य मणियोंसे भूषित होरहे हैं।२०। वह प्रभु लक्ष्मीपति, तमालकी समान नीलवर्ण, पीताम्बरधारी कमलके पत्रकी समान रमणीय, विशाललोचन, आजानु-बाहु, विशाल और पुष्ट वक्षःस्थलवाले श्रीवत्सचिन्हसे शोभायमान और कौस्तुभ मणिकी कान्तिसे विराजमान हैं ॥ २१ ॥ पद्मा इस अद्भुत रूपको देखकर ज्योंकी त्यों खड़ीरही, भयभीत होकर यथोचित सत्कार करना भी भूल गयी, और जब शुक कल्कि भगवान्को जगाने लगा, तब पद्माने हृदयमें शङ्कित होकर उस शुकको रोकदिया और कहने लगी, कि-यदि यह महावीर सुन्दर स्वरूप पुरुष मुझे देख कर स्त्रीरूप होगये तो महादेवके वरदानका मुझे क्या लाभ होगा ? क्योंकि-महादेवजीका वरदान मुझे शापरूप होकर लगरहा है ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसप्रकार पद्मा और शुकका सम्भाषण होरहा था, कि-इतनेमें ही चराचर जगत्के अन्त-र्यामी, जगदीश्वर कल्कि भगवान् पद्माके हृदयके अभिप्राय को जानकर जगगये और उस समय उन्होंने देखा, कि-जिस

पद्मां प्रियरूपशोभां यथा रमा श्रीमधुसूदनाग्रे ॥ २४ ॥
संवीक्ष्य मायामिव मोहिनीं तां जगाद कामाकुलितः स कल्किः-
सखीभिरीशां समुपागतां तां कटाक्षविक्षेपविनामितास्याम् २५
इहेहि सुस्वागतमस्तु भाग्यात् समागमस्ते कुशलाय मे स्यात् ।
तवाननेन्दुः किल कामपूरतापापनोदाय सुखाय कान्ते ! २६
लोलाक्षिलावण्यरसामृतं ते कामाहिदष्टस्य विधातुरस्य । तनो-
तु शान्तिं सुकृतेन कृत्या सुदुर्लभं जीवनमाश्रितस्य ॥ २७ ॥
बाहू तवैतौ कुरुतां मनोज्ञौ हृदि स्थितं काममुदन्तवासम् ।

प्रकार विष्णु भगवान्के सामने लक्ष्मी खड़ी हो तिसीप्रकार उनके सामने परम रूपवती मृगनयनी पद्मा खड़ी है ॥२४॥ वह कल्कि भगवान् सखियों सहित सामने खड़ीहुई और नीचेको मुख करके कटाक्षनिक्षेप करती हुई साक्षात् मायाकी समान मनको मोहित करनेवाली राजकुमारी पद्माको देखकर कामवासनायुक्त हृदयसे कहनेलगे ॥ २५ ॥ कि—हे कान्ते ! आओ, आओ ! मेरे समीप आओ ! ! तुम्हारा आगमन कल्याणका कारण हो, तुम्हारे साथ मेरा समागम होनेसे मेरा मङ्गल होगा, क्योंकि तुम्हारे चन्द्रवदनसे मेरे कामवेग को शान्ति और सुखकी वृद्धि होगी ॥ २६ ॥ हे चञ्चल नेत्रवाली ! मैं जगत्का विधाता हूँ, तिसपर भी कामदेवरूप कालसर्प मुझको डसरहा है, इस समय तुम्हारे लावण्यरूप अमृतके विना उसके शान्त होनेका दूसरा उपाय नहीं है, यह शान्ति परमपुण्य और परमपुरुषार्थसे भी दुर्लभ है, तथा इस आश्रितजनका जीवनरूप है ॥ २७ ॥ जिसप्रकार हाथीवान् अङ्कुशसे मत्त-मातङ्गके गण्डस्थलको विदीर्ण करता है तिसी–

चार्वायतौ चारुनखांकुशेन द्विपं यथा सादिविदीर्णकुम्भम् २८ स्तनाविमावुत्थितमस्तकौ ते कामप्रतोदाविव वाससाक्तौ। ममोरसा भिन्ननिजाभिमानौ सुवर्त्तुलौ व्यादिशतां प्रियं मे २९ कान्तस्य सोपानमिदं वलित्रयं सूत्रेण लोमावलिलेखलक्षितम् विभाजितं वेदिविलग्नमध्यमे ! कामस्य दुर्गाश्रयमस्तु मे प्रियम् रम्भोरु ! सम्भोगसुखाय मे स्यात् नितम्बबिम्बं पुलिनोपमं ते । तन्वङ्गि ! तन्वंशुकसङ्गशोभं प्रमत्तकामाविमदोद्यमालम् पादाम्बुजं तेऽङ्गुलिपत्रचित्रितं वरं मरालक्वणनूपुरावृतम् ।

प्रकार तुम्हारे यह मनोहर, रमणीय और विशाल दोनों बाहु सुन्दर नखरूप अँकुशके द्वारा मेरे हृदयमें स्थित कामदेवरूप मत्तमातङ्गको विदीर्ण कररहे हैं ॥ २८ ॥ तुम्हारे ये वस्त्रसे ढकेहुए सुन्दर गोल दोनों स्तन कामदेवके चाबुककी समान शिर उठारहे हैं, ये मेरे वक्षःस्थलसे नीचे होकर मेरे मनोरथ को पूर्ण करें ॥ २९ ॥ हे प्रियतमे! तुम्हारा उदर यज्ञकी वेदी की समान मध्यभागमें सूक्ष्म है, सूत्रसे विभक्त कीहुई रोमावलीके चिन्हसे युक्त यह तुम्हारे उदरकी त्रिवली कामदेवकी सीढ़ी और निवास करनेका दुर्गरूप होरही है, इससे यह मुझे प्रसन्नता देनेवाली हो ॥ ३० ॥ हे रम्भोरु ! तुम्हारे ये नितम्ब-बिम्ब सूक्ष्मवस्त्रसे ढकेहुए, नदीके तटकी समान शोभायमान होरहे हैं, हे कृशाङ्गी ! तुम्हारे इस नितम्बसे कामसे मत्त पुरुषकी कामवासनाका उद्यम दूर होता है, इस समय ये मेरे सम्भोगसुखके कारण हों ॥ ३१ ॥ मेरे हृदयरूप निर्मलजलमें स्थित, अंगुलीरूप पत्तोंसे विराजमान, हंस की समान शब्दकारी नूपुरोंसे शोभायमान, परमरमणीय

कामाहिदष्टस्य ममास्तु शान्तये हृदि स्थितं सदमलने सुशोभने ॥ ३२ ॥ श्रुत्वैतद्वचनामृतं कलिकुलध्वंसस्य कल्केरलं दृष्ट्वा सत्पुरुषत्वमस्य मुदिता पद्मा सखीभिर्वृता । कान्तं क्लान्तमनाः कृताञ्जलिपुटा प्रोवाच तत् सादरं धीरं धीरपुरस्कृतं निजपतिं नत्वा नमत्कन्धरा ॥ ३३ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे पद्माकल्किसाक्षात्संवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २॥

सूत उवाच । सा पद्मा तं हरिं मत्वा प्रेमगद्गदभाषिणी । तुष्टाव व्रीडिता देवी करुणावरुणालयम् ॥ १ ॥ प्रसीद जगतां नाथ! धर्मवर्मन् ! रमापते ! । विदितोऽसि विशुद्धात्मन् ! वशगां

तुम्हारे दोनों चरणकमलसे मेरा कामदेवरूप जहरीले सर्पके काटनेका विष दूर हो ॥ ३२ ॥ तदनन्तर पद्मा कलिकुलनाशक कल्कि भगवानके अमृततुल्य इस वचनको सुनकर और उनके पुरुषपनेको पूर्ण देखकर अत्यन्त आनन्दको प्राप्त हुई, फिर उसका मन कल्कि भगवान्की ओर लवलीन होगया, इस कारण उसने सखियों सहित मस्तक नवाकर प्रणाम किया, और धैर्यवान् पुरुषोंके सन्मान किये हुए अपने पति कल्किजीसे आदरपूर्वक धीरे२ कहने लगी ॥ ३३ ॥ दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

सूतजी बोले, कि—हे ऋषियो ! तदनन्तर वह पद्मा उन करुणानिधि कल्किजीको साक्षात् विष्णु जानकर लज्जित हुई और प्रेमके कारण गद्गद वाणीसे स्तुति करनेलगी।१। कि—हे रमापते ! आप जगत्के नाथ और धर्मके कवचरूप हो; हे विशुद्धरूप ! आपको मैंने पहचान लिया; हे प्रभो !

त्राहि मां प्रभो ! ॥ २ ॥ धन्याहं कृतपुण्याहं तपोदानजपव्रतैः। त्वां प्रतोष्य दुराराध्यं लब्धं तव पदाम्बुजम् ॥ ३ ॥ आज्ञां कुरु पदाम्भोजं तव संस्पृश्य शोभनम् । भवनं यामि राजानमाख्यातुं स्वागतं तव ॥ ४ ॥ इति पद्मा रूपसद्मा गत्वा स्वपितरं नृपम् । दोत्याचागमनं कल्केर्विष्णोरंशस्य दौत्यकैः ५ सखीमुखेन पद्मायाः पाणिग्रहणकाम्यया । हरेरागमनं श्रुत्वा सहर्षोऽभूद् बृहद्रथः ॥ ६ ॥ पुरोधसा ब्राह्मणैश्च पात्रैर्मित्रैः सुमङ्गलैः । वाद्यताण्डवगीतैश्च पूजायोजनपाणिभिः ।७। जगामानयितुं कल्किं सार्द्धं निजजनैः प्रभुः । मण्डयित्वा कारु-

अब मैं आपकी शरणागत हूँ; आप मेरी रक्षा करो; ॥ २ ॥ मैं धन्य और पुण्यवान् हूँ, जो अति कठिनसे आराधना करने योग्य भी आपको तप, दान और जप तथा व्रतके द्वारा प्रसन्न करके मैंने आपके चरणकमलोंका दर्शन पाया ॥३॥ अब आप मुझे आज्ञा कीजिये मैं आपके कोमलचरणोंका स्पर्श करके स्थानको जाऊँ और राजाको आपके शुभागमन का वृत्तान्त सुनाऊँ ॥ ४ ॥ परमरूपवती पद्मा ऐसा कहकर स्थानको गई और दूतके द्वारा पिताके पास विष्णुभगवान्के अंशरूप कल्किजीके आगमनका वृत्तान्त कहला भेजा॥ ५ ॥ राजा बृहद्रथने पद्माकी सखीसे जिस समय सुना, कि—विवाह की अभिलाषासे कल्कि भगवान् आये हैं, उस समय उसके हर्षकी सीमा न रही ॥ ६ ॥ सुनते ही वह राजा पुरोहित, ब्राह्मण, और मित्रोंके सहित पूजाकी सामग्री लेकर माङ्गलिक नृत्य, गान और वाजोंको सुनता तथा देखता हुआ कल्किजीके लानेको चलदिया; उस समय राजाके सम्पूर्ण

मतीं पताकास्वर्णतोरणैः ॥ ८ ॥ ततो जलशयाभ्यासं गत्वा विष्णुयशःसुतम् । मणिवेदिकयासीनं भुवनैकगतिं पतिम् ९ घनाघनोपरि यथा शोभन्ते रुचिराण्यहो । विद्युदिन्द्रायुधादीनि तथैव भूषणान्युत ॥ १०॥ शरीरे पीतवासाग्रघोरभासा विभूषितम् । रूपलावण्यसदने मदनोग्रमनाशने ॥ ११ ॥ ददर्श पुरतो राजा रूपशीलगुणाकरम् । साश्रुः सपुलकः श्रीशं दृष्ट्वा साधु तमर्चयत् ॥ १२ ॥ ज्ञानागोचरमेतन्मे तवागमनमीश्वर ! । यथा मान्धातृपुत्रस्य यदुनाथेन कानने ॥ १३ ॥

बान्धव साथ हो लिये, पताका और सुवर्णकी वन्दरवारोंसे कारुमति नगरी शोभायमान होगई ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ तदनन्तर राजाने सरोवरके समीप जाकर देखा, कि–विष्णुयश के पुत्र शरणागतरक्षक, जगत्पति विष्णुभगवान् मणिजटित स्फटिककी चौतरी पर बैठेहुए हैं ॥ ९ ॥ जलकी वर्षा करने वाले काले मेघमण्डलके ऊपर जिसप्रकार मनोहर बिजली और इन्द्रधनुष आदि शोभित होते हैं, तिसीप्रकार कल्कि भगवान्के श्यामवर्ण शरीर पर नानाप्रकारके आभूषण शोभा पारहे हैं ॥ १० ॥ रूपलावण्यका स्थान, कामदेवको पराजित करनेवाला उनका शरीर पीताम्बरके अग्रभागकी परमकान्तिसे शोभायमान होरहा है ॥ ११ ॥ राजा रूपवान् गुणवान् और सुशील लक्ष्मीपति कल्कि भगवान्को सामने देखकर पुलकित होगया और उसके नेत्रोंमेंसे आँसुओंका प्रवाह बहने लगा, फिर विधिपूर्वक उनका पूजन करके बोला ॥ १२ ॥ कि–हे जगदीश्वर ! जिसप्रकार मान्धाताके पुत्रको वनमें यदुनाथका दर्शन हुआ था, तिसीप्रकार यहाँ

इत्युक्त्वा तं पूजयित्वा समानीय निजाश्रमे। हर्म्यप्रासाद-संबाधे स्थापयित्वा ददौ सुताम् ॥१४॥ पद्मां पद्मपलाशाक्षीं पद्मनेत्राय पद्मिनीम्। पद्मजादेशतः पद्मनाभायादाद् यथा-क्रमम् ॥ १५ ॥ कल्किर्लब्ध्वा प्रियां भार्यां सिंहले साधु-सत्कृतः। समुवास विशेषज्ञः समीक्ष्य द्वीपमुत्तमम् ॥ १६ ॥ राजानः स्त्रीत्वमापन्नाः पद्मायाः सखितां गताः। द्रष्टुं समी-युस्त्वरिताः कल्किं विष्णुं जगत्पतिम् ॥१७॥ ताः स्त्रियोऽपि तमालोक्य संस्पृश्य चरणाम्बुजम्। पुनः पुंस्त्वं समापन्ना रेवास्नानात् तदाज्ञया ॥ १८ ॥ पद्माकल्की गौरकृष्णौ त्रिप-

आपका आना मुझे स्वप्नमें भी अगोचर था ॥ १३ ॥ राजा बृहद्रथ यह कहकर और पूजन करके कल्कि भगवान्‌को महल और मन्दिरोंसे शोभायमान अपने राजभवनमें लाया, और कुछ दिनों आदरपूर्वक रखकर कन्यादान करदिया, उस राजाने पद्मयोनि ब्रह्माकी आज्ञाके अनुसार पद्मनेत्र, पद्मनाभ, कल्कि भगवान्‌को पद्मनी पद्मा विधिपूर्वक समर्पण करदी ॥ १५ ॥ परम प्रवीण कल्कि भगवान् प्रियतमा स्त्री, साधुपुरुषोंसे उत्तम सत्कार और सिंहलद्वीपका उत्तम स्थान पाकर कुछ दिनों तहाँही रहते रहे॥ १६॥ जो राजे स्त्रीरूप होकर पद्माकी सखी बनगए थे, वे शीघ्रही त्रिलोकीनाथ कल्कि भगवान्‌का दर्शन करनेको आये ॥ १७॥ उन सबने कल्कि भगवान्‌का दर्शन करके उनके चरणकमलोंका स्पर्श किया, और उनकी आज्ञानुसार रेवानदीमें स्नान करतेही स्त्रीरूपको त्याग फिर पुरुषरूप होगये ॥ १८ ॥ पद्मा गौर-वर्ण और कल्कि भगवान् कृष्णवर्ण थे, इसकारण दोनोंमें

रीतान्तराबुभौ। बहिःस्फुटौ नीलपीतवासोव्याजेन पश्यतु १९ दृष्ट्वा प्रभावं कल्केस्तु राजानः परमाद्भुतम्। प्रणम्य परया भक्त्या तुष्टुवुः शरणार्थिनः॥ २० ॥ जय जय निजमायया कल्पिताशेषविशेषकल्पनापरिणामाजलाप्लुतलोकत्रयोपकरणमाकलय्य मनुमनिशम्य पूरितमविजनाद्विजनाद्विभूतमहामीनशरीरात्वं निजकृतधर्मसेतुसंरक्षणाकृतावतारः २१ पुनरिह दितिजबलपरिलंघितवासवसूदनादृत–जितभुवनपराक्रमहिरण्याक्ष-

परस्पर विपरीतभाव था, इसलिये मानों पद्माका नीलाम्बर और कल्कि भगवान्का पीताम्बररूप बाहरका वर्ण प्रकाशित होकर सबको परस्परके रूपकी एकता दिखारहा था १९ राजे लोग कल्कि भगवान्का परम अद्भुत प्रभाव देखकर शरणमें आये और परमभक्तिके साथ नमस्कार करके स्तुति करने लगे ॥ २० ॥ राजे बोले, कि–हे भगवन्! आपकी जय हो, जय हो, आप अपनी मायाके द्वारा जगत्की अनेकों प्रकारकी विचित्र रचना करते हो, और आपकी मायाके बलसे ही उस जगत्का परिणाम (प्रलय) होता है, तुम त्रिलोकीकी सम्पूर्ण सामग्रीको जलमें डूबीहुई देखकर और वेदमन्त्रोंका उच्चारण न होते देखकर पक्षी और मनुष्य आदि प्राणियोंसे शून्य निर्जन स्थानमें मत्स्यरूपसे प्रकट हुए थे, अपने रचेहुए धर्म्मरूप सेतुकी रक्षा करनेके निमित्त आपका ऐसा अवतार होता है॥ २१ ॥ जिस समय दैत्यों की सेना इन्द्रको पराजित करने लगी और त्रिभुवनविजयी परमपराक्रमी हिरण्याक्ष दैत्य भी उन इन्द्रदेवका संहार करनेके निमित्त उद्यत हुआ, उस समय दैत्योंका नाश और

निश्चनपृथिव्युद्धरणसंकल्पाभिनिवेशेन धृतकीलावतारः पाहि नः ॥ २२ ॥ पुनरिह जलधिमथनादृतदेवदानवगणमन्दराचलानयनव्याकुलितानां साहाय्येनादृतचित्त ! पर्वतोद्धरणामृतप्राशनरचनावतार ! कूर्म्माकार ! प्रसीद परेश ! त्वं दीननृपाणाम् ॥ २३ ॥ पुनरिह त्रिभुवनजयिनो महाबलपराक्रमस्य हिरण्यकशिपोरर्दितानां देववराणां भयभीतानां कल्याणाय दितिसुतवधप्रेप्सुर्ब्रह्मणो वरदानादवध्यस्य न शस्त्रास्त्ररात्रि

पृथ्वीका उद्धार करनेका सङ्कल्प करके आपने महावराह अवतार धारण किया, अब आप हमारी रक्षा करिये ॥ २२ ॥ पहिले जिस समय देवता और दैत्योंने मिलकर समुद्रको मथनेके निमित्त मन्दराचल पर्वतको स्थापन करनेका स्थान नहीं पाया और चित्तमें व्याकुल हुए, उस समय आपने उनकी सहायता करनेका सङ्कल्प करके कूर्म्म अवतार धारण किया. और फिर उस पर्वतको अपनी पीठ पर धारण किया देवताओंके अमृतपान करानेके अभिप्रायसे ही आपने कूर्मरूप धारण किया था, हे परमेश्वर! अब आप हम दीन हीन राजाओंके ऊपर प्रसन्न हूजिये ॥ २३ ॥ जिस समय महाबली परमपराक्रमी त्रिभुवनविजयी हिरण्यकशिपु प्रधान प्रधान देवताओंको पीड़ा देनेलगा और देवता भी जिस समय उस दैत्यके भयसे अत्यन्त भयभीत हुए, तब आपने उनकी रक्षा करनेके निमित्त उस दैत्यराज हिरण्यकशिपुके वध करनेका सङ्कल्प किया, परन्तु वह दैत्यराज ब्रह्माजीके वरदान के कारण अवध्य था अर्थात् ब्रह्माजीने उसको यह वरदान दिया था, कि-देवता, गन्धर्व, किन्नर, मनुष्य अथवा नाग,

दिवास्वर्गमर्त्यपातालतले देवगन्धर्वकिन्नरनरनागैरिति विचिन्त्य नरहरिरूपेण नखाग्रभिन्नारुन्दष्टदन्तच्छदं त्यक्तासुं कृतवानसि ॥२४॥ पुनरिह त्रिजगज्जयिनो बलेः सत्रे शक्रानुजो वटुर्वामनो दैत्यसम्मोहनाय त्रिपदभूमियाञ्चाच्छलेन विश्वकायस्तदुत्सृष्टजलसंस्पर्शविवृद्धमनोऽभिलाषस्त्वं भूतले बलेर्दौवारिकत्वमङ्गीकृतमुचितं दानफलम् ॥ २५ ॥ पुनरिह हैहयादिनृपाणाम् अमितबलपराक्रमाणां नानामदोल्लङ्घितमर्या-

शस्त्र और अस्त्रसे, रात्रिमें, दिनमें, स्वर्गमें, मृत्युलोकमें, और पाताललोकमें तेरा वध नहीं कर सकेंगे, आपने यह सब विचारकर नृसिंहरूप धारण किया, तब दैत्यराज हिरण्यकशिपु आपको देखकर क्रोधके कारण दाँतोंसे नीचेके ओठ को चबाने लगा, और युद्ध करनेके निमित्त उद्यत हुआ तब आपने नखोंके अग्रभागसे उसके उदरको फाड़ कर उसको यमलोकका अतिथि बनादिया ॥ २४ ॥ फिर आपने त्रिलोकीके जीतनेवाले बलिराजाके यज्ञमें इन्द्रके अनुज (छोटे-भ्राता) होकर. वामनमूर्त्ति (बौनारूप) धारणकर, दैत्यराज बलिको मोहित करनेके निमित्त तीनचरण भूमि मांगी, फिर सङ्कल्पके निमित्त जल छोड़ते ही अपने मनकी अभिलाषा पूर्ण होनेसे आपने विराटरूप धारण करके एकचरणसे मृत्युलोक और दूसरे चरणसे स्वर्गलोकको नापलिया, और इन्द्रदेवको देदिया, फिर बलिको पातालमें भेजकर त्रिलोकी को दान करनेके फलरूप,आप उसके द्वारपाल बने ॥२५॥ फिर अतिबली और परमपराक्रमी हैहय आदि राजे ,जब अहङ्कारसे मत्त हो धर्म्म और मर्यादाका उल्लङ्घन करनेलगे,

दावर्त्मनां निधनाय भृगुवंशजो जामदग्न्यः पितृहोमधेनुहरणप्रवृद्धमन्युवशात् त्रिसप्तकृत्वो निःक्षत्रियां पृथिवीं कृतवानसि परशुरामावतारः ॥ २६ ॥ पुनरिह पुलस्त्यवंशावतंसस्य विश्रवसः पुत्रस्य निशाचरस्य रावणस्य लोकत्रयतापनस्य निधनमुररीकृत्य रविकुलजातदशरथात्मजो विश्वामित्रादस्त्राण्युपलभ्य वने सीताहरणवशात् प्रवृद्धमन्युना अम्बुधिं वानरैर्निबध्य सगणं दशकन्धरं हतवानसि रामावतारः ॥ २७ ॥ पुनरिह यदुकुलजलधिकलानिधिः सकलसुरगणसेवितपादार-

तब आपने उन उन्मत्त राजाओंका वध करनेके निमित्त भृगुवंशावतंस जमदग्नि ऋषिके यहाँ परशुराम अवतार धारण किया, फिर आपने उस परशुराम अवतारमें पिताके होमकी धेनु का हरण करनेके कारण अत्यन्त क्रुद्ध होकर इक्कीसवार पृथ्वीको क्षत्रियहीन किया, ॥ २६ ॥ तदनन्तर जब पुलस्त्य वंशावतंस विश्रवा मुनिका पुत्र राक्षस रावण अपने प्रतापसे त्रिलोकीको दुःखित करनेलगा, तब उसका वध करनेकी इच्छासे आपने सूर्य्यवंशी राजा दशरथके पुत्ररूपसे रामावतार धारण किया, फिर विश्वामित्रजीसे अस्त्रविद्या सीखकर जब पिताकी आज्ञानुसार वनको गये, तब उस रावणने सीताको हरलिया, इससे आपने क्रुद्ध होकर वानरों की सेना इकट्ठी की और समुद्रका सेतु बाँधकर रावणका कुल सहित नाश करदिया ॥ २७॥ तदनन्तर फिर यादवकुलरूप समुद्रके चन्द्रमारूप, वसुदेवपुत्र, श्रीकृष्णावतार धारण करके अनेकदैत्य दानवोंका नाशकर त्रिलोकीका दुःख दूर किया, तिससे सम्पूर्ण देवता उस श्रीकृष्णावतारके

निन्दद्वन्द्वः विविधदानवदैत्यदलनलोकत्रयदुरिततापनो वसुदेवात्मजो रामावतारो बलभद्रस्त्वमसि ॥ २८ ॥ पुनरिह विधिकृतवेदधर्मानुष्ठानविहितनानादर्शनसंघृणः संसारकर्म त्यागविधिना ब्रह्माभासविलासचातुरीं प्रकृतिविमाननाम सम्पादयन् बुद्धावतारस्त्वमसि ॥ २९ ॥ अधुना कलिकुल नाशावतारो बौद्धपाषण्डम्लेच्छादीनाञ्च वेदधर्मसेतुपरिपालनाय कृतवतारः कल्किरूपेणास्मान् स्त्रीत्वनिरयादुद्धृतवानसि तवानुकम्पां किमिह कथयामः ॥ ३० ॥ क्व ते ब्रह्मादीनामविदितविलासावतरणं । क्व नः काम-

---

चरणारविंदोंको सेवा करनेलगे, उस समय आपने श्रीकृष्ण और बलरामरूपसे अवतार धारण किया था ॥ २८॥ फिर आपने ही ईश्वरकृत वैदिक धर्मके अनुष्ठानमें अर्थात् यज्ञादि करनेमें अनेकों प्रकारकी घृणा दिखाकर संसारके त्यागके द्वारा मिथ्या माया प्रपञ्चको दूर करनेका उपदेश देनेके लिये बुद्धावतार धारण किया ॥ २९ ॥ अब आप कलिकुल का नाश करनेके निमित्त तथा बौद्ध, पाखंड और म्लेच्छ आदि अधर्मियोंका नाश करनेके लिये कल्कि अवतार धारण करके वैदिकधर्मरूप सेतुकी रक्षा कररहे हो इस समय आपने हमारा स्त्रीत्वरूप नरकसे उद्धार किया है इसकारण हम आप के अनुग्रहका क्या वर्णन करें ॥ ३० ॥ ब्रह्माआदि देवता जिनकी लीलाओंको जाननेको समर्थ नहीं होते, फिर जो कामिनीके देखनेसे कामदेवके बाणोंसे बाड़ित होरहे हैं और जिनका मन मृगतृष्णासे पीड़ित होरहे

वामाकुलितमृगतृष्णार्त्तमनसाम् । सुदुष्प्राप्यं युष्मच्चरणजल-जालोकनमिदं! कृपापारावारः प्रमुदितदृशाश्वासय निजान्॥३१

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे नृपाणां स्तवो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सूत उवाच । श्रुत्वा नृपाणां भक्तानां वचनं पुरुषोत्तमः । ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्रवर्णानां धर्ममाह यत् ।१। प्रवृत्तानां निवृत्तानां कर्म यत् परिकीर्तितम् । सर्वं संश्रावयामास वेदानामनुशासनम् २इति कल्केर्वचः श्रुत्वा राजानो विशदाशयाः। प्रणिपत्य पुनः प्राहुः पूर्वान्नु गतिमात्मनः ॥ ३ ॥ स्त्रीत्वं वाप्यथवा पुंस्त्वं कस्य वा केन वा कृतम् । जरायौवनबाल्यादिसुखदुःखादि-

---

हैं ऐसे हम अधर्मोंको आपकी लीला कैसे मालूम होसकती है; हमको आपके चरणकमलोंका दर्शन होना दुर्लभ था, हे कृपासिंधो ! हम आपके शरणागत हैं आप हमारे ऊपर प्रेमयुक्त नेत्रोंका कटाक्षपात करिये ३१ तीसरा अध्याय समाप्त

सूतजी बोले, कि-हे ऋषियों ! पुरुषोत्तम कल्कि भगवान् अपने भक्त राजाओंकी स्तुति सुनकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंके धर्मोंका उपदेश करनेलगे ॥१॥ संसारमें आसक्त तथा आसक्तिरहित पुरुषोंके लिये वेदमें कहे हुए जो२ कर्म हैं,वे सब भी उन राजाओंको सुनाये२ राजे, कल्कि भगवान्से यह सब सुनकर पवित्रहृदय होगये फिर भगवान्को नमस्कार करके उन राजाओंने अपनी दशाके विषयमें प्रश्न किया ॥ ३ ॥ कि-किस कारणसे और किसने स्त्री तथा पुरुषका भेद किया है ? बाल्य यौवन और बुढ़ापा—और सुख दुःख आदि किस कारण और

कञ्च यत् ॥ ४ ॥ कस्मात् कुतो वा कस्मिन् वा क्रियेतदिति वा विभो ! । अनिर्णीतान्यविदितान्यपि कर्माणि वर्णय ॥ ५ ॥ (तदा तदाकर्ण्य कल्किरनन्तं मुनिमस्मरत् ।) सोऽप्यनन्तो मुनिवरस्तीर्थपादो बृहद्व्रतः ॥ ६ ॥ कल्केर्दर्शनतो मुक्तिमाकलय्यागतस्त्वरन् । समागत्य पुनः प्राह किं करिष्यामि कुत्र वा । यास्यामीति वचः श्रुत्वा कल्किः प्राह हसन् मुनिम् ७ कृतं दृष्टं त्वया सर्वं ज्ञात याह्यनिवर्त्तकम् ! अदृष्टमकृतञ्चेति श्रुत्वा हृष्टमना मुनिः ॥ ८ ॥ गमनायोद्यतं तं तु दृष्ट्वा नृप-

कहाँसे प्राप्त होते हैं ? हे प्रभो ! यह सब हमें सुनाकर और जो २ विषय हमें मालूम नहीं हैं वे भी हमें सुनानेकी कृपा करिये ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ कल्कि भगवान्ने यह सुनकर 'अनन्त' नामक मुनिका स्मरण किया, बहुतकालके तीर्थवासी व्रतधारी मुनि "अनन्त" जी भी स्मरण करतेही कल्कि भगवान्का दर्शन करनेसे मुक्ति होगी, ऐसा विचारकर शीघ्रही तहाँ आगये क्योंकि—उनको भी मुक्तिका अद्वितीय उपाय मिलगया, वह अनन्त मुनि, कल्कि भगवान्के पास आकर कहने लगे, कि—मेरे करने योग्य क्या कार्य है ? जिसको मैं करूँ, मुझे कहाँ जाना होगा ? आज्ञा करिये ? यह सुन कर कल्कि भगवान् उन अनन्त मुनिसे बोले ॥ ६ ॥ ॥७ ॥ कि—जो कुछ मैंने किया है वह सब आपने देखा है और सब आप जानते हैं,प्रारब्धका खण्डन कोई नहीं करसकता, कर्म्म विना करे कोई कर्म्मके फलको नहीं भोगता है, अनन्त महर्षि यह बात सुनकर परम आनन्दित हुए ॥ ८ ॥ फिर चलनेको उद्यत होगये यह देखकर वे राजे उनकी ओर

गणास्ततः। कल्किं कमलपत्राक्षं प्रोचुर्विस्मितचेतसः ॥ ९ ॥ राजान ऊचुः। किमनेनापि कथितं त्वया वा किमुतान्युत। सर्वं तच्छ्रोतुमिच्छामः कथोपकथनं द्वयोः ॥ १० ॥ नृपाणां तद्वचः श्रुत्वा तानाह मधुसूदनः। पृच्छतामुं मुनिं शान्तं कथोपकथनादृताः ॥ ११ ॥ इति कल्केर्वचो भूयः श्रुत्वा ते नृपसत्तमाः। अनन्तमाहुः प्रणताः प्रश्नपारं तितीर्षवः ॥ १२ ॥ राजान ऊचुः। मुने ! किमत्र कथनं कल्किना धर्मवर्मणा। दुर्बोधः केन वा जातस्तत्त्वं वर्णय नः प्रभो ! ॥ १३ ॥ मुनिरुवाच। पुरिकायां परि पुरा पिता मे वेद पारगः। विद्रुमो नाम

को देखतेहुए आश्चर्यके साथ कमलदललोचन कल्कि भगवान्से बोले ॥ ९ ॥ राजे बोले, कि-इन महर्षिजीने क्या कहा ? और आपने उसका क्या उत्तर दिया ? आपका आपसमें क्या वार्त्तालाप हुआ ? उसको सुननेकी हमारी इच्छा है ॥ १० ॥ मधुसूदन कल्कि भगवान् राजाओंकी यह बात सुनकर कहने लगे, कि-हमारा जिस विषयमें वार्त्तालाप हुआ, उसको जाननेकी यदि तुम्हारी इच्छा है तो इन शान्तहृदय मुनिसे बूझो ॥ ११ ॥ वे राजे, कल्कि भगवान्की यह बात सुनकर प्रश्नका मर्म्म जाननेके लिये अनन्त मुनिको प्रणाम करके बूझने लगे ॥ १२ ॥ राजे बोले, कि-हे महर्षे ! धर्म्मकी कवचरूपसे रक्षा करनेवाले कल्कि भगवान्के साथ आपका जो वार्तालाप हुआ सो हमारी समझमें नहीं आया इसका क्या कारण है ? हे प्रभो ! आप हमसे उसका ठीक कारण कहिये ॥ १३ ॥ यह सुनकर अनन्त मुनि बोले, कि-पहिले पुरिका नामकी नगरीमें वेद वेदाङ्गको जानने

धर्मज्ञः ख्यातः परहिते रतः ॥ १४ ॥ सोमा मम विभो !माता पतिधर्मपरायणा । तयोर्वयःपरिणतौ काले षण्डाकृतिस्त्वहम् ॥१५॥ सञ्जातः शोकदः पित्रोर्लोकानां निन्दिताकृतिः। मामालोक्य पिता क्लीवं दुःखशोकभयाकुलः ॥ १६ ॥ त्यक्त्वा गृहं शिववनं गत्वा तुष्टाव शङ्करम्। सम्पूज्येशं विधानेन धूपदीपानुलेपनैः ॥ १७ ॥ विद्रुम उवाच । शिवं शान्तं सर्वलोकैकनाथं भूतावासं वासुकीकण्ठभूषम् । जटाजूटबद्ध गङ्गातरङ्गं वन्दे सांन्द्रानन्दसन्दोहदक्षम् ॥ १८ ॥ इत्यादि

वाले परमधर्म्मज्ञ सम्पूर्ण प्राणियोंके हितैषी, एक महर्षि निवास करते थे, उनका नाम विद्रुम था और वह मेरे पिता थे ॥ १४ ॥ मेरी माताका नाम सोमा था, वह परम पतिव्रता थी; मेरे माता पिताकी वृद्धावस्थामें मेरा जन्म हुआ, परन्तु मैं नपुंसक हुआ ॥ १५ ॥ इस कारण मेरे माता पिताके शोक और दुःखकी सीमा न रही, मेरी आकृति (सूरत) देखकर सब निन्दा करनेलगे, मेरे पिता मुझे षण्डाकृति (खोजेकी सूरत) नंपुसक देखकर दुःख शोक और भयसे अत्यन्त व्याकुल हुए ॥ १६ ॥ और घरको त्यागकर शिववनमें चले गये, तहाँ धूप–दीप–चन्दन आदिसे विधिपूर्वक शिवजीका पूजन करके स्तुति करने लगे ॥ १७ ॥ विद्रुम महर्षि बोले, कि–जो सम्पूर्ण लोकोंके अद्वितीय नाथ, जो कल्याणदायक और जो सम्पूर्ण प्राणियोंके आश्रय हैं, नागराज वासुकि जिनके कण्ठका भूषणरूप है, जिनके जटाजूट में गङ्गाकी तरंगें बँध रही हैं, उन आनन्दघन, परमानन्ददायक शिवजीको नमस्कार करता हूँ ॥१८॥इसप्रकार बहुत

बहुभिः स्तोत्रैः स्तुतः स शिवदः शिवः । वृषारूढः प्रसन्नात्मा पितरं प्राह मे वृणु ॥ १६ ॥ विद्रुमो मे पिता प्राह मत्पुंस्त्वं तापतापितः । हसन् शिवो ददौ पुंस्त्वं पार्वत्या प्रतिमोदितः२० मम पुंस्त्ववरं लब्ध्वा पितायातः पुनर्गृहम् । पुरुषं मां समालोक्य सहर्षः प्रियया सह ॥२१॥ ततः प्रवयसौ तौ तु पितरौ द्वादशाब्दके । विवाहं मे कारयित्वा बन्धुभिर्मुदमापतुः २२ यज्ञरातसुतां पत्नीं मानिनीं रूपशालिनीम् । प्राप्याहं परितुष्टात्मा गृहस्थः स्त्रीवशोऽभवम् ॥ २३ ॥ ततः कतिपये काले

स्तुति करने पर कल्याणकारक महादेवजी प्रसन्न हुए, और वृष (बैल) के ऊपर चढ़े हुए प्रकट होकर प्रसन्नमुखसे मेरे पितासे कहनेलगे, कि—वर माँग ॥ १६ ॥ यह सुन मेरे पिता विद्रुम महर्षि बोले, कि-मेरा पुत्र क्लीब है, इसकारण मैं हृदयमें अत्यन्त दुःखित रहता हूँ, महादेवजीने हँसकर" मेरे पुरुष होनेका" वरदान दियाः पार्वतीजीने भी उस समय मेरे पिताको ऐसा वरदान देनेकी महादेवजीको सम्मति दी ॥ २० ॥ तदनन्तर मेरे पिता मेरे पुरुषत्वरूप वरदान को पा फिर घरको लौट आये और मेरी नंपुसकता दूर होनेपर मुझे पुरुषरूप देखकर उनके आनन्दकी सीमा न रही ॥ २१ ॥ तदनन्तर मेरी बारह वर्षकी अवस्था होनेपर वृद्ध माता पिता मेरा विवाह करके बांधवों सहित परम प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥ मैं भी रूपवती, मानिनी, तरुणी यज्ञरातकी पुत्रीको स्त्रीरूपसे पाकर हृदयमें परम प्रसन्न होता हुआ गृहस्थाश्रममें निवास करने लगा, फिर धीरे२ मैं स्त्री के वशमें होगया ॥२३॥ तदनन्तर कुछ काल बीतने पर मेरे

पितरौ मे मृतौ नृपाः ! । पारलौकिककार्याणि सुहृद्भिर्ब्राह्मणै-र्वृतः ॥ २४ ॥ तयोः कृत्वा विधानेन भोजयित्वा द्विजान् बहून् । पित्रोर्वियोगतप्तोऽहं विष्णुसेवापरोऽभवम् ॥ २५ ॥ तुष्टो हरिर्मे भगवान् जपपूजादिकर्मभिः । स्वप्ने मामाह मा-येयं स्नेहमोहविनिर्मिता ॥ २६ ॥ अयं पितेयं मातेति ममता-कुलचेतसाम् । शोकदुःखभयोद्वेगजरामृत्युविधायिका ॥ २७ ॥ श्रुत्वेति वचनं विष्णोः प्रतिवादार्थमुद्यतम् । मायालक्ष्यान्तर्हितः विनिद्रोऽहं ततोऽभवम् ॥ २८ ॥ सविस्मयः सभार्योऽहं त्य-

माता पिताका परलोकवास होगया, मैंने मित्र और ब्राह्मणों के साथ सावधानतासे उनकी पारलौकिक क्रिया की॥२४॥ तदनन्तर मैंने पिता माताका और्ध्वदैहिक कर्म करके बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन कराया, फिर माता पिताके वियोगसे हृदयमें दुःख मानकर मैंने विष्णुभगवान्का पूजन करना प्रारम्भ करदिया ॥ २५ ॥ भगवान् श्रीहरि मेरे जप पूजन आदि कर्मसे प्रसन्न होगये और उन्होंने स्वप्नमें मुझसे कहा, कि-स्नेह ममता आदिका समूहरूप यह संसार मेरी माया ही है ॥ २६ ॥ यह मेरे पिता हैं और यह मेरी माता है, इसप्रकार ममतासे जिनका मन व्याकुल रहता है वे ही मेरी मायासे शोक, दुःख, भय व्याकुलता, वृद्धावस्था और मृत्यु आदिके क्लेशको भोगते हैं ॥ २७ ॥ मैं विष्णु भगवान्की यह बात सुनकर उनके साथ वाद विवाद करनेको उद्यत हुआ, इतनेमें ही वह अन्तर्धान होगये, और मेरी निद्रा भी भङ्ग होगयी ॥ २८ ॥ हे राजाओं ! तदनन्तर मैं आश्च-

क्त्वा तां पुरिकां पुरीम्। पुरुषोत्तमाख्यं श्रीविष्णोरालयं चागमं नृपाः॥ २९॥ तत्रैव दक्षिणे पार्श्वे निर्मायाश्रममुत्तमम् सभार्यः सानुगामात्यः करोमि हरिसेवनम्॥ ३०॥ मायासन्दर्शनाकांक्षी हरिसद्मनि संस्थितः। गायन् नृत्यन् जपन् नाम चिन्तयन् शमनापहम्॥ ३१॥ एवं वृत्ते द्वादशाब्दे द्वादश्यां पारणा दिने। स्नातुकामः समुद्रेऽहं बन्धुभिः सहितो-गतः॥ ३२॥ तत्र मग्नं जलनिधौ लहरीलोलसंकुले। समुत्थातुमशक्तं मां प्रतुदन्ति जलेचराः॥ ३३॥ निमज्जनोन्मज्जनेन व्याकुलीकृतचेतसम्। जलहिल्लोलमिलनदलिताङ्ग-

---

ग्यमें होकर पुरिका नगरीको त्याग स्त्रीसहित पुरुषोत्तम नामक स्थानको चलागया॥ २९॥ मैंने उन पुरुषोत्तमके दाहिनी ओर अपना उत्तम आश्रम बनाया, और तहाँ रहकर स्त्री तथा सेवकों सहित श्रीहरिकी सेवा करने लगा॥ ३०॥ मैं विष्णुभगवानके उस पुरुषोत्तम नामक स्थानमें रहकर उनकी मायाको देखनेकी इच्छासे नृत्य, गान और जपके द्वारा यमका भय दूर करनेवाले श्रीहरिका चिन्तवन करने लगा॥ ३१॥ ऐसा करते२ बारह वर्ष बीतगये, तब एक समय द्वादशीकी पारणा (व्रतके अन्तके भोजन) के दिन, मैं बान्धवोंको साथ लेकर स्नान करनेकी इच्छासे समुद्रके तट पर गया॥ ३२॥ तहाँ समुद्रमें ज्योंही गोता लगाया वैसेही भयानक तरङ्गोंसे व्याकुल होगया, और उठ नहीं सका, मत्स्य आदि जलचर मुझे नोचने लगे॥ ३३॥ मैं कभी डूबजाता था, कभी उछल आता था, इसप्रकार मेरा अन्तः-करण व्याकुल होगया, मैं जलकी हिलोरोंसे अचेत (बेहोश) होगया, मेरा सम्पूर्ण अङ्ग वशमें न रहा और क्या

चेतनम् ॥ ३४ ॥ जलधेर्दक्षिणे कूले पतितं पवनेरितम् । मां तत्र पतितं दृष्ट्वा वृद्धशर्मा द्विजोत्तमः ॥ ३५ ॥ सन्ध्यामुपास्य सघृणः स्वपुरं मां समानयत् । स वृद्धशर्मा धर्मात्मा पुत्रदार-धनान्वितः । कृत्वाऽव्रणन्तु मां तत्र पुत्रवत् पर्यपालयत् ॥३६॥ अहन्तु तत्र दीनात्मा दिग्देशाभिज्ञ एव न । दम्पती तौ स्व-पितरौ मत्वा तत्रावसं नृपाः ! ॥ ३७ ॥ स मां विज्ञाय बहुधा वेदधर्मेष्वनुष्ठितम् । प्रददौ स्वां दुहितरं विवाहे विनयान्वितः ३८ लब्ध्वा चामीकराकारां रूपशीलगुणान्विताम् । नाम्ना चारु

कहूँ मैं मृतककी समान होगया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर वायुके वेगने चलायमान करके मुझे समुद्रके दक्षिण तटपर लाकर डालदिया, मैं तहाँ पड़ा था, कि उसी समय एक वृद्ध-शर्म्मा नामक ब्राह्मणने मुझे उस दशामें देखा, और सन्ध्या वन्दनके अनन्तर करुणायुक्त हृदयसे मुझे अपने घरको ले-गया, धर्मात्मा और स्त्री, पुत्र, धन-आदिसे—सम्पन्न वह वृद्धशर्म्मा ब्राह्मण मुझे नीरोग करके मेरा पुत्रकी समान पालन करनेलगा ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥ हे राजाओं ! मैं तहाँ दिशा–देश–आदि कुछ भी नहीं जानता था अर्थात् अन्तः-करणमें अत्यन्त दुःखित रहता था और उन ब्राह्मण ब्राह्मणी को ही माता पिता मानकर तहाँही निवास करता रहा।३७। जब उस ब्राह्मणने अनेक प्रकारसे परीक्षा करके मुझे देख लिया, कि–यह वेदविहित धर्म्मका आचरणकरनेवाला है, तब उसने नम्रतापूर्वक अपनी कन्याके साथ मेरा विवाह करदिया ॥ ३८ ॥ उस ब्राह्मणकन्याका नाम चारुमती था उसके शरीरका वर्ण तपाए हुए सुवर्णकी समान था; वह

मतीं तत्र मानिनीं विस्मितोऽभवम् ॥ ३९ ॥ तयाहं परितुष्टात्मा नानाभोगसुखान्वितः । जनयित्वा पञ्च पुत्रान् सम्मदेनावृतोऽभवम् ॥ ४० ॥ जयश्च विजयश्चैव कमलो विमलस्तथा । बुध इत्यादयः पञ्च विदितास्तनया मम ॥ ४१ ॥ स्वजनैर्बन्धुभिः पुत्रैर्धनैर्नानाविधैरहम् । विदितः पूजितो लोके देवैरिन्द्रो यथा दिवि ॥ ४२ ॥ बुधस्य ज्येष्ठपुत्रस्य विवाहार्थं समुद्यतम् । दृष्ट्वा द्विजवरस्तुष्टो धर्मसारो निजां सुताम् ॥ ४३ ॥ दित्सुः कर्माणि वेदज्ञश्चकाराभ्युदयान्यपि । वाद्यैर्गीतैश्च नृत्यैश्च

रूप, गुण-और शीलयुक्त थी, मैं उस सन्मान करने योग्य स्त्रीको पाकर अत्यन्त आश्चर्य्यमें होगया॥ ३९॥ वह चारुमती सदा मुझे प्रसन्न करने लगी, मैं तहाँ अनेकों प्रकार के सुखभोग करने लगा, कालके क्रमसे मेरे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए, मैं निरन्तर आनन्दके समुद्रमें मग्न होने लगा ४० मैंने अपने पाँचों पुत्रोंका नाम जय, विजय, कमल, विमल और बुध रक्खा ॥ ४१ ॥ अपने पुत्र और बान्धव होनेसे तथा अनेकों प्रकारके धनोंका स्वामी होनेसे, जिसप्रकार इन्द्र स्वर्गमें देवताओंके पूजनीय हैं, तिसीप्रकार मैं सबका पूजनीय और सर्वत्र विख्यात होगया ॥ ४२ ॥ मुझे अपने बुध नामक ज्येष्ठ पुत्रका विवाह करनेको उद्यत हुआ देखकर एक धर्म्मसार नामक ब्राह्मणने प्रसन्न-चित्तसे अपनी कन्या देनेकी इच्छा की, उसने कन्याका विवाह करनेको वेद के पारङ्गत ब्राह्मणोंसे सम्पूर्ण माङ्गलिक कर्म्म कराये, अनेकों प्रकारके सुवर्णके आभूषणोंसे अलंकृत सौभाग्यवती स्त्रियोंसे नृत्य, गान कराना प्रारम्भ किया, बाजोंकी मधुर-

स्त्रीगणैः स्वर्णभूषितैः ॥ ४४ ॥ अहञ्च पुत्राभ्युदये पितृदेवर्षितर्पणम् । कर्त्तुं समुद्रवेलायां प्रविष्टः परमादरात् ॥४५ ॥ वेलालोलायिततनुर्जलादुत्थाय सत्वरः । तीरे सखीन् स्नानसन्ध्यापरान् वीच्याहमुन्मनाः ॥४६॥ सद्यः समभवं भूपाः ! द्वादश्यां पारणाद्दतान् । पुरुषोत्तमसंवासान् विष्णुसेवार्थमुद्यतान् । ४७ ॥ तेऽपि मामग्रतः कृत्वा तद्रूपवयसां निधिम् । विस्मयाविष्टमनसं दृष्ट्वा मामब्रुवन् जनाः ॥ ४८ ॥ अनन्त ! विष्णुभक्तोऽसि जले किं दृष्टवानिह । स्थले वा व्यग्रमनसं

ध्वनिसे सबका चित्त आकर्षित होने लगा ॥ ४३ ॥ ॥ ४४ ॥ मैं भी अपने पुत्रके अभ्युदय (मङ्गल) के निमित्त पितृतर्पण देवतर्पण और ऋषितर्पण करनेकी इच्छासे श्रद्धापूर्वक समुद्रतटपर पहुंचा ॥ ४५ ॥ वहाँ समुद्रके जलमें स्नान और तर्पण करके शीघ्रतासे जलमेंसे निकलकर तटकी ओर जानेको उद्यत हुआ, तो तटपर दृष्टि डालतेही क्या देखता हूँ, पुरुषोत्तम क्षेत्रके रहनेवाले मेरे पहिले बान्धव स्नान और सन्ध्या कररहे है, मैं उनको देखकर जरा भी नहीं घबड़ाया ॥ ४६ ॥ परन्तु हे राजाओं ! पुरुषोत्तम क्षेत्रवासी ब्राह्मणोंको द्वादशीकी पारणा करते देखकर मेरे मनमें जैसा आश्चर्य और व्याकुलता हुई उसको मैं कह नहीं सक्ता ॥ ४७ ॥ पहिले द्वादशीकी पारणाके दिन स्नान करते समय मेरा जैसा रूप और जैसी अवस्था थी उसमें कुछ भी अन्तर नहीं हुआ, पुरुषोत्तम क्षेत्रवासी पुरुष मुझे आश्चर्ययुक्त और व्याकुल देखकर बूझने लगे ॥ ४८ ॥ कि–हे अनन्त ! इस समय किस कारण तुम व्याकुल दीख-

लक्षयामः कथं ततः ॥ ४९ ॥ पारणं कुरु तद् ब्रूहि त्यक्त्वा विस्मयमात्मनः । तानब्रुवमहं नैव किञ्चिद्द दृष्टं श्रुतं जनाः ! ॥५०॥ कामात्मा तत् कृपणधीर्मायासंदर्शनादृतः । तया हरेर्माययाहं मूढो व्याकुलितेन्द्रियः ॥ ५१ ॥ न शर्म वेद्मि कुत्रापि स्नेहमोहवशं गतः । आत्मनो विस्मृतिरियं को वेद विदितां तु ताम् ॥ ५२ ॥ इति भार्याधनागारिपुत्रोद्वाहानुरक्तधीः । अनन्तोऽहं दीनमना न जाने स्वात्पसम्मितम् ॥ ५३ ॥ मां वीक्ष्य

रहे हो ? तुम परम वैष्णव हो, क्या जलमें या स्थलमें तुमने कुछ देखा है ? ॥ ४९ ॥ यदि देखा हो तो कहो और विस्मय तथा चित्तकी व्यग्रताको त्यागकर पारणा करो, हे राजाओं ! मैंने उनसे कहा, कि–हे बान्धवों ! न मैंने कुछ देखा है, और न सुना है ॥ ५० ॥ परन्तु मैं अत्यन्त काममोहित हूँ, और मेरा अन्तःकरण अत्यन्त दुर्बल है मैंने भगवान्की मायाको देखनेकी इच्छा की थी, तिस श्रीहरिकी मायासे इस समय, मैं अति दीनबुद्धि (विचारशक्तिहीन) होरहा हूँ, और मेरी इन्द्रियें भी व्याकुल होरही हैं ॥ ५१ ॥ मैं स्नेह और मोहके वशमें ऐसा होरहा हूँ, कि–मेरा चित्त कहीं भी स्थिर नहीं होता, मैं जैसा अपनेको भूलगया था सो कह नहीं सकता परन्तु मैं श्रीहरिकी मायाके लिये जिस जालमें पड़ा हूँ उस मायाजालका कोई भी अनुभव नहीं करसकता ।५२। जिसप्रकार स्त्री, पुत्र, धन, स्थान और पुत्रके विवाह आदि करने में अत्यन्त आसक्त होनेसे मेरा मन खिन्न और दुःखित होरहा है, सो मैं कह नहीं सक्ता, मेरी बुद्धिमें कुछ भी निश्चय नहीं होता है, पुरुषोत्तम भगवान्की लीला मुझे स्वप्नकी

मानिनी भार्या विवशं मूढवत् स्थितम् । क्रन्दन्ती किमहोऽकस्मात् आलपन्ती ममान्तिके ॥ ५४ ॥ इह तां वीक्ष्य तांस्तत्र स्मृत्वा कातरमानसम् । हंसोऽप्येको बोधयितुमागतो मां सदुक्तिभिः ॥ ५५ ॥ धीरो विदितसर्वार्थः पूर्णः परमधर्मवित् ५६ सूर्याकारं सत्त्वसारं प्रशान्तं दान्तं शुद्धं लोकशोकक्षयिष्णुम् ! ममाग्रेतं पूजयित्वा मदङ्गाः पप्रच्छुस्ते पच्छुत्रमध्यानकामाः ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे अनन्तमायादर्शनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सूत उवाच । उपविष्टे तदा हंसे भिक्षां कृत्वा यथोचिताम् ।

समान प्रतीत होती है ॥ ५३ ॥ हे राजाओं ! मैं इसप्रकार व्यग्र होरहा था, कि–उसी अवसरमें अभिमानवती स्त्री मुझे विवश और मूढ़की समान बैठाहुआ देखकर हाय ! अचानक क्या होगया ! ऐसे कहती और रोदन करती हुई मेरे पास आयी ॥ ५४ ॥ मैं पुरुषोत्तमक्षेत्रमें पहिली स्त्रीको देख कर अपनी उस स्त्री–पुत्र और सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यादिके स्मरण से अत्यन्तही कातर और दुःखित होने लगा, इतनेमेंही एक परमहंस मेरे वचनोंसे ही मुझे समझानेको तहाँ आकर उपस्थित होगये ॥ ५५ ॥ वह परमहंस धैर्यवान् सर्वज्ञ पूर्ण और परम धार्मिक थे ॥ ५६ ॥ वह परमहंस सूर्य्यकी समान तेजस्वी, सत्त्वगुणधारी, शान्त, शुद्ध और सबके दुःखोंको दूर करवाले थे, मेरे बांधव मेरे सामने खड़ेहुए उन परमहंस का पूजन करके बूझने लगे, कि––इसका मङ्गल किस प्रकार हो ॥५७॥ चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

सूतजी बोले, कि–हे ऋषियों ! वह परमहंस यथोचित

ततः प्राहुरनन्तस्य शरीरारोग्यकाम्यया ॥ १ ॥ हंसस्तेषां मतं ज्ञात्वा प्राह मां पुरतः स्थितम् । तव चारुमती भार्या पुत्राः पञ्च बुधादयः ॥ धनरत्नान्वितं सद्म संबाधं सौधसंकुलम् । त्यक्त्वा कदागतोऽसीह पुत्रोद्वाहदिने न तु ॥ ३ ॥ समुद्रतीरसञ्चारः पुराद्ध धर्मजनादृतः । निमन्त्र्य मामिहायातः शोकसम्विग्नमानसः ॥ ४ ॥ त्वञ्च सप्ततिवर्षीयस्तत्र दृष्टो मया प्रभो त्रिंशद्वर्षीयवत् कस्मात् इति मे संभ्रमो महान् ॥ ५ ॥

रीतिसे भिक्षा करके बैठे, तब पुरुषोत्तमक्षेत्रनिवासी ब्राह्मणों ने मेरे नीरोग होनेका उपाय बूझा ॥ १ ॥ वह परमहंस उनके अभिप्रायको जानकर सन्मुख बैठेहुए मेरी ओर देखकर कहने लगे, कि-हे अनन्त ! चारुमती नामक अपनी स्त्री, बुध आदि पाँचों पुत्र; अटारियोंसे विराजमान तथा नानाप्रकार के धन और रत्नोंसे युक्त एवं परस्पर मिलेहुए अपूर्व स्थान इन सबको त्यागकर यहाँ कब आये हो?आज तो तुम्हारे पुत्र के विवाहका दिन है ? तुम तो समुद्रके दक्षिण तटपर निवास करते थे, आज भी तुम्हें वहाँ समुद्रके तटपर विचरता हुआ देखा था, वहाँके सम्पूर्ण धर्मात्मा पुरुष तुम्हारा सत्कार करते थे, तुमने पुत्रके विवाहके लिये आज मुझे भी निमन्त्रण दिया था, अब तुम अपनी नगरीसे यहाँ आगये, मैं देखता हूँ, कि -तुम्हारा अन्तःकरण अत्यन्त शोकसे खिन्न होरहा है ॥ २-३-४ ॥ हे ज्ञानिन् ! मैंने वहाँ तुम्हें सत्तर वर्षका वृद्ध देखा था, और यहाँ तुम्हें तीस वर्षकी तरुण अवस्थाका देखरहा हूँ, इसका क्या कारण है ? इस विषय में मुझे बड़ा सन्देह है ॥ ५ ॥ यह जो मैं इस समय तुम्हारी

इयं भार्या सहाया ते न तत्रालोकिता क्वचित् । अहं वा क्व कुतस्तस्मात्कथं वा केन काशितः ॥ ६ ॥ स एव वा न चापि त्वं नाहं वा भिक्षुरेव सः । आवयोरिह संयोगश्चेन्द्रजाल इवाभवत् ॥७॥ त्व गृहस्थः स्वधर्मज्ञो भिक्षुकोऽहं परात्मकः । आवयोरिह संवादो वालकोन्मत्तयोरिव ।८। तस्यादीशस्य मायेयं त्रिजगन्मोहकारिणी । ज्ञानाभाष्याद्वैतलभ्या मन्येऽहमिति भो द्विज ! ॥ ९ ॥ इति भिक्षुः समाभाष्य यदन्यत् प्राह विस्मितः । मार्कण्डेय ! महाभाग ! भविष्यं कथ-

सहायकारिणी स्त्रीको देखरहा हूँ, इसको मैंने वहां तुम्हारे पास कभी नहीं देखा था, सो यह कहाँसे आगई ! मैं भी कहाँसे किस प्रकार कहां आगया ? मुझे यहाँ कौन ले आया ? ॥ ६ ॥ क्या तुम वही अनन्त हो, अथवा और कोई हो ? मैं भी क्या वही भिक्षुक हूँ ? अथवा और कोई हूँ, मेरा और तुम्हारा इस स्थानपर मिलना इन्द्रजालकी अथवा स्वप्नकी समान प्रतीत होरहा है ॥ ७ ॥ तुम स्वधर्मतत्पर गृहस्थ हो, मैं परमार्थका चिन्तवन करनेमें तत्पर भिक्षुक ब्राह्मण हूँ, इस स्थानपर मेरा और तुम्हारा वार्त्तालाप बालक और उन्मत्तके सम्भाषणकी समान असंबद्ध प्रतीत होरहा है ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मन् ! मुझे प्रतीत होता है कि--यह त्रिलोकीनाथ विष्णुभगवान्की माया है, जिससे सदा त्रिलोकी मोहित रहती है, साधारण ज्ञानसे इसको जानना अतिकठिन है, अद्वैतज्ञानके होने पर इस मायाको जानना बनसकता है ॥ ९ ॥ वह परमहंस भिक्षुक इस प्रकार मुझसे कहकर मार्कण्डेयजीसे कहने लगे, कि–हे

यामि ते ॥१०॥ प्रलये या त्वया दृष्टा पुरुषस्योदराम्भसि । सा माया मोहजननिका पन्थानं गणिका यथा ॥ ११ ॥ तमो ह्यनन्तसन्ताप नोदनोद्यतपत्तरी । ययेदमखिलं लोकमावृत्याऽवस्थया स्थितम् ॥ १२ ॥ लये लीने त्रिजगति ब्रह्म तन्मात्रतां गतः । निरुपाधौ निरालोके सिसृक्षुरभवत् परः ॥ १३ ॥ ब्रह्मण्यपि द्विधा भूते पुरुषप्रकृती स्वया । भासा संजनयामास

महाभाग मार्कण्डेय ! तुमसे मैं भविष्य (आगेको होनेवाली) कथा कहता हूँ उसको सुनो ॥ १० ॥ हे ऋषे ! मैंने सुना है कि-प्रलयकालमें परमपुरुष भगवान्के उदरमें स्थित जलमें माया स्थित रहती है, वह वह माया ही सबको मोहित करती है जिस प्रकार वेश्या राजमार्ग (आम सड़क) पर निवास करती है, तिसीप्रकार यह माया त्रिलोकीमें मोक्षमार्गको रोकती रहती है, यह माया ही तमोगुणरूप होकर सबको मिथ्या संसारमें भ्रमाती है, यह माया ही संपूर्ण दुःखोंका कारण है, इस मायाका किसीसे भी नाश नहीं होता॥११-१२ प्रलयकालमें त्रिलोकी लीन होजाती है, उस समय प्रकाश न होनेके कारण चारों दिशा अन्धकारमय होजाती हैं, जिस समय दिशा, देश, काल, आदिका कुछ भी चिन्ह नहीं रहता है, उस समय परब्रह्म विश्वको रचनेकी इच्छासे पञ्चतन्मात्रारूप होकर प्रकट होते हैं ॥ १३ ॥ प्रथम तो ब्रह्म अपने प्रभावसे पुरुष और प्रकृति इन दो भागोंमें विभक्त होता है, तदनन्तर कालकी सहायतासे पुरुष और प्रकृतिका संयोग होने पर महत्तत्व उत्पन्न होता है अर्थात् प्रकृति और पुरुष नित्य हैं, प्रलयकालमें ये दोनों निरुपाधि ब्रह्ममें अभिन्न

महान्तं कालयोगतः ॥ १४ ॥ कालस्वभावकर्मात्मा सोऽहङ्कारस्ततोऽभवत्। त्रिवृद् विष्णुशिवब्रह्ममयः संसारकारणम् १५ तन्मात्राणि ततः पञ्च जज्ञिरे गुणवन्ति च । महाभूतान्यपि

रूपसे रहते हैं, पुरुष चेतनरूप, और प्रकृति जड़रूप है, प्रकृति स्वयं किसी पदार्थको उत्पन्न नहीं कर सकती,पुरुषके संयोगसे ही महत्तत्व अहङ्कारादिको उत्पन्न करती है,प्रकृति से महत्तत्व महत्तत्वसे अहङ्कार अहङ्कारसे पञ्चतन्मात्रा और ग्यारह इन्द्रियें, पञ्चतन्मात्रासे पञ्चमहाभूत उत्पन्न होते हैं सांख्यवादी इन सबको ही चौवीस तत्त्व कहते हैं नेत्र, कर्ण, नासिका, जिव्हा और त्वचा ये पाचों ज्ञानके द्वार होनेके कारण ज्ञानेन्द्रिय कहलाते हैं, वाणी, हाथ,चरण,गुदा, और उपस्थ ये पाचों कर्मका साधन होनेके कारण कर्मेन्द्रिय कहलाते हैं, और मन उभयात्मक हैं ये सब ग्यारह इन्द्रिय हैं, शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा और गंधतन्मात्रा ये पाँच तन्मात्रा कहलाती हैं,ये सब कालकी सहायतामे उत्पन्न होते हैं,अर्थात् सृष्टिकालके आये विना किसी पदार्थकी भी रचना नहीं होती१४काल और अदृष्ट (प्रारब्धकर्म) सहित प्रकृतिसे उत्पन्न हुए महत्तत्वसे अहङ्कार उत्पन्न हुआ है, अहंकारतत्त्व सत्त्वादि तीन गुणोंके भेदसे विभक्त होकर ब्रह्मा, विष्णु और महादेवको उत्पन्न करता है, फिर वह ब्रह्मा;विष्णु और महादेव सम्पूर्ण जगत्की रचना करते हैं १५प्रथम इस अहंकारतत्त्वसे तीनों गुणयुक्त पञ्चतन्मात्राकी उत्पत्ति होती है पंचतन्मात्रासे पंचमहाभूत उत्पन्न हुए हैं अर्थात् शब्दतन्मात्रासे आकाश, स्पर्शतन्मात्रासे वायु, रूपतन्मात्रासे

ततः प्रकृतौ ब्रह्मसंश्रयात् ।। १६ ।। जाता देवासुरनरा ये चान्ये जीवजातयः । ब्रह्माण्डभाण्डसंभारजन्मनाशक्रियात्मिकाः ।। १७ ।। मायया मायया जीवपुरुषः परमात्मनः । संसारशरणव्यग्रो न वेदात्मगतिं क्वचित् ।। १८ ।। अहो बलवती माया ब्रह्माद्या यद्वशे स्थिताः । गावो यथा नसि प्रोता गुणबद्धाः खगा इव ।१९। तां मायां गुणमयीं ये तु तितीर्षन्ति मुनीश्वराः । स्रवन्तीं वासनानक्रां त एवार्थविदो भुवि२० शौनक उवाच । मार्कण्डेयो वशिष्ठश्च वामदेवादयोऽपरे । श्रुत्वा

तेज, रसतन्मात्रासे जल, और गन्धतन्मात्रासे पृथ्वी उत्पन्न होती है, इन पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति भी पहिले परमाणु, फिर द्व्यणुक इस क्रमसे होती है,पुरुषके प्रकृतिसे अधिष्ठित होनेपर ऐसी सृष्टि होती है ।। १६ ।। तदनन्तर देवता, दैत्य, मनुष्य, तथा इस ब्रह्माण्डरूपी भांडमें जन्म और मरणको प्राप्त होनेवाले जो२ जीव.जन्तु और पदार्थ हैं, उन सबकी उत्पत्ति होती है ।। १७ ।। यह जीव परमात्माकी मायासे निरन्तर मोहित रहनेके कारण संसारमें ही लिप्त और सांसारिक कार्योंमें व्यग्र ही रहता है,अपने उद्धार होनेका कुछ भी चिंतवन नहीं करता ।। १८ ।। देखो माया बड़ी बलवती है, ब्रह्मादिक देवता भी इस मायाके वशमें ऐसे होरहे हैं. जैसे-नाथमें नथेहुए बैल और रज्जुसे बँधेहुए पक्षी होते हैं ।१९। जो महर्षि ! ऐसी वासनारूप नाकोंको उत्पन्न करनेवाली बड़े प्रवाहसे बहती हुई गुणमयी मायारूप नदीके पार होने की अभिलाषा करते हैं, भूमि पर उनका ही जन्म सार्थक है, और वे ही संसारके तत्त्वको समझे हैं ।। २० ।। शौनक

गुरुवचो भूयः किमाहुः श्रवणादृताः ॥ २१ ॥ राजानोऽनन्तवचनमिति श्रुत्वा सुधोपमम् । किं वा प्राहुरहो सूत ! भविष्यमिह वर्णय ॥२२॥ इति तद्वच आश्रुत्य सूतः सत्कृत्य तं पुनः । कथयामास कात्स्न्र्येन शोकमोहविघातकम् ।२३। सूत उवाच तत्रानन्तो भूपगणैः पृष्टः प्राह कृतादरः । तपसा मोहनिधनमिन्द्रियाणाञ्च निग्रहम् ॥ २४ ॥ अनन्त उवाच । अतोऽहं वनमासाद्य तपः कृत्वा विधानतः । नेन्द्रियाणां मनसो निग्रहोऽभूत् कदाचन ॥ २५ ॥ वने ब्रह्म ध्यायतो मे भार्यापुत्र-

---

बोले, कि--हे सूतजी ! मार्कण्डेय , वशिष्ठ वामदेव आदि तथा अन्य ऋषियोंने यह आश्चर्य्य भरा वृत्तान्त सुनकर क्या कहा ? तथा अनन्तके आख्यानको सुननेकी इच्छा करनेवाले राजे, अनन्त मुनिके मुखसे अमृतकी समान इस वृत्तांतको सुनकर क्या बोले ? हे सूतजी यह सब भविष्यकथा हमें सुनाइये ॥ २१ ॥॥ २२ ॥ शौनकके ऐसा कहने पर उनकी प्रशंसा करके सूतजी शोकमोहनाशक उस तत्त्वज्ञानकी कथा फिर विस्तारपूर्वक कहनेलगे ॥२३ ॥ सूतजी बोले कि–हे शौनक ! तदनन्तर राजाओंने आदरपूर्वक अनन्त मुनिसे आगेका वृत्तांत बूझा, तब अनन्त मुनिने तपस्याके द्वारा मायाको दूर करनेवाला तथा इन्द्रियनिग्रह का वृत्तांत कहा ॥ २४ ॥ अनन्त मुनि बोले, कि–हे राजाओं! फिर मैंने दृढ़ निश्चय करके तपस्या करना प्रारम्भ करदिया, परन्तु किसीप्रकार भी इन्द्रिय और मनको वशमें न करसका ॥ २५ ॥ मैं वनमें रहकर जिस समय परब्रह्मका ध्यान करने लगा था, उसी समय मुझे निरन्तर स्त्री—पुत्र धन

धनादिकम् । विषयञ्चान्तरा शश्वत् संस्मारयति मे मनः २६ तेषां स्मरणमात्रेण दुःखशोकभयादयः । प्रतुदन्ति मम प्राणान् धारणाध्याननाशकाः ॥ २७ ॥ ततोऽहं निश्चितमतिरिन्द्रियाणाञ्च घातने । मनसो निग्रहस्तेन भविष्यति न संशयः २८ अतो मामिन्द्रियाणाञ्च निग्रहव्यग्रचेतसम् । तदधिष्ठातृदेवाश्च दृष्ट्वा मामीयुरञ्जसा ॥ २९ ॥ रूपिणो मामथोचुस्ते भोऽनन्त! इति ते दश । दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवन्हीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ३० इन्द्रियाणां वयं देवास्तव देहे प्रतिष्ठिताः । नखाग्रकाण्डसंभिन्नान् नास्मान् कर्तुमिहार्हसि ॥ ३१ ॥ न श्रेयो हि तवा-

---

तथा अन्य सम्पूर्ण विषयोंका स्मरण होआता था ॥ २६ ॥ मेरे अन्तःकरणमें स्त्री—पुत्र—ऐश्वर्य्य आदिका स्मरण होतेही दुःख-शोक-भय आदि प्रकट होने लगते थे, और इससे मेरा अन्तःकरण ऐसा व्याकुल हो उठता था, कि–मैं किसीप्रकार भी पूर्णरीतिसे ध्यान धारणा आदि नहीं कर सकता था ॥ २७ ॥ ऐसा देखकर मैंने इन्द्रियोंको नष्टकरने का निश्चय किया, मैंने विचारा, कि–इन्द्रियोंको नष्ट करते ही मैं निःसन्देह मनको वशमें करसकूंगा ॥२८॥ जब मैंने ऐसा सङ्कल्प किया, और इन्द्रियोंका निग्रह करनेमें प्रवृत्त हुआ उस समय इन्द्रियोंके अधिष्ठातृदेवता शीघ्रही मेरी ओर आकर देखने लगे ॥ २९ ॥ वे दशों इन्द्रियोंके दश अधिष्ठाता अपना २ रूप धारण करके आये और मुझसे कहने लगे, कि–हे अनन्त ! हम दिशा, वायु, सूर्य्य वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, और मित्र ये दशों इन्द्रियोंके अधिष्ठातृदेवता हैं, हम तुम्हारे शरीरमें रहते हैं, नखोंके,

नन्त ! मनोनिग्रहकर्मणि । छेदने भेदनेऽस्माकं भिन्नमर्मा मरिष्यसि ॥ ३२ ॥ अन्धानां वधिराणाञ्च विकलेन्द्रियजीविनाम् । वनेऽपि विषयव्यग्रं मानसं लक्षयामहे ॥ ३३ ॥ जीवस्यापि गृहस्थस्य देहो गेहं मनोऽनुगः।बुद्धिर्भार्या तदनुगा वयमित्यवधारय ॥३४ ॥ कर्मायत्तस्य जीवस्य मनो बन्धविमुक्तिकृत् । संसारयति लुब्धस्य ब्रह्मणो यस्य मायया ॥ ३५ ॥ तस्मान्मनोनिग्रहार्थं विष्णुभक्तिं समाचर । सुखमोक्षप्रदा नित्

अग्रभागसे हमें छिन्न और नष्ट करना उचित नहीं है ३०-३१ हे अनंत ! ऐसा करनेसे तुम्हारा कोई कल्याण नहीं होगा, और तुम मनको भी वशमें नहीं करसकोगे किन्तु सम्पूर्ण इन्द्रियोंको छिन्न भिन्न करनेपर मर्मस्थानमें पीड़ा पाकर तुम ही मर जाओगे ॥३२॥ हम देखते हैं, कि—अंधे,वधिर तथा अन्य इंद्रियोंसे रहित अनेकों प्राणी निर्जन वनमें रहते हैं, उनका भी मन विषयभोगकी लालसामें लोलुप ही रहता है,इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि—इंद्रियोंका नाश, मनको वशमें करनेका उपाय नहीं है ॥ ३३ ॥ यह शरीर गृहरूप है, आत्मा गृहस्थरूप है, बुद्धि स्त्रीरूप है,और मन सेवकरूप है, तथा हमें भी बुद्धिरूप स्त्रीका आज्ञाकारी सेवकरूप ही जानो ॥ ३४ ॥ सब जीव अपने२ कर्मके अनुसार अर्थात् जैसा जैसा कर्म किया है उसके अनुसार फल भोगते हैं, मन ही मुक्ति और संसारबंधनका कारण है मन ही त्रिलोकीनाथ भगवान्की मायासे विषयोंमें आसक्त हुए पुरुषको संसारचक्रमें घुमाता है ॥ ३५ ॥ इसकारण तुम मनको वशमें करनेके लिये विष्णु भगवान्की भक्ति करो,

दाहिका सर्वकर्मणाम् ।। ३६ ।। द्वैताद्वैतप्रदानन्दसन्दोहा हरिभक्तिका । हरिभक्त्या जीवकोषविनाशान्ते महामते ! ।।३७।।

विष्णु भगवान्‌की भक्ति ही निरन्तर सम्पूर्ण कर्मोंका नाश करती है और विष्णु भगवान्‌को प्रसन्न करनेसे ही सुख तथा मुक्ति मिल सकती है भगवान्‌की भक्तिके द्वारा पापपुण्यरूप कर्मोंका नाश हुए बिना मुक्ति कदापि नहीं होती, अर्थात् पापपुण्यरूप कर्मोंका फल भोगनेके निमित्त ही संसारमें जन्म धारण करना पड़ता है उस पापपुण्यरूप कर्मका नाश हुए विना मुक्ति नहीं होती है, सोई श्रीकृष्ण भगवान्‌ने भगवद्गीतामें भी कहा है, " ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन " कि-हे अर्जुन ! ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्म करदेती है; अर्थात् तत्त्वज्ञान होनेपर पूर्वजन्मके पाप और पुण्योंका नाश होजाता है और आगेको भी पापपुण्यरूप कर्म ज्ञानीको नहीं लगता है, इसकारण संसारके बन्धनरूप पाप पुण्यके नष्ट होजाने पर ज्ञानीका फिर जन्म भी नहीं होता है ॥ ३६ ॥ विष्णु भगवान्‌की भक्तिसे द्वैत और अद्वैतका ज्ञान होता है, अर्थात् विष्णु भगवान्‌की भक्ति ही परम आनन्द देनेवाली है. हे महामते ! हरिभक्तिके द्वारा जीवकोश अर्थात् लिङ्गशरीरका नाश होता है, इस विषयमें शास्त्रकारोंका ऐसा मत है, कि—" पंचप्राणमनोबुद्धिदशेंद्रियसमन्वितम् ! अपंचीकृतभूतोत्थं सूक्ष्मांगं भोगसाधनम् ॥ " अर्थात् लिङ्गशरीरमें प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान ये पाँच वायु और मन बुद्धि पाँच कर्मेन्द्रिय तथा पाँच ज्ञानेन्द्रिय रहती हैं । और स्थूल शरीरमें अपंची-

परं प्राप्स्यसि निर्वाणं कल्केरालोकनात् त्वया। इत्यहं बोधितस्तेन भक्त्या संपूज्य केशवम्॥३८॥ कल्किं दिदृक्षुरायातः कृष्णं कलिकुलान्तकम्। दृष्टं रूपमरूपस्य स्पृष्टस्तत्पदपल्लवः अपदस्य श्रुतं वाक्यमवाच्यस्य परात्मनः॥ ४० ॥ इत्यनन्तः प्रमुदितः पद्मानाथं निजेश्वरम्। कल्किं कमलपत्राक्षं नमस्कृत्य ययौ मुनिः॥ ४१ ॥राजानो मुनिवाक्येन निर्वाणपदवीं गताः।

कृत पंचमहाभूतरचित सूक्ष्मशरीर रहता है, यह सूक्ष्म शरीर पुरुष शब्दसे कहाजाता है,मृत्युकालमें स्थूल शरीरका नाश होने पर सूक्ष्म शरीरका नाश नहीं होता है, यह सूक्ष्म शरीर ही लोकांतरमें अथवा देहांतरमें जाकर पहले जन्मों में कियेहुए पाप पुण्यका फल भोगता है, मुक्तिके समय यह सूक्ष्मशरीर नष्ट होजाता है, तब फिर जन्म धारण नहीं करना पड़ता ॥ ३७ ॥ अब तुम कल्किभगवान्का दर्शन करके परम निर्वाणरूप मुक्तिको प्राप्त होजाओगे, इसलिये उन परमहंसके उपदेशसे मैं भक्तिपूर्वक विष्णुभगवान्का पूजन करके कलिकुलनाशक कल्कि भगवान्का दर्शन करने को यहाँ आया हूं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ इस समय रूपहीन ईश्वरके रूपका दर्शन किया; चरणहीन परब्रह्मके चरणकमलोंका स्पर्श करके कृतार्थ होगया, इस समय मैंने वाक्य रहित ईश्वरके वाक्योंको सुना ॥ ४० ॥ अनंत मुनि यह कथा कहकर हृदयमें प्रसन्न होते हुए अपने स्वामी कमलदलनयन, लक्ष्मीपति—कल्किभगवान्को नमस्कार करके चलेगये ॥ ४१ ॥ वे राजे इसप्रकार अनन्त मुनि के वाक्य सुनकर मुनियोंकी समान व्रत नियमादिका अनु-

कल्किमभ्यर्च्य पद्माञ्च नमस्कृत्य मुनिव्रताः ॥ ४२ ॥ शुक उवाच । अनन्तस्य कथामेतामज्ञानध्वान्तनाशिनीम् । मायानियन्त्रीं प्रपठन् शृण्वन् बन्धाद्विमुच्यते ॥ ४३ ॥ संसाराब्धिविलासलालसमतिः श्रीविष्णुसेवादरो,भक्त्याख्यानमिदं स्वभेदरहितं निर्माय धर्मात्मना। ज्ञानोल्लासनिशातखड्गमुदितः सद्भक्तिदुर्गाश्रयः, षड्वर्गं जयतादशेषजगतामात्मस्थितं वैष्णवः ॥ ४४ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे अनन्तमायानिरसनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

सूत उवाच । गते नृपगणे कल्किः पद्मया सह सिंहलात् । शम्भलग्रामगमने मतिं चक्रे स्वसेनया ॥ १ ॥ ततः कल्केरभि-

---

ष्ठान करने लगे तदनन्तर कल्कि भगवान् तथा पद्माका पूजन करके मुक्ति मार्गके बटोही होगये ॥ ४२ ॥ सूतजी बोले, कि-अनन्त मुनिकी इस कथाको पढ़ने पर अथवा श्रवण करने पर संसारकी माया दूर होती है, अज्ञानरूप अन्धकार नष्ट होजाता है और संसारबन्धनसे मुक्ति होजाती है ४३ जो धर्मात्मा विष्णुभक्त, विष्णुभगवान्की सेवामें तत्पर रह कर भी संसारसागरमें विलास करनेकी इच्छा करते हों, वे इस आख्यानके द्वारा जगत्के अभेदज्ञानरूप चमकते हुए तीक्ष्णखड्गको धारण करके और भक्तिरूप किलेमें बैठकर शरीरमें स्थित काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इन छः शत्रुओंको जीतलें ॥ ४४ ॥ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ५

सूतजी बोले, कि-हे ऋषियो ! तदनन्तर राजाओंके चले जाने पर जब कल्कि भगवान्ने पद्मा तथा सेनाके सहित

प्रायं विदित्वा नाकनायकः स्मरन् । विश्वकर्माणमाहूय वचनञ्चेदमब्रवीत् ॥ २ ॥ इन्द्र उवाच । विश्वकर्मन् ! शम्भले त्वं गृहोद्यानाट्टचट्टितम् । प्रासादहर्म्यसम्बाधं रचय स्वर्णसञ्चयैः ३ रत्नस्फटिकवैदूर्य्यनानामणिविनिर्मितैः । तत्रैव शिल्पनैपुण्यं तव यच्चास्ति तत् कुरु ॥ ४ ॥ श्रुत्वा हरेर्वचो विश्वकर्मा शर्म निजं स्मरन् । शम्भले कमलेशस्य स्वस्त्यादिप्रमुखान् गृहान्५ हंससिंहसुपर्णादिमुखांश्चक्रे स विश्वकृत् । उपर्युपरि तापघ्नवातायनमनोहरान् ॥ ६ ॥ नानावनलतोद्यानसरोवापीसुशो-

---

सिंहलद्वीपसे शम्भलग्रामको आनेकी इच्छा की उस समय देवराज इन्द्रने कल्कि भगवानका अभिप्राय जानकर तत्काल विश्वकर्म्माको बुलाया, और आज्ञा दी ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ इन्द्रदेव बोले कि-हे विश्वकर्म्मन् ! तुम सम्भलग्राममें जाकर सुवर्णके समूहोंसे राजमन्दिर और बगीचे आदि बनाओ ३ रत्न, स्फटिक और बिल्लौर आदि नानाप्रकारकी मणियोंसे नानाप्रकारकी कारीगरी करो और शिल्पविद्यामें जहाँ तक तुम्हारी चतुराई है, उसका प्रकाश करनेमें कमी मत रक्खो ४ विश्वकर्म्माने इन्द्रकी इस आज्ञाको सुनकर और इस कार्य्य के करनेमें अपना कल्याण विचारकर सम्भलग्राममें लक्ष्मीपति कल्कि भगवान्के निमित्त स्वस्ति आदि अनेकों प्रकार के स्थान बनाए ॥ ५ ॥ कोई स्थान हंसमुख, कोई स्थान सिंहमुख, और कोई स्थान गरुड़मुख, इत्यादि बहुतसे अनेकों प्रकारके स्थान विश्वकर्म्माने बनाये, वे सब स्थान दुमहले तिमहले आदि ऊँचे बनाये, और ग्रीष्मऋतुकी उष्णता दूर करनेको उन स्थानोंमें बहुतसे झरोखे बनादिये ॥६॥

भितः । शम्भलश्चाभवत् कल्केर्यथेन्द्रस्यामरावती ।७। कल्कि-स्तु सिंहलाद्द्वीपाद्बहिः सेनागणैर्वृतः । त्यक्त्वा कारुमतीं कूले पाथोधेरकरोत् स्थितिम् ॥८॥ बृहद्रथस्तु कौमुद्या सहितः स्नेहकातरः । पद्मया सहितायास्मै पद्मानाथाय विष्णवे ९ ददौ गजानामयुतं लक्षं मुख्यञ्च वाजिनाम् । रथानाञ्च द्विसाहस्रं दासीनां द्वे शते मुदा ॥ १० ॥ दत्त्वा वासांसि रत्नानि भक्तिस्नेहाश्रुलोचनः । तयोर्मुखालोकनेन नाशकत् कियदीरितुम् ॥ ११ ॥ महाविष्णुदम्पती तौ प्रस्थाप्य पुनरागतौ । पूजितौ कल्किपद्माभ्यां निजकारुमतीं पुरीम् ॥१२ ॥ कल्कि-

---

भाँति २के वन, लता, बगीचे, और बावड़ी आदिसे कल्कि भगवान्का सम्भलग्राम, इन्द्रकी अमरावतीकी समान शोभा पाने लगा ॥ ७ ॥ इधर सिंहलद्वीपमें कल्कि भगवान् सब सेनाओंको साथ लेकर कारुमती नगरीसे चलदिये, और समुद्रके तटपर सेनाको ठहराकर एक दिन निवास किया ८ राजाबृहद्रथ कन्याके प्रेमसे कातर होकर अपनी कौमुदी रानीसहित समुद्रके तटतक कल्कि भगवान्के साथ आया, तहाँ उस बृहद्रथने प्रसन्नहृदयसे पद्मा और कल्कि भगवान् को दश हजार हाथी एक लाख उत्तम घोड़े, दो हजार रथ और दो सौ दासी दीं ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ वह बृहद्रथ राजा अनेकों प्रकारके वस्त्र और अनेकों प्रकारके रत्न देकर भक्ति और स्नेहपूर्ण नेत्रोंसे जामाता और कन्याके मुखकमलकी ओर देखता रहा, तथा कोई बात कह न सका ॥ ११ ॥ वह राजा कन्या और जामाताको विदा करके और उनसे आप भी आदरपूर्वक विदा होकर तथा उनको सम्भलग्राम

स्तु जलधेरम्भो विगाह्य पृतनागणैः । पारं जिगमिषुं दृष्ट्वा जम्बुकं स्तम्भितोऽभवत् ॥१३॥ जलस्तम्भमथालोक्य कल्किः सबलवाहनः । प्रययौ पयसां राशेरुपरि श्रीनिकेतनः ॥१४॥ गत्वा पारं शुकं प्राह याहि मे शम्भलालयम् ॥ १५ ॥ विश्वकर्मकृतं यत्र देवराजाज्ञया बहु । सद्मसंबाधममलं मत्प्रियार्थं सुशोभनम् ॥ १६ ॥ तत्रापि पित्रोर्ज्ञातीनां स्वस्ति ब्रूया यथोचितम् । यदत्राङ्ग ! विवाहादि सर्वं वक्तुं त्वमर्हसि १७ पश्चाद् यामि वृतस्त्वेतैस्त्वमादौ याहि सम्भलम् ॥ १८ ॥ कल्केर्वचनमाकर्ण्य कीरो धीरस्ततो ययौ। आकाशगामी सर्वज्ञः

की ओर भेजकर अपनी कारुमती नगरीको लौटआया।१२। इधर कल्कि भगवानने सेनाके सहित समुद्रको पार होते समय देखा, कि—एक गीदड़ समुद्रके पार जानेकी इच्छा से जलमें तैरता जारहा है, यह देख कल्कि भगवान् तहाँही खड़े होगये १३ फिर वह लक्ष्मीपति कल्किभगवान जलको स्तम्भित हुआ देखकर सेना और वाहनों सहित समुद्रके ऊपर होकर चलेगये ॥ १४ ॥ और समुद्रके पार होकर शुकसे बोले, कि—हे शुक ! तुम सम्भलग्राममें हमारे स्थान पर जाओ ॥ १५ ॥ तहाँ विश्वकर्माने इन्द्रकी आज्ञासे मेरा प्रियकार्य्य करनेको बहुतसे अति रमणीय स्वच्छ स्थान बनाये हैं ॥ १६ ॥ तुम तहाँ जाकर मेरे माता पितासे तथा जातिके पुरुषोंसे रीतिपूर्वक मेरा कुशलसमाचार कहो, और फिर मेरे विवाह आदिका भी सब वृत्तान्त सुनादो ॥१७॥ तुम आगे आगे सम्भलग्राममें जाओ, पीछेसे मैं भी सेना-सहित आता हूँ ॥ १८ ॥ परमधीर सर्वज्ञ वह कीर कल्कि

सम्भलं सुरपूजितम् ॥ १९ ॥ सप्तयोजनविस्तीर्णं चातुर्वर्ण्य-जनाकुलम् । सूर्यरश्मिप्रतीकाशं प्रासादशतशोभितम् ॥२०॥ सर्वर्त्तुसुखदं रम्यं शम्भलं विह्वलोऽविशत् ॥ २१ ॥ गृहाद्ग गृहान्तरं दृष्ट्वा प्रासादादपि चाम्बरम् । वनाद् वनान्तरं तत्र वृत्ताद् वृत्तान्तरं व्रजन् ॥ २२ ॥ शुकः स विष्णुयशसः सदनं मुदितोऽव्रजत् । तं गत्वा रुचिरालापैः कथयित्वा प्रियाः कथाः ॥ २३ ॥ कल्केरागमनं प्राह सिंहलात् पद्मया सह२४

भगवान्की यह बात सुनकर आकाशमार्गमेंको उड़ा, और कुछ कालमें ही देवताओंके भी आदर करने योग्य सम्भलग्राम में पहुँच गया ॥ १९ ॥ वह सम्भल ग्राम सात योजन (२८ कोश) चौड़ा था, और तहाँ ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ये चारों वर्ण निवास करते थे, तथा सूर्य्यकी किरणोंकी समान स्वच्छ और तेजवान् सैंकड़ों स्थानोंसे चारों ओर शोभाको बढ़ारहा था ॥ २० ॥ वह सम्भल नगर इसप्रकारसे बनाहुआ और बसाहुआ था, कि किसी ऋतुमें भी तहाँके निवासियोंको कष्ट नहीं होता था; इस शुकने उस सम्भलग्रामकी रमणीय शोभाको देखते २ आश्चर्य्यमें होकर प्रवेश किया ॥२१॥यह शुक एक स्थानसे दूसरे स्थान पर एक महल परसे दूसरे महल पर किसी समय महलके कँगूरे परसे आकाशमें और किसी समय आकाशमेंसे बगीचेमें, एक बगीचेमेंसे दूसरे बगीचेमें, तथा एक वृत्त परसे दूसरे वृत्त पर जाने लगा ॥ २२ ॥ इसप्रकार जाते२ वह शुक परम प्रसन्न चित्तसे विष्णुयशके घर पर पहुंचा, और विष्णुयशके समीप जाकर मधुरभाषणसे बहु-

ततस्त्वरन् विष्णुयशाः समानाय्य प्रजाजनान् । विशाखयूप-भूपालं कथयामास हर्षितः ॥ २५ ॥ स राजा कारयामास पुरग्रामादिमण्डितम् । स्वर्णकुम्भैः सदम्भोभिः पूरितैश्चन्दनोक्षितैः ॥२६॥ कालागुरुसुगन्धाढ्यैर्दीपलाजांकुराक्षतैः । कुसुमैः सुकुमारैश्च रम्भापूगफलान्वितैः । शुशुभे शम्भलग्रामो विबुधानां मनोहरः ॥२७॥ तं कल्किः प्राविशद् भीमसेनागणविलक्षणः । कामिनीनयनानन्दमन्दिराङ्गः कृपानिधिः॥२८॥ पद्मया सहितः पित्रोः पादयोः प्रणतोऽपतत् । सुमतिर्मुदिता

तसी प्रियवार्ते कहीं ॥ २३ फिर सिंहलद्वीपसे पद्मासहित कल्कि भगवान्‌के आनेका वृत्तांत कहा२४तब तो विष्णुयशने हृदयमें प्रसन्न होकर शीघ्रतासे विशाखयूप राजासे तथा मान्य और प्रधान२ पुरुषोंसे सब वृत्तांत कहा ॥ २५ ॥ राजा विशाखयूपने स्त्रीसहित कल्कि भगवान्‌के आनेका वृत्तांत सुनकर चन्दनसे छिड़के हुए और जलसे भरेहुए सुवर्णके कलशोंके द्वारा ग्राम नगर आदिको शोभायमान किया ॥ २६ ॥ देवताओंके भी मनको हरनेवाले सम्भल ग्रामने अगर आदि सुगन्धित द्रव्योंके द्वारा दीपकोंकी पंक्तियोंके द्वारा, सुगन्धयुक्त रमणीय पुष्पोंकी मालाओंके द्वारा, केला और सुपारी आदि फलोंके द्वारा, तथा खीलें, अक्षत और नवपल्लव आदिके द्वारा अपूर्व शोभा धारण की ।२७। फिर कामनियोंके नेत्रोंके आनन्दके मन्दिररूप परम सुन्दर कृपानिधि,कल्कि भगवान्‌ने भयानक सेनाओं सहित सम्भल नगरमें प्रवेश किया ॥ २८ ॥ फिर पद्मासहित कल्कि भगवान्‌ने माता पिताके चरणोंमें प्रणाम किया, जिसप्रकार

पुत्रं स्नुषां शक्रं शचीमिव। ददृशे स्वमरावत्यां पूर्णकामा दितिर्यथा ॥ २९ ॥ शम्भलग्रामनगरी पताकाध्वजशालिनी । अवरोधस्तुजघना प्रासादविपुलस्तनी । मयूरचूचुका हंससंघहारमनोहरा ॥ ३० ॥ पटवासोद्योतधूमवसना कोकिलस्वना । सहासगोपुरमुखी वामनेत्रा यथाङ्गना । कल्किं पतिं गुणवती प्राप्य रेजे तमीश्वरम् ३१स रेमे पद्मया तत्र वर्षपूगानजाश्रयः । शंभले विह्वलाकारः कल्किः कल्कविनाशनः ३२ कवेः पत्नी कामकला सुषुवे परमेष्ठिनौ । बृहत्कीर्तिबृहद्बाहू महाबलपराक्रमौ

स्वर्गमें देवमाता दिति, इन्द्र और इन्द्राणीको देखकर पूर्णकाम तथा आनन्दित हुई थी, उसीप्रकार पतिव्रता सुमति अपने पुत्र कल्कि भगवान् और पद्माको देखकर परम आनन्दित और पूर्णमनोरथ हुई ॥ २९ ॥ पताका आदि ध्वजासे सजी हुई वह सम्भलनगरी रूपरमणी भी ईश्वर कल्कि भगवान्रूप पतिको पाकर शोभित हुई, रणवास उसकी जङ्घारूप महल उसके पुष्ट--स्तनरूप, मयूर उसके चूचक (स्तनोंके अग्रभाग) रूप हंसोंकी पंक्ति उसकी मनोहर मोतियोंकी मालारूप, अनेकों प्रकारके सुन्दर पदार्थोंका धूम उसका वस्त्ररूप, कोकिलाओंका शब्द उसका वाक्यरूप, और नगरका द्वार उसका हास्ययुक्त मुखरूप हुआ इसप्रकार वह सम्भलनगरी मृगनयनी गुणवती स्त्रीकी समान शोभायमान हुई ॥ ३० ॥ ३१ ॥ अजन्मा, सर्वाधार पापनाशक कल्कि भगवान्ने अपने कार्यको भूलकर उस संभल नगरमें पद्माके साथ रमण करनेमें ही बहुतसे वर्ष बिता दिये ॥३२॥ कुछ कालके अनन्तर कल्कि भगवान्के भ्राता

प्राज्ञस्य सन्नतिर्भार्या तस्यां पुत्रौ बभूवतुः । यज्ञविज्ञौ सर्वलोकपूजितौ विजितेन्द्रियौ ॥ ३४ ॥ सुमन्त्रकस्तु मालिन्यां जनयामास शासनम् । वेगवन्तञ्च साधूनां द्वावेतावुपकारकौ ३५ ततः कल्किश्च पद्मायां जयो विजय एव च । द्वौ पुत्रौ जनयामास लोकख्यातौ महाबलौ ॥ ३६ ॥ एतैः परिवृतोऽमात्यैः सर्वसम्पत्समन्वितौ । वाजिमेधविधानार्थमुद्यतं पितरं प्रभुः ३७ समीक्ष्य कल्किः प्रोवाच पितामहमिवेश्वरः । दिशां पालान् विजित्याहं धनान्याहृत्य इत्युत ॥ ३८ ॥ कारयिष्याम्यश्वमेधं यामि दिग्विजयाय भोः ! ॥ ३९ ॥ इति प्रणम्य तं प्रीत्या

कविकी कामकला नामक स्त्रीसे बृहत्कीर्ति और बृहद्बाहु नामके महाबली परमपराक्रमी और परमधार्मिक दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३३ ॥ सन्नति नामक प्राज्ञकी स्त्रीसे भी यज्ञ और विज्ञ नामके जितेन्द्रिय तथा सब लोकोंके पूजनीय दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३४॥ सुमन्त्रकी मालिनी नामक स्त्रीके गर्भसे साधु पुरुषोंके उपकारी, शासन और वेगवान् नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३५ ॥ फिर कल्कि भगवान्से पद्मामें जय और विजय नामके जगत्प्रसिद्ध महाबली तथा परमपराक्रमी दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३६ ॥ प्रभु कल्कि भगवान् इस सम्पूर्ण परिवार और सम्पूर्ण सम्पदाओंसे युक्त हुए, उन्होंने पितामहकी समान अपने पिताको अश्वमेध यज्ञ करनेमें उद्यत देखकर कहा, कि—हे पितः ! मैं दिक्पालोंको जीतकर धन इकट्ठा करलूँ तब आपको अश्वमेध यज्ञ कराऊँगा, अब मैं दिग्विजय करनेको जाता हूँ ॥ ३७–३९ ॥ अधर्मी शत्रुओंके नगरोंको जीतनेवाले कल्किजीने ऐसा कह

कल्किः परपुरञ्जयः। सेनागणैः परिवृतः प्रययौ कीकट पुरम् ॥ ४० ॥ बुद्धालयं सुविपुलं वेदधर्मबहिष्कृतम्। पितृ-देवार्चनाहीनं परलोकविलोपकम् ॥ ४१ ॥ देहात्मवादबहुलं कुलजातिविवर्जितम्। धनैः स्त्रीभिर्भक्ष्यभोज्यैः स्वपराभेद-दर्शिनम् ॥ ४२ ॥ नानाजनैः परिवृतं पानभोजनतत्परैः ४३ श्रुत्वा जिनो निजगणैः कल्केरागमनं क्रुधा। अक्षौहिणीभ्यां

कर प्रीतिपूर्वक पिताको नमस्कार किया, फिर सेनाओंको साथमें लेकर पहिले कीकटपुरको जीतनेके लिये चलदिये४० वह कीकटपुर अत्यन्त विस्तारयुक्त और बौद्धोंका प्रधान स्थान था, तहाँ वैदिक धर्मका अनुष्ठान नहीं होता था, तहाँके पुरुष पितृतर्पण तथा देवपूजन नहीं करते थे, और पर-लोकका भय भी नहीं मानते थे ॥ ४१ ॥ उस देशके पुरुष प्रायः शरीरको ही आत्मा मानते थे, प्रत्यक्ष दीखते हुए शरीरसे भिन्न दूसरा आत्मा नहीं मानते थे, उनको कुल तथा जातिका अभिमान किंचिन्मात्र भी नहीं था, वे धनके विषयमें, स्त्रीसमागमके विषयमें, और भोजन करनेके विषय में. परस्पर भेद नहीं रखते थे ॥ ४२ ॥ उस देशमें बहुतसे मनुष्य रहते थे, वे सब भोजन पान आदिरूप इस लोकके सुखको साधनेमें ही समयको व्यतीत करते थे ॥ ४३ ॥तद-नन्तर उस देशके राजा जिनने जिस समय सुना कि–कल्कि जी सेनाओंको साथमें लिये हुए युद्ध करनेको आरहे हैं,उसी समय वह दो अक्षौहिणी (२१८७० रथ, २१८७० हाथी. ६५६१० घोड़े, १०९३५० पैदल सबका जोड़ हुआ २१८७०० इतनी अक्षौहिणी होती है, इससे दुगुनी

सहितः संबभूव पुराद्बहिः ४४गजरथतुरगैः समाचिता भू.कनक विभूषणभूषितैर्वराङ्गैः। शतशतरथिभिर्धृतास्त्रशस्त्रैः ध्वज-पटराजिनिवारितातपैर्बभौ सा ॥ ४५ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे बुद्ध-निग्रहे कीकटपुरगमनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सूत उवाच। ततो विष्णुः सर्वजिष्णुः कल्किः कल्कविनाशनः।कालयामास तां सेनां करिणीमिव केसरी१सेनाङ्गनां तां रतिसङ्गरक्षतीं रक्ताक्तवस्त्रां विहतोरुमध्याम्। पलायतीं चारुविकीर्णकेशां विकूजतीं प्राह स कल्किनायकः२रे बौद्धाः मा पलायध्वं निवर्तध्वं रणाङ्गणे युध्यध्वं पौरुषं साधु दर्शयध्वं

अर्थात् ४३६२००) सेना लेकर संग्राम करनेको नगरसे बाहर आया, उस समय सैकड़ों घोड़े, सैकडों रथ, सैकडों हाथी सैकडों सुवर्णके आभूषणोंसे भूषित सुवर्णके रथों पर बैठे हुए रथियोंसे और अस्त्रशस्त्रधारी पैदलोंसे पृथ्वी छा गई, सेनाओंकी इतनी पताकायें थीं कि-उनसे धूप छिपने लगी, उस समय युद्ध करनेकी इच्छा करनेवाले वीरोंकी अपूर्व शोभा हुई ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

सूतजी बोले, कि—तदनन्तर जिसप्रकार सिंह हथिनीको घेर लेता है, तिसीप्रकार पापनाशक सर्वविजयी विष्णुरूप कल्कि भगवानने बौद्धसेनाको घेर लिया ॥ १ ॥ नायक-रूप सेनाके स्वामी कल्कि भगवान्, रतियुद्धकी समान युद्ध में क्षत विक्षत रुधिरसे भीगे हैं वस्त्र जिनके और अगुप्त है मध्यभाग जिसका ऐसी भागती हुई खुले केशोंवाली चिल्लाती हुई सेनारूप स्त्रीसे कहनेलगे ॥ २ ॥ कि-अरे बौद्धों! तुम

पुनर्मम ॥३॥ जिनो हीनबलः कोपात् कल्केराकर्ण्य तद्वचः । प्रतियोद्धुं वृषारूढः खड्गचर्मधरो ययौ ॥ ४ ॥ नानाप्रहरणोपेतो नानायुधविशारदः । कल्किना युयुधे धीरो देवानां विस्मयावहः ॥५॥ शूलेन तुरगं विद्ध्वा कल्किं बाणेन मोहयन् । क्रोडीकृत्य द्रुतं भूमेर्नाशकत् तोलनात्ततः ॥ ६ ॥ जिनो विश्वम्भरं ज्ञात्वा क्रोधाकुलितलोचनः । चिच्छेदास्य तनुत्राणं कल्केः शस्त्रञ्च दासवत् ॥७॥ विशाखयूपोऽपि तथा निहत्य

रणभूमिसे भागो मत,लौट आओ, युद्ध करो, तुममें जितनी वीरता है उसको दिखानेमें त्रुटि मत करो, आओ फिर युद्ध करो, और मुझे अपनी वीरता दिखाओ ॥ ३ ॥ वे मनुष्य पहिलेसे हीनबल होरहे थे, परन्तु कल्किजीका यह वाक्य सुनकर क्रोधमें भरगये और ढाल तलवार ले वृष पर चढ़कर युद्ध करनेको कल्किजीकी ओरको दौड़े ॥ ४ ॥ वह बौद्धोंका राजा जिन अस्त्रोंसे संग्राम करनेमें परमप्रवीण था वह अनेकों प्रकारके अस्त्र लेकर कल्किजीसे युद्ध करनेलगा उस संग्राम करनेमें चतुर जिनने इसप्रकार युद्ध करना प्रारंभ किया कि-जिसको देखकर देवताओंको भी आश्चर्य हुआ ॥ ५ ॥ उसने शूलसे घोड़ेको भेदकर तथा बाणसे कल्किजीको मोहित और मूर्छित करके गिरादिया फिर शीघ्रतासे उन कल्किजीको उठाकर लेजानेकी इच्छा की परन्तु किसी प्रकार पृथ्वीपरसे उठानेको समर्थ न हुआ ॥६॥ उस समय वह जिन नामक बौद्धोंका राजा कल्किजीको विश्वम्भर मूर्त्ति जानकर क्रोधमें भरगया और लाल नेत्रकर उन कल्किजीको वन्दी (कैदी) की समान मान उसने उनके कवच

गदया जिनम् । मूर्च्छितं कल्किमादाय लीलया रथमारुहत् ८ लब्धसंज्ञस्तथा कल्किः सेरकोत्साहदायकः । समुत्पत्य रथात् तस्य नृपस्य जिनमाययौ ॥ ९ ॥ शूलव्यथां विहायाजौ महासत्त्वस्तुरङ्गमः । रिङ्गणैर्भ्रमणैः पादविक्षेपहननैर्मुहुः ॥ १० ॥ दण्डाघातैः सटाक्षेपैर्बौद्धसेनागणान्तरे । निजघान रिपून् कोपाच्छतशोऽथ सहस्रशः ॥ ११ ॥ निश्वासवातैरुड्डीय केचिद् द्वीपान्तरेऽपतन् । हस्त्यश्वरथसम्बाधाः पतिता रणमूर्द्धनि ॥ १२ ॥ गर्ग्योऽहनत् षष्टिशतं भर्ग्यः कोटिशतायुतम् ।

और अस्त्र शस्त्रोंको तोड़कर छिन्न भिन्न करदिया ॥ ७ ॥ राजा विशाखयूपने यह सब चरित्र देखकर जिनके ऊपर गदाका प्रहार किया और सहजमें ही मूर्छित कल्किजीको उठाकर अपने रथपर जाबैठा ॥ ८ ॥ कल्किजी भी कुछ कालमें सचेत होकर अपनी सेनाके वीरोंको उत्साह देनेलगे फिर वह कल्किजी राजा विशाखयूपके रथसे कूदकर बौद्धों के राजा जिनकी ओरको दौड़े ॥ ९ ॥ महाशक्तिमान् कल्कि जीके घोड़ेने भी शूलकी पीड़ाको भूल रणभूमिमें कूदकर और घूम२ कर लातोंके प्रहारसे दाँतोंसे तथा कंधेके केशों की फटकारसे बौद्धसेनामेंके सैकड़ों और हजारों शत्रुओं को क्रोधमें भरकर नष्ट करदिया ॥१०॥ ॥११॥ कोई २ योधा उस भयानक घोड़ेकी श्वासकी वायुसे उड़कर दूसरे द्वीपमें जापड़े, कोई उसके श्वाससे उड़ते ही हाथी, घोड़े और रथोंमें टक्कर खाकर उस संग्रामभूमिमें ही गिरपड़े १२ गर्ग्य और उनकी सेनाके वीरोंने थोड़ेसे कालमें छः हजार बौद्धसेनाका नाश करदिया; भर्ग्य और उनकी सेनानेभी

विशालस्तु सहस्राणां पञ्चविंशं रणे त्वरन् ॥ १३ ॥ अयुते द्वे जघानाजौ पुत्राभ्यां सहितः कविः । दशलक्षं तथा प्राज्ञः पञ्चलक्षं सुमन्त्रकः ॥१४॥ जिनं प्राह हसन् कल्किस्तिष्ठाग्रे मम दुर्मते ! । दैवं मां विद्धि सर्वत्र शुभाशुभफलप्रदम् ॥१५॥ मद्बाणजालभिन्नाङ्गो निःसङ्गो यास्यसि क्षयम् । न यावत् पश्य तावत् त्वं बन्धूनां ललितं मुखम् ॥ १६ ॥ कल्केरितीरितं श्रुत्वा जिनः प्राह हसन् बली । दैवं त्वदृश्यं शास्त्रे ते

एक करोड़ दश लाख सेनाका नाश करदिया; विशाल और उनकी सेनाने पच्चीसहजार बौद्धसेनाका नाश करडाला १३ अपने दोनों पुत्रोंके सहित कविने दशहजार शत्रुसेनाका नाश किया इसीप्रकार प्राज्ञने दशलाख और सुमंत्रने पांचलाख सेनाका संहारकरके रणशय्यापर सुलादिया १४ तदनन्तर कल्किभगवान्ने हँसकर बौद्धोंके राजा जिनसे कहा, कि–अरे दुर्मति ! भाग मत सामने खडा रह, सब स्थानमें शुभ और अशुभ कर्मोंका फल देनेवाले मुझे अदृष्टरूप विचार, अर्थात् जैसा तूने पापाचरण किया है उसका फल तू जहाँ जायगा तहाँ ही मैं दूँगा॥१५॥ तू इस समय ही मेरे बाणोंके समूह से छिन्न-भिन्न-शरीर होकर परलोकको पधारेगा, उस समय कोई भी तेरे साथ नहीं जायगा, इसकारण तू अपने बान्धवोंके सुन्दर-मुखको देखले ॥ १६ ॥ वह परमबली जिन कल्कि भगवान्के इस वाक्यको सुनकर हँसता हुआ कहनेलगा, कि–अदृष्ट तो किसी समय भी प्रत्यक्ष नहीं होता है हम प्रत्यक्ष वस्तुको माननेवाले बौद्ध हैं, हम प्रत्यक्ष से भिन्न कुछ नहीं मानते हमारे शास्त्रने कहा है, कि-अदृष्ट

वधोऽप्यसुररीकृतः। प्रत्यक्षवादिनो बौद्धा वय यूयं वृथाश्रमाः१७ यदि वा दैवरूपस्त्वं तथाप्यग्रे स्थिता वयम्। यदि भेत्तासि बाणौघैस्तदा बौद्धैः किमत्र ते॥ १८॥ सोपालम्भं त्वया ख्यातं त्वय्येवास्तु स्थिरो भव। इति क्रोधाद् वाणजालैः कल्किं घोरैः समावृणोत्॥ १९॥ स तु वाणमयं वर्षं क्षयं निन्येऽर्कवद्धिमम्॥ २०॥ ब्राह्मं वायव्यमाग्नेयं पार्जन्यं चान्यदायुधम्। कल्केर्दर्शनमात्रेण निष्फलान्यभवन् क्षणात्२१ ययोषरे बीजमुप्तं दानमश्रोत्रिये यथा। यथा विष्णौ सतां द्वेषात् भक्तिर्येन कृताप्यहो॥ २२॥ कल्किस्तु तं वृषारूढम-

और अप्रत्यक्ष जो कुछ विषय मनुष्योंने माना है उसका हम नाश करदेंगे॥ १७॥ इसकारण तुम वृथा परिश्रम करते हो, यद्यपि तुम दैवस्वरूप हो, तथापि हम तुम्हारे सन्मुख ही खड़े हैं, यद्यपि तुम हमारा वाणोंसे वेधकर प्राणान्त कर दोगे, तो क्या अन्य बौद्ध तुम्हें क्षमा कर देंगे ? ॥ १८॥ तुमने जो हमें तिरस्कारके वाक्य कहे हैं,धीरज रक्खो इसका फल तुम्हें मिलेगा, ऐसा कहकर जिनने अतितीखे वाणों से कल्किजीको ढक दिया॥ १९॥ जिसप्रकार सूर्यका दर्शन होने पर वर्फका वरसना बन्द होजाता है तिसीप्रकार कल्कि भगवान्के तेजसे वह वाणोंकी वर्षा नष्ट होगई २० ब्रह्मास्त्र वायव्य अस्त्र, आग्नेयास्त्र, पार्जन्य अस्त्र, तथा और भी अनेक प्रकारके अस्त्र कल्कि भगवान्के दर्शनसे ही क्षणमात्रमें निष्फल होगये॥ २१॥ मरुदेशमें बोएहुए बीजकी समान, अपात्र (अयोग्य) को दीहुई वस्तुकी समान, साधुपुरुषोंके द्वेषके साथ विष्णुभगवान्में की हुई

वसुन्य कचेऽग्रहीत् । ततस्तौ पततुर्भूमौ ताम्रचूडाविव क्रुधा२३ पतित्वा स कल्किकचं जग्राह तत्करं करे ॥२४॥ ततः समुत्थितौ व्यग्रौ यथा चाणूरकेशवौ । धृतहस्तौ धृतकचौ ऋक्षाविव महाबलौ । युयुधाते महावीरौ जिनकल्की निरायुधौ२५ ततः कल्किर्महायोगी पदाघातेन तत्कटिम् । विभज्य पातयामास तालं मत्तगजो यथा ॥ २६ ॥ जिनं निपतितं दृष्ट्वा बौद्धा हाहेति चुक्रुशुः । कल्केः सेनागणा विप्रा जहृषुर्निहतारयः ॥ २७ ॥ जिने निपतिते भ्राता तस्य शुद्धोदनो बली ।

भक्तिकी समान, जिनके सम्पूर्ण अस्त्र निष्फल होनेलगे२२ तदनन्तर कल्कि भगवान्ने कूदकर बैल पर चढ़ेहुए जिनके केश पकड़लिये, उस समय मुर्गेकी समान वह दोनों भूमिमें गिरकर क्रोध पूर्वक पछाड़ा पछाड़ी करने लगे,जिनने भूमिपर गिरकर एक हाथमें कल्किजीके केश और एक हाथसे उनका हाथ पकड़लिया । २४ ॥ फिर चाणूर दैत्य और श्रीकृष्ण की समान वे दोनों पृथ्वी परसे तत्काल उठे, दोनोंके दोनों ने केश और हाथ,पकड़लिये थे, दोनोंने शस्त्र त्यागदिये और महाबली दो रीछोंकी समान मल्लयुद्ध करनेलगे।२५। तदनन्तर जिसप्रकार मत्तमातङ्ग तालके वृक्षको तोड़ता है तिसीप्रकार महायोद्धा कल्किजीने लातके प्रहारसे जिनकी कमर तोड़कर पृथ्वी पर गिरादिया ॥ २६ ॥ बौद्धसेना जिनको रणभूमिमें गिराहुआ देखकर ' हाहा' शब्द करती हुई चिल्लाने लगी,हे ब्राह्मणों!शत्रुका संहार होनेपर कल्कि-जीकी सेनाको असीम आनन्द प्राप्त हुआ ॥ २७ ॥ इस प्रकार जिनके रणभूमिमें मारेजाने पर शुद्धोदननामवाला

पादचारी गदापाणिः कल्किं हन्तुं द्रुतं ययौ ॥ २८ ॥ कविस्तु तं बाणवर्षैः परिवार्य समन्ततः । जगर्ज परवीरघ्नो गजमारुह्य सिंहवत् ॥ २९ ॥ गदाहस्तं तमालोक्य पत्तिं स धर्मवित् कविः । पदातिगो गदापाणिस्तस्थौ शुद्धोदनाग्रतः ३० स तु शुद्धोदनस्तेन युयुधे भीमविक्रमः । गजः प्रतिगजेनेव दन्ताभ्यां सगदावुभौ ॥ ३१ ॥ युयुधाते महावीरौ गदायुद्धविशारदौ। कृतविप्रकृतौ मत्तौ नदन्तौ भैरवान् रवान् ॥३२॥ कविस्तु गदया गुर्व्या शुद्धोदनगदां नदन् । करादपास्याशु तया त्वया वक्षस्यताडयत् ॥ ३३ ॥ गदाघातेन निहतो वीरः

महाबली उसका भ्राता गदा लेकर कल्किजीका नाश करनेकी इच्छासे तत्काल पैदलही दौड़ता हुआ आया ॥ २८ ॥ तदनन्तर हाथी पर चढ़ेहुए, शत्रुपक्षके वीरोंका नाश करनेवाले कविने बाणोंकी वर्षा करके शुद्धोदनको ढकदिया और सिंहकी समान गरजने लगा२९धर्मको जाननेवाला कवि, शुद्धोदनको हाथमें गदा धारण करेहुए और पैदल देखकर अपने आपभी हाथीपरसे उतर पड़ा,और पैदलही गदा लेकर शुद्धोदनके सन्मुख खड़ा होगया ॥ ३० ॥ भीमपराक्रमी शुद्धोदनने भी कविके साथ युद्धकरना प्रारम्भ करदिया, जिसप्रकार हस्ती अपने शत्रु हस्तीके साथ दाँतोंसे युद्ध करता है, तिसीप्रकार गदायुद्ध करनेमें प्रवीण महावीर कवि और शुद्धोदन दोनों गदा लेकर युद्ध करने लगे, दोनों रणमें उन्मत्त होनेके कारण भयानक शब्द करने लगे और गदाके प्रहार को रोकने लगे ॥३१॥३२॥ तदनन्तर कविने सिंहनाद करके बड़े जोरके साथ गदाके प्रहारसे शुद्धोदनके हाथ

शुद्धोदनो भुवि । पतित्वा सहसोत्थाय तं जघ्ने गदया पुनः ३४ संताडितेन तेनापि शिरसा स्तम्भितः कविः । न पपात स्थितस्तत्र स्थाणुवद्विकलेन्द्रियः ॥ ३५ ॥ शुद्धोदनस्तमालोक्य महासारं रथायुतैः । मावृतं तरसा मायां देवीमानेतुमाययौ ३६ यस्या दर्शनमात्रेण देवासुरनरादयः । निःसाराः प्रतिमाकारा भवन्ति भुवनाश्रयाः ॥ ३७ ॥ बौद्धा शौद्धोदनाद्यग्रे कृत्वा तामग्रतः पुनः । योद्धुम् समागता म्लेच्छकोटिलक्षशतैर्वृताः ३८ सिंहध्वजोच्छ्रितरथां फेरुकाकगणावृताम् । सर्वास्त्रशस्त्रजननीं

की गदा गिरादी, और उसी समय उसके वक्षःस्थल पर अपनी गदाका प्रहार किया ॥ ३३ ॥ वीर शुद्धोदन गदा का प्रहार लगनेसे तत्काल भूमिपर गिरपड़ा, और फिर उसी समय उठकर अपनी गदा उठा कविके मस्तक पर प्रहार किया ॥ ३४ ॥ कवि उस गदाके प्रहारसे ताड़ित होकर भूमि पर नहीं गिरा, किन्तु विकलेन्द्रिय और मूर्छितसा होकर ठूंठ वृक्षकी समान चेष्टारहित हो खड़ा रहा ॥ ३५ ॥ फिर शुद्धोदन उन कविको महाबली परमपराक्रमी और हजारों रथियोंसे युक्त देखकर तत्काल मायादेवीको लेनेके निमित्त चलागया ॥ ३६ ॥ जिस मायादेवीके देखने मात्रसे देवता, दैत्य, मनुष्य-आदि त्रिलोकीके सम्पूर्ण प्राणी तेजोहीन और काठकी पुतलीकी समान चेष्टाहीन होजाते थे ॥ ३७ ॥ तदनन्तर शुद्धोदन आदि बौद्ध उस मायादेवीको आगे करके लाखों म्लेच्छोंकी सेनाको साथमें लेकर फिर युद्ध करनेको आये ॥ ३८ ॥ सिंहका ध्वजासे शोभायमान रथपर बैठी हुई मायादेवी अनेकों अस्त्र शस्त्रोंको उत्पन्न करनेलगी;

षड्वर्गपरिसेविताम् ॥ ३६ ॥ नानारूपां बलवतीं त्रिगुणव्यक्तिलक्षिताम् । मायां निरीक्ष्य पुरतः कल्किसेना समापतत् ४० निःसाराः प्रतिमाकाराः समस्ताः शस्त्रपाणयः ॥४१॥ कल्किस्तानालोक्य निजान् भ्रातृज्ञातिसुहृज्जनान् । मायया जायया जीर्णान् विभुरासीत् तदग्रतः ॥ ४२ ॥ तामालोक्य वरारोहां श्रीरूपां हरिरीश्वरः । सा प्रियेव तमालोक्य प्रविष्टा तस्य विग्रहे ॥ ४३ ॥ तामनालोक्य ते बौद्धा मातरं कतिधा वराः । रुरुदुः संघशो दीनाः हीनस्वबलपौरुषाः ॥ ४४ ॥ विस्मयाविष्टमनसः क्व गतेयमथाब्रुवन् । कल्किः समालोकनेन

काक और शृगालोंके समूह उसको चारों ओरसे घेरकर अतिघोर शब्द करने लगेः काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद मात्सर्य्य, यह षड्वर्ग उसकी सेवा करने लगा ॥ ३६ ॥ कल्कि भगवान्की सेनाके योधा, नानारूपधारिणी, बलवती, त्रिगुणरूपा मायादेवीको सन्मुख देखकर एक एक करके प्रायः सब ही गिरगये ॥ ४० ॥ कितनेही योधा तेजोहीन होकर काठकी पुतलीकी समान खड़े रहगये ॥ ४१ ॥ तदनन्तर सर्वव्यापी कल्कि भगवान् अपने भ्राता जातिके पुरुष तथा मित्रोंको मायारूप अपनी स्त्रीसे तिरस्कृत और शिथिल हुए देखकर उनके आगे आकर खड़े होगये ॥४२॥ त्रिलोकीनाथ श्रीहरिके, लक्ष्मीरूप सुन्दरी मायाकी ओर दृष्टि डालते ही वह माया भी परमप्रिय स्त्रीकी समान उनके शरीरमें प्रवेश करके लीन होगयी ॥ ४३ ॥ प्रधान२ बौद्ध उस अपनी माता मायादेवीको न देखकर बल और पुरुषार्थहीन होनेके कारण सौ२ इकट्ठे होकर वारम्वार दीन

समुत्थाप्य निजान् जनान् ॥ ४५ ॥ निशातमसिमादाय म्लेच्छान् हन्तुं मनो दधे। सन्नद्धं तुरगारूढं दृढहस्तधृतत्सरुम्॥४६ धनुर्निषङ्गमनिशं बाणजालप्रकाशितम्। धृतहस्ततनुत्राणगोधांगुलिविराजितम् ॥४७॥ मेघोपर्युप्ततारभं दंशनस्वर्णबिन्दुकम्। किरीटकोटिविन्यस्तमणिराजिविराजितम् ॥४८॥ कामिनीनयनानन्दसन्दोहरसमन्दिरम्। विपक्षपक्षविक्षेपक्षिप्तरूक्षकटाक्षकम् ॥ ४९ ॥ निजभक्तजनोल्लाससंवासचरणाम्बुजम्। निरीक्ष्य कल्किं ते बौद्धास्तत्रसुर्धर्मनिन्दकाः॥५०॥

शब्दसे चिल्लाने लगे ॥ ४४ ॥ और चित्तमें आश्चर्य मान कर कहने लगे, कि अरी हमारी माता ! मायादेवी !! कहाँ चलीगयी !!! इधर कल्कि भगवान्ने भी दृष्टिपातसे अपनी सेनाको उठाया ॥ ४५ ॥ और तीखी तलवार लेकर म्लेच्छोंका नाश करनेकी इच्छा की, तथा घोड़े पर चढ़कर हाथमें दृढ़तापूर्वक तलवारकी मूठ धारण करी।४६। बाणोंके समूहसे शोभायमान तर्कस और धनुष शोभाको बढ़ानेलगा, उनके शरीरका कवच और दस्ताने अलौकिक शोभाको फैलाने लगे ॥ ४७ ॥ कवचके ऊपर सुवर्णकी बिन्दुए होनेसे मेघके ऊपर स्थित तारागणकी समान शोभा होने लगी, किरीटके अग्रभागमें जड़ेहुए नानाप्रकारकी मणियें विराजमान होनेलगीं ॥ ४८ ॥ वह कल्कि भगवान् अधर्म्मी शत्रुओंका नाश करनेके निमित्त उनकी ओर रूखे कटाक्षपात करने लगे, उनके चरणकमलोंका दर्शन करके भक्तोंका मन प्रसन्न होने लगा, धर्म्मनिन्दक बौद्ध, कामनियोंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले रसके स्थानरूप उन कल्कि

जहृषुः सुरसङ्घाः खे यागाहुतिहुताशनाः॥५१॥सुबलमिलनहर्षः शत्रुनाशैकतर्षः, समरवरविलासः साधुसत्कारकाशः। स्वजनदुरितहर्त्ता जीवजातस्य भर्त्ता, रचयतु कुशलं वः कामपूरावतारः॥ ५२ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे
बौद्धयुद्धो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥
समाप्तोऽयं द्वितीयांशः।

तृतीयांशः ।

सूत उवाच । ततः कल्किर्म्लेच्छगणान् करवालेन कालितान् । बाणैः संताडितानन्यानलयद्यमसादनम् ॥ १ ॥

भगवान्को देखकर भयभीत होने लगे ॥ ४९ ॥ ॥ ५० ॥ धर्म्मनिन्दकोंके तेजोहीन होनेसे फिर यज्ञमें अग्निमें आहुति दीजायगी, ऐसा जानकर आकाशमें स्थित देवता परम प्रसन्न हुए ॥ ५१ ॥ जिन्होंने सुन्दर सेनाको साथमें लेकर प्रसन्नतासे सम्पूर्ण शत्रुओंका संहार करनेकी इच्छा की, जिन्होंने महासंग्राममें किसीप्रकारका परिश्रम न मानकर अनायासमें ही युद्ध किया; जिन्होंने साधुपुरुषोंका सत्कार करनेकी इच्छासे अवतार धारण किए; जो अपने भक्तोंके पापोंको दूर करते हैं, जो सम्पूर्ण जीवोंके स्वामी हैं, और जिन्होंने साधुपुरुषोंके मनोरथ पूर्ण करनेके निमित्त पृथ्वी पर अवतार लिया है, वह कल्कि भगवान् तुम्हारा मङ्गल करैं ॥ ५२ ॥ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥

सूतजी बोले, कि हे ऋषियो ! तदनन्तर कल्किभगवान्ने म्लेच्छोंमेंसे कितनोंही को बाणोंसे वेधकर और कितने

विशाखयूपोऽपि तथा कविप्राज्ञसुमन्त्रकाः। गार्ग्यभार्ग्यविशालाद्या म्लेच्छान् निन्युर्यमक्षयम् ॥ २ ॥ कपोतरोमा काकाक्षः काककृष्णादयोऽपरे। बौद्धाः शौद्धोदना याता युयुधुः कल्किसैनिकैः ॥ ३ ॥ तेषां युद्धमभूद् घोरं भयदं सर्वदेहिनाम्। भूतेशानन्दजनकं रुधिरारुणकर्दमम् ॥४॥ गजाश्वरथसंघानां पततां रुधिरस्रवैः। स्रवन्ती केशशैवाला वाजिग्राहा सुगाहिका ॥ ५ ॥ धनुस्तरङ्गा दुष्पारा नरोष्ठास्यग्राहिणी। शिरःकूर्मा रथतरिः पाणिमीनासृगापगा ॥ ६ ॥ प्रवृत्ता तत्र बहुधा

ही को तलवारोंसे खण्ड२ करके यमलोकमें पहुंचा दिया॥१॥ इसीप्रकार विशाखयूप, कवि, प्राज्ञ, सुमन्त्रक, गार्ग्य भर्ग्य और विशालआदि वीरोंने भी अनेकों म्लेच्छोंको यमलोकमें पहुंचा दिया ॥ २ ॥ कपोतरोम, काकाक्ष और काककृष्ण आदि बौद्ध तथा शुद्धोदनके अनुयायी आकर कल्कि भगवान्की सेनासे संग्राम करने लगे ॥ ३ ॥ ऐसा घोर संग्राम हुआ, कि-सब प्राणी भयभीत होगये, और ऐसा देखकर सर्वसंहारकर्त्ता तमोगुणमूर्त्ति भूतनाथ महादेवजीको आनन्द हुआ, रुधिर की लाल २ कींचसे संग्राम की भूमि भर गई ॥ ४ ॥ जो हाथी-घोड़े और रथी कटकटकर गिरने लगे, उनके रुधिरके प्रवाहकी एक नदी वह निकली; उस नदीमें केशोंके समूह शेवालकी समान शोभायमान होने लगे;घोड़ेरूप नाके गोते लगाने लगे, ॥ ५ ॥ धनुषोंके समूह तरङ्गों की समान प्रतीत होने लगे, हाथियोंके समूह उस दुस्तर नदीके तटकी समान शोभित होने लगे, उस रुधिरकी नदी में कटेहुए मस्तक कछुओंकी समान, रथ नौकाकी समान

हर्षयन्ती मनस्विनाम् । दुन्दुभेयरवा फेरशकुनानन्ददायिनी ७
गजैर्गजा नरैरश्वाः खरैरुष्ट्रा रथै रथाः । निपेतुर्बाणभिन्नाङ्गाः
छिन्नबाहुं घ्रकन्धराः ॥ ८ ॥ भस्मना गुण्ठितमुखा रक्तवस्त्रा
निवारिताः । विकीर्णकेशाः परितो यान्ति संन्यासिनो यथा९
व्यग्राः केऽपि पलायन्ते याचन्त्यन्ये जलं पुनः । कल्किसेना-
शुगक्षुण्णा म्लेच्छा नो शर्म लेभिरे१० तेषां स्त्रियो रथारूढा
गजारूढा विहङ्गमैः । समारूढा हयारूढा खरोष्ट्रपवाहनाः११

कटेहुए भुज मच्छियोंकी समान, दुन्दुभियोंकी ध्वनि (नगाड़ोंका शब्द) जलकी तरङ्गोंके शब्द की समान शोभा को प्राप्त होने लगी; उस रुधिर की नदीके तटपर शृगाल और चीलोंके आनन्दके शब्द होने लगे, उसको देखकर साधुपुरुष प्रसन्न हुए॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ हाथी पर चढ़ेहुए योधाके साथ हाथीसवार, घुड़सवार घुड़सवारके साथ, ऊँटपर चढ़ाहुआ योधा ऊँटपर चढेहुए योधाके साथ, और रथी रथीके साथ सँग्राम करके बाणोंसे विधेहुए—हाथ कटे पैर कटे—और मस्तकहीन होकर गिरने लगे ॥ ८ ॥ और कितने ही योधा परास्त तथा भयभीत होनेके कारण रक्त-वस्त्र और धूलिसे अटाहुआ है मुख जिनका, तथा खुलेहुए हैं केश जिनके ऐसे होकर संन्यासियोंकी समान निषेध करने पर भी तहाँसे चारोंओरको चलेगये ॥ ९ ॥ कोई व्याकुल होकर भागने लगे, कोई बारम्बार जल माँगने लगे, इसप्रकार कल्कि भगवान की सेनाके बाणोंसे बिंधीहुई म्लेच्छोंकी सेनाका किसीप्रकार भी कुशल न हुआ ॥ १० ॥ इसप्रकार म्लेच्छोंकी सेनाके परास्त होनेपर

योद्धु समायग्रुस्त्यक्त्वा पत्यापत्यसुखाश्रयान् । रूपवत्यो युवत्योऽतिबलवत्यः पतिव्रताः ११नानाभरणभूषाढ्याः सन्नद्धा विशदप्रभाः । खड्गशक्तिधनुर्बाणवलयाक्तकराम्बुजाः १२ स्वैरिण्योऽप्यतिकामिन्यो पुंश्चल्यश्च पतिव्रता । ययुर्योद्धुं कल्किसैन्यैः पतीनां निधनातुराः ॥ १४ ॥ मृद्भस्मकाष्ठचित्राणां प्रभुताम्नायशासनात् । साक्षात् पतीनां निधनं किं युवत्योऽपि सेहिरे ॥ १५ ॥ ताः स्त्रियः स्वपतीन् वाणभिन्नान् व्याकुलितेन्द्रियान् । कृत्वा पश्चाद् युयुधिरे कल्किसैन्यैः ना-

उनकी स्त्रियें, कोई रथपर कोई हाथी पर कोई पक्षियों पर, और कोई घोडों पर, कोई गर्दभ पर कोई ऊँटोंपर कोई बैलोंपर चढ़कर युद्ध करनेको आईं, ये सब रूपवती, बलवती, पतिव्रता और तरुणी थीं इन्होंने सन्तान और पतियों के सुखकी अभिलाषा त्यागदी, ये सब निर्मल कान्तिवाली स्त्रियें नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित और युद्धकी सामग्रीसे सजीहुईं खड्ग, शक्ति, धनुष, और बाण धारण कियेहुए थीं, इनके करकमलोंमें वलय अपूर्व शोभा देरहे थे ११-१३ इन सब सुन्दरी स्त्रियोंमें कोई व्यभिचारिणी, कोई पतिव्रता और कोई वेश्यायें थीं. ये सब पिता और पतियोंके मरण से कातर होकर कल्किभगवान्की सेनाके साथ युद्ध करने लगीं ॥ १४ ॥ शास्त्रमें कहा है, कि–लोकमें मृत्तिका, भस्म और काष्ठ आदि वस्तुकी रक्षाके निमित्त भी पुरुष प्राणोंको त्यागदेते हैं, फिर स्त्रियें अपने सामने प्राणोंकी समान पतियोंकी मृत्युको किसप्रकार सहतीं ? ॥ १५ ॥ फिर म्लेच्छों की स्त्रियोंने शेष बचेहुए अपने पति आदिको बाणोंसे विंधा-

युधाः॥१६॥ ताः स्त्रीरुद्वीक्ष्य ते सर्वे विस्मयस्मितमानसाः। कल्किमागत्य ते योधाः कथयामासुरादरात् ॥ १७ ॥ स्त्रीणामेव युयुत्सूनां कथाः श्रुत्वा महामतिः। कल्किः समुदितः प्रायात् स्वसैन्यैः सानुगो रथैः ॥ १८ ॥ ताः समालोक्य पद्मेशः सर्वशस्त्रास्त्रधारिणीः। नानावाहनसंरूढाः कृतव्यूहा उवाच सः॥१९॥ कल्किरुवाच। रे स्त्रियः! शृणुतास्माकं वचनं पथ्यमुत्तमम्। स्त्रिया युद्धेन किं पुंसां व्यवहारोऽत्र विद्यते ॥ २० ॥ मुखेषु चन्द्रबिम्बेषु राजिताल-

---

हुआ और व्याकुल देखकर उनको अपने पीछे करलिया और अपने आप शस्त्र धारण करके कल्किभगवान्की सेना के साथ संग्राम करनेलगीं ॥ १६ ॥ कल्किभगवान्की सेना के वीर इन सब स्त्रियोंको संग्राम करनेमें प्रवृत्त देखकर आश्चर्यमें होगये और कल्किभगवान्के समीप जाकर नम्रतापूर्वक सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १७ ॥ परम बुद्धिमान् कल्किभगवान् युद्ध करनेकी अभिलाषिणी स्त्रियोंका वृत्तान्त सुनकर हृदयमें प्रसन्न हुए और रथपर चढ़कर अपनी सेना और सेवकों सहित संग्रामभूमिमें आये ॥ १८ ॥ वह पद्मापति कल्किभगवान् नानाप्रकारके अस्त्र शस्त्र धारण करनेवालीं हाथी आदि अनेकों वाहनों पर चढ़ीहुईं, और सेनाकी रचनारीतिसे पंक्ति बाँधकर खड़ीहुईं उन म्लेच्छों की स्त्रियोंको देखकर कहने लगे ॥ १९ ॥ कल्किभगवान् बोले, कि अरी स्त्रियों ! मैं तुमसे हितकारक और उत्तम बात कहता हूं सुनो ! स्त्रियोंके साथ पुरुषोंकी युद्ध करनेकी रीति नहीं है ॥ २० ॥ तुम्हारे इन चन्द्रमाकी समान मुखों

कपङ्क्तिषु । प्रहरिष्यन्ति के तत्र नयनानन्ददायिषु ॥२१॥ विश्रान्ततारभ्रमरं नवकोकनदप्रभम् । दीर्घापङ्गेक्षणं यत्र तत्र कः प्रहरिष्यति ॥ २२ ॥ वक्षोजशम्भू सत्तारहारव्यालविभूषितौ । कन्दर्पदर्पदलनौ तत्र कः प्रहरिष्यति ॥ २३ ॥ लोललीलालकव्रातचकोराक्रान्तचन्द्रकम् । मुखचन्द्रं चिह्नहीनं कातं हन्तुमिहार्हति ॥ २४ ॥ स्तनभारभराक्रान्तनितान्तक्षीणमध्यमम् । तनुलोमलताबन्धं कः पुमान् प्रहरिष्यति ॥ २५ ॥ नेत्रानन्देन नेत्रेण समावृतमनिन्दितम् । जघनं सुघनं रम्यं बाणैः कः प्रहरिष्यति ॥ २६ ॥ इति कल्केर्वचः श्रुत्वा प्रहस्य

पर अलकोंकी पंक्तियें शोभा पारही हैं, इनको देखकर सब की ही आँखें सुख पाती हैं,इस मुखपर प्रहार करनेको किसका हाथ उठेगा ? ॥२१॥ इन चन्द्रमाकी समान मुखोंपर, खिले हुए कमलकी समान दीर्घ कटाक्षवाले नेत्रोंमें ताररूपी भ्रमर घूमरहे हैं, ऐसे मुखपर कौन पुरुष प्रहार करेगा ? ॥ २२ ॥ तुम्हारे ये दोनों कुचरूप शिव, चञ्चल हाररूप सर्पोंसे शोभा पारहे हैं इनका दर्शन करनेसे कामदेवका भी घमण्ड नष्ट होता है, उनके ऊपर कौन प्रहार करेगा ? ॥ २३ ॥ चञ्चल अलकरूप चकोरसे जिसकी चांदनी ढकरही है, ऐसे कलङ्कहीन चन्द्रमाकी समान मुखपर कौन प्रहार करसकता, है ? ॥ २४ ॥ तुम्हारा यह जो स्तनोंके भारसे नमाहुआ अत्यन्त क्षीण, सूक्ष्म रोमराजीसे विराजमान पेट है, इसके ऊपर कौन प्रहार करसकता है ? ॥२५॥ तुम्हारी इन, नेत्रों को आनन्द देनेवाले, वस्त्रसे ढकेहुए, अतिसुकोमल परमरमणीय जघाओंपर बाणोंका प्रहार कौन करसकता है? ॥२६॥

प्राङ्गराहताः । अस्माकं त्वं पतीन् हंसि तेन नष्टा वयं विभो ! । हन्तुं गतानामस्त्राणि कराण्येवागतान्युत ॥ २७ ॥ खड्गशक्तिधनुर्बाणशूलतोमरयष्टयः । ताः प्राहुः पुरतो मूर्त्ताः कार्त्तस्वरविभूषणाः ॥ २८ ॥ शस्त्राण्यूचुः । यमासाद्य वयं नार्यो हिंसयामः स्वतेजसा । तमात्मानं सर्वमयं जानीत कृतनिश्चयाः ॥ २९ ॥ तमीशमात्मना नार्यः ! चरामो यदनुज्ञया । यत्कृता नामरूपादिभेदेन विदिता वयम् ॥ ३० ॥ रूपगन्धरसस्पर्शशब्दाद्या भूतपञ्चकाः । चरन्ति यदधिष्टानात् सोऽयं

म्लेच्छोंकी स्त्रियें कल्किभगवान्की यह बात सुनकर हँसती हुई कहने लगीं, कि हे महात्मन् ! आपने जिस समय हमारे पतियोंका नाश किया था हम तो उस समय ही नष्ट होचुकीं यह कहकर वे स्त्रियें कल्किभगवान्के ऊपर प्रहार करनेको उद्यत हुई; परन्तु उन्होंने जो २ अस्त्र छोड़े वे सब उनके हाथोंमेंको ही लौट आये ॥ २७ ॥ तदनन्तर खड्ग, शक्ति, धनुष, बाण, शूल, तोमर और यष्टि आदि सब अस्त्र शस्त्र मूर्त्ति धारण करके सन्मुख खडे होगये, और सुवर्णके आभूषणोंको धारण करनेवाली उन म्लेच्छोंकी स्त्रियोंसे कहने लगे ॥ २८ ॥ शस्त्र बोले, कि-हे स्त्रियों ! हम जिनसे तेज पाकर अन्य पुरुषोंकी हिंसा करते हैं, यह वही सर्वव्यापक परमात्मा ईश्वर हैं; ऐसा निश्चय रक्खो ॥ २९ ॥ हे स्त्रियों! हम इन ईश्वरकी ही आज्ञासे विचरते हैं, इनसे ही हम नाम रूपको पाकर विख्यात हुए हैं ॥ ३० ॥ रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द इन पाँचों, गुणोंके आधार पंचमहाभूत इनसे ही अधिष्ठित होकर अपना २ कार्य्य करते हैं, यह

कल्किः परात्मकः ॥ ३१ ॥ कालस्वभावसंस्कारनामाद्या प्रकृतिः परा । यस्येच्छया सृजत्यण्डं महाहङ्कारकादिकान् ३२ यन्मायया जगद्यात्रा सर्गस्थित्यन्तसंज्ञिता । य एवाद्यः स एवान्ते तस्थायः सोऽयमीश्वरः ॥ ३३ ॥ असौ पतिर्मे भार्या-इमस्य पुत्रास्सबान्धवाः । स्वप्नोपमास्तु तन्निष्ठा विविधाश्चैन्द्र-जालवत् ॥ ३४ ॥ स्नेहमोहनिबद्धानां यातायातदृशां मतम् । न कल्किसेविनां रागद्वेषविद्वेषकारिणाम् ॥३५॥ कुतः कालः कुतो मृत्युः क्व यमः क्वास्ति देवता । स एव कल्किर्भगवान्

कल्किभगवान् वही परमात्मा हैं ॥ ३१ ॥ इनकी इच्छाके अनुसार ही काल, स्वभाव, संस्कार, नाम आदिकी आदि-कारण, परमप्रकृति महत्तत्व, और अहङ्कार तत्त्व आदि, ब्रह्माण्डकी रचना करते हैं ॥ ३२ ॥ सृष्टि स्थिति प्रलयरूप जगत्का प्रपंच, इनकी मायाके सिवाय और कुछ भी नहीं है, वह भगवान सबके आदि और अन्त हैं, तथा उनसे ही सम्पूर्ण संसारका पालन होता है, यह वह ही परमेश्वर हैं ३३ यह मेरा पति है, यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरा बांधव है, ये मेरे कुटुम्बी हैं, इसप्रकारका सम्पूर्ण व्यवहार स्वप्न और इन्द्रजालकी समान है, अनेकों प्रकारके व्यवहार इस मिथ्याप्रतीतिसे ही होते है ॥ ३४ ॥ जो पुरुष स्नेह और मोहके वशीभूत होकर जन्म मृत्युको केवल आवागमन मानते हैं,जो रागद्वेष हिंसा आदिको त्याग देते हैं,जो कल्कि भगवान्के सेवक हैं, उनको यह इन्द्रजालकी समान संसार का व्यवहार सत्य प्रतीत नहीं होता है ॥ ३५ ॥ काल कहाँसे उत्पन्न हुआ ? मृत्यु कहाँसे आया ? यम कौन

मायया बहुलीकृतः ॥ ३६ ॥ न शस्त्राणि वयं नार्यः संप्रहार्या न च क्वचित् । शस्त्रप्रहर्तृभेदोऽयमविवेकः परात्मनः ३७ कल्किदासस्यापि वयं हन्तुं नार्हाः, कथोद्धृतम् । हनिष्यामो दैत्यपतेः प्रह्लादस्य यथा हरिम् ॥ ३८ ॥ इत्यस्त्राणां वचः श्रुत्वा स्त्रियो विस्मितमानसाः । स्नेहमोहविनिर्मुक्तास्तं कल्किं शरणं ययुः ॥ ३९ ॥ ताः समालोक्य पद्मेशः प्रणता ज्ञान-निष्ठया । प्रोवाच प्रहसन् भक्तियोगं कल्मषनाशनम् ॥४०॥ कर्मयोगञ्चात्मनिष्ठं ज्ञानयोगं भिदाश्रयम् । नैष्कर्म्यलक्षणं

है ? और देवता कौन है ? केवल कल्किभगवान्ने ही माया के द्वारा बहुतसे रूप धारण किये हैं ॥ ३६ ॥ हे स्त्रियों ! हम शस्त्र नहीं हैं; और न किसीके ऊपर हम प्रहार कर सकते हैं, यह शस्त्र है, यह प्रहार करनेवाला है, यह सब भेद है केवल भगवान्की मायामात्र ही है ॥ ३७ ॥ दैत्यपति प्रह्लादकी कथाके अनुसार, जिस समय श्रीहरिने नृसिंह-मूर्त्ति धारण की थी उस समय उनके ऊपर जिसप्रकार हम प्रहार नहीं करसके थे, तिसीप्रकार कल्किभगवान्के सेवकों के ऊपर भी हम प्रहार नहीं करसकते ॥ ३८ ॥ स्त्रियें अस्त्र शस्त्रोंकी यह बात सुनकर हृदयमें आश्चर्य माननेलगीं, उस समय स्नेह और मोहको त्यागकर कल्किभगवान्की शरणमें गयीं ॥ ३९ ॥ पद्मापति कल्किभगवान् उन सम्पूर्ण म्ले-च्छोंकी स्त्रियोंको ज्ञाननिष्ठाके द्वारा नम्रहुई देखकर मुस्कु-राते हुए पापोंके समूहोंको नष्ट करनेवाले भक्तियोगका उपदेश करनेलगे ॥ ४० ॥ उन्होंने आत्मनिष्ठ ज्ञानयोग और भेदज्ञानका कारण कर्मयोग तथा किसप्रकार कर्मोंके

त्तासां कथयामास माधवः ॥ ४१ ॥ ताः स्त्रियः कल्किगदित-ज्ञानेन विजितेन्द्रियाः। भक्त्या परमवापुस्तत् योगिनां दुर्लभं पदम् ॥ ४२ ॥ दत्त्वा मोक्षं म्लेच्छबौद्धप्रियाणां कृत्वा युद्धं भैरवं भीमकर्मा । हत्वा बौद्धान् म्लेच्छसघांश्च कल्किस्तेषां ज्योतिःस्थानमापूर्य रेजे ॥ ४३ ॥ ये शृण्वन्ति वदन्ति बौद्ध-निधनं म्लेच्छक्षयं सादरात्, लोकाः शोकहरं सदा शुभकरं भक्तिप्रदं माधवे । तेषामेव पुनर्न जन्ममरणं सर्वार्थसम्पत्करं मायामोहविनाशनं प्रतिदिनं संसारतापच्छिदम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे म्लेच्छनिधनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अधीन नहीं होना पड़ता है, वह सब साधन उन स्त्रियोंको सुनाया ।। ४१ ।। वे स्त्रियें कल्किभगवान्के उपदेशसे ज्ञान को पा जितेन्द्रिय होकर भक्तिके द्वारा गोपियोंको भी दुर्लभ परमपद मोक्षको प्राप्त होगईं ।।४२।। इसप्रकार भयानककर्म करनेवाले कल्किभगवान्ने घोरयुद्धकरके बौद्ध और म्लेच्छोंका नाश किया,फिर उन्होंने उन बौद्ध और म्लेच्छोंकी स्त्रियोंको मुक्तिपद दिया तथा उन मृतक बौद्ध और म्लेच्छोंकोभी अपने ज्योतिःस्वरूपमें लीन करके शोभा पाई ।। ४३ ।। जो पुरुष इस म्लेच्छक्षय और बौद्धनाशकी कथाको आदरपूर्वक कीर्त्तन अथवा श्रवण करेंगे उनके सब शोक दूर होंगे, वे सदा कल्याणके पात्र होंगे, साधुपुरुषोंमें उनकी भक्ति होगी, और फिर जन्ममृत्युरूप संसारमें नहीं पड़ेंगे, इस कथाको श्रवण करनेसे सम्पूर्ण सम्पत्तियें प्राप्त होती हैं, माया और मोहका नाश होता है, तथा संसारका दुःख नहीं सहना पड़ता ॥ ४४ ॥ पहला अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

सूत उवाच । ततो बौद्धान् म्लेच्छगणान विजित्य सह सैनिकैः । धनान्यादाय रत्नानि कीकटात् पुनराव्रजत् १ कल्किः परमतेजस्वी धर्माणां परिरक्षकः । चक्रतीर्थं समागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥ २ ॥ भ्रातृभिर्लोकपालाभैर्बहुभिः स्वजनैर्वृतः । समायातान् मुनींस्तत्र ददर्शे दीनमानसान् ॥३॥ समुद्विग्नागतांस्तत्र परिपाहि जगत्पते ! । इत्युक्तवन्तो बहुधा ये तानाह हरिः परः ॥ ४ ॥ वालखिल्यादिकानल्पकायान् चीरजटाधरान् । विनयावनतः कल्किस्तानाह कृपाणन् भयात् ॥५॥ कस्माद् यूयं समायाताः केन वा भीपिता बत ।

सूतजी कहते हैं कि-हे ऋषियो ! कल्कि भगवान् इस प्रकार बौद्ध और म्लेच्छोंको जीतकर तथा उनके धन रत्नोंको लेकर सेनासहित कीकटनगर से लौट आए१ फिर सबप्रकारसे धर्म्मकी रक्षा करनेवाले परम तेजस्वी तिन कल्किभगवान् ने चक्रतीर्थ पर आकर विधिपूर्वक स्नान करा ॥ २ ॥ और लोकपालोंकी समान अपने भ्राताओं के साथ तथा बहुत से मित्रवर्गों के साथ बैठे थे इतनेमें ही क्या देखते हैं कि-कितने ही एकमहर्षि हृदयमें दुःखित होकर आये ३ यह सब महर्षि कल्किभगवान्के पास आकर वारम्वार अपने भयभीत होनेका कारण कहने लगे, कि-हे जगत्पते ! रक्षा करो ! हे हरे रक्षा करो ! ! ऐसा सुन श्रीहरि उनसे कहनेलगे, और वटुरूप जटाधारी-फटेहुए वस्त्र धारण करेहुए-वालखिल्य आदि जो महर्षि, दुःखित होकर आए थे उनसे भी तिन कल्किभगवानने नम्रतापूर्वक कहा ॥ ४-५ ॥ कि-आप इस समय कहाँसे आये हैं ? और आपको किसने भय दिया

त्वमहं निहनिष्यामि यदि वा स्यात् पुरन्दरः ॥६॥ इत्याश्रुत्य कल्किवाक्यं तेनोल्लासितमानसाः । जगदुः पुण्डरीकाक्षं निकुम्भदुहितुः कथम् ॥ ७॥ मुनय ऊचुः । शृणु विष्णुयशःपुत्र! कुम्भकर्णात्मजात्मजा । कुथोदरीति विख्याता गगनार्द्धसमुत्थिता ॥ ८ ॥ कालकञ्जस्य महिषी विकञ्जजननी च सा । हिमालये शिरः कृत्वा पादौ च निषधाचले । शेते स्तनं पाययन्ती विकञ्जं प्रस्नुतस्तनी ॥९॥ तस्या निश्वासवातेन विवशा वयमागताः । दैवेनैव समानीताः सम्प्राप्तास्त्वत्पदास्पदम् । मुनयो रक्षणीयास्ते रक्षःसु च विपत्सु च ॥ १० ॥ इति तेषां

है ? वह भय देनेवाला यदि देवराज इन्द्र होगा तो भी मैं उसका नाश करदूंगा ॥६॥ वह महर्षि, पुण्डरीकाक्ष कल्कि भगवान्के इस वाक्यको सुनकर चित्तमें प्रसन्न हुए और निकुम्भकी पुत्री राक्षसीकी कथा कहनेलगे ॥ ७ ॥ महर्षि बोले, कि--हे विष्णुयशके पुत्र भगवन् ! अब हम कहते हैं, उसको सुनो, कुम्भकर्णके पुत्र निकुम्भकी एक पुत्री है, वह आधे आकाशपर्यन्त ऊँची है और उसका नाम कुथोदरी है८ वह राक्षसी कालकञ्ज नामक राक्षसकी स्त्री है, उसके पुत्र का नाम विकञ्ज है, वह राक्षसी हिमाचलपर मस्तक और निषधाचलपर चरण रखकर विकञ्जके पास स्तनको रख कर सोतीहुई उसको दूध पिलाती है ॥९॥ हम उसके श्वास की वायुसे वेवश होकर यहाँ आये हैं, प्रारब्ध ही हमें यहां ले आया है और प्रारब्धसे ही हमें आप के चरणकमलोंका दर्शन हुआ है, अब आप इतना अवश्य करिये, कि-विपत्तिकालमें राक्षसोंसे हमारी रक्षा हो ॥१०॥

वचः श्रुत्वा कल्किः परपुरञ्जयः। सेनागणैः परिवृतो जगाम हिमवद्गिरिम् ॥ ११ ॥ उपत्यकां समासाद्य निशामेकां निनाय सः। प्रातर्जिगमिषुः सैन्यैर्ददृशे क्षीरनिम्नगाम् ॥ १२ ॥ शंखेन्दुधवलाकारां फेनिलां पृथ्वीं द्रुतम्। चलन्तीं वीक्ष्य ते सर्वे स्तम्भिता विस्मयान्विताः ॥ १३ ॥ सेनागणगजाश्वादिरथयोधैः समावृतः। कल्किस्तु भगवांस्तत्र ज्ञातार्थोऽपि मुनीश्वरान् ॥ १४ ॥ पप्रच्छ का नदी चेयं कथं दुग्धवहाभवत्। ते कल्केस्तु वचः श्रुत्वा मुनयः प्राहुराद-

---

अधर्मी शत्रुओंको जीतकर उनके नगरामें धर्मको स्थापन करने वाले कल्किभगवान् मुनियोंकी यह वात सुनकर सेनाको साथ लियेहुए हिमालय पर्वतपर गये ॥ ११ ॥ और हिमालयके ऊपरकी भूमिपर जा उन कल्किभगवान्ने एक रात्रि बिताई, फिर प्रातःकालको जिससमय सेनासहित चलनेको हुए उसी समय एक दूधकी नदी देखी ।१२। वह नदी शंख और चन्द्रमाकी समान स्वेतवर्ण तथा बहुत बड़ी थी, उसके चारों ओर झागोंके समूह उठरहे थे, और उस नदीमें दूध बड़े जोरसे बहताहुआ जारहा था, कल्किभगवान्की सेनाके सम्पूर्ण वीर उस दूधकी नदीको देखकर आश्चर्यमें होकर खड़े होगये ॥ १३ ॥ यद्यपि कल्किभगवान्को उसका कारण मालूम था, तो भी उन्होंने हाथी, घोडे, रथ, पैदल आदि सेनाके सम्पूर्ण वीरोंसहित आश्चर्यमें होकर ऋषियोंसे बूझा, कि—इस नदीका क्या नाम है ? किस कारणसे इसमें दूध बहता है ? कल्कि भगवान्की यह वात सुनकर आदर-पूर्वक मुनिगण बोले, कि—हे भगवन् ! इस दुग्धवती नदीकी

रात् ॥ १५ ॥ शृणु कल्के ! पयस्वत्याः प्रभवं हिमवद्गिरौ । समायाता कुथोदर्याः स्तनप्रस्नवनादिह ॥ १६ ॥ घटिकासप्तकैः चान्या पयो यास्यति वेगितम् । हीनसारा तटाकारा भविष्यति महामते ! ॥ १७ ॥ इति श्रुत्वा मुनीनान्तु वचनं सैनिकैः सह । अहो ! किमस्या राक्षस्याः स्तनादेका त्वियं नदी ॥ १८ ॥ एकं स्तनं पाययति विकञ्जं पुत्रमादरात् । न जानेऽस्याः शरीरस्य प्रमाणं कति वा भवेत् ॥ १९ ॥ बलं वास्या निशाचर्या इत्यूचुर्विस्मयान्विताः । कल्किः परात्मा सन्नह्य सेनाभिः सहसा ययौ ॥ २० ॥ मुनिदर्शितमार्गेण यत्रास्ते सा निशाचरी । पुत्रं स्तन पाययन्ती गिरि मूर्ध्नि घनो-

---

उत्पत्ति का वर्णन करते हैं उसको सुनो, उस कुथोदरी राक्षसी के एक स्तनका दूध इस हिमालयपर गिरपडा था, वह नदीरूपसें बहरहा है ॥ १४–१६ ॥ फिर सात घड़ीके अनन्तर एक दुग्धनदी और बहेगी, जिसकी उत्पत्ति कुथोदरीके दूसरे स्तनके दुग्धसे समझो, हे महामते ! तदनन्तर यह नदी जलहीन और तटकी समान होजायगी ॥ १७ ॥ कल्किभगवान् और सेनाके वीर यह बात सुनकर कहनेलगे, कि-इस राक्षसी के दूधसे इतनी बड़ी नदी उत्पन्न होगई ॥ १८ ॥ आदरपूर्वक पुत्र विकञ्जको दूध पिलातेमें जिसके स्तनसे यह नदी उत्पन्न होगई, न जाने उसके शरीरका कितना आकार होगा और उसका बल भी नजाने कितना होगा ! सबने आश्चर्यमें होकर इसप्रकार कहा और परमात्मा कल्किभगवान् शीघ्रतासे तय्यार होकर और सेनाको साथमें लेकर उस राक्षस के पास को चलदिये ॥ २० ॥ जहाँ वह राक्षसी रहती थी मुनिगण

पमा ॥ २१ ॥ श्वासवातातिवातेन दूरक्षिप्तवनद्विपाः । यस्याः कर्णविलावासं प्रसुप्ताः सिंहसंकुलाः ॥ २२ ॥ पुत्रपौत्रपरिवृता गिरिगह्वरविभ्रमाः । केशमूलकुपालम्ब्य च हरिणा शेरते चिरम् ॥ २३ ॥ यूका इव न च व्यग्रा लुब्धाजातङ्कया भृशम् । तामालोक्य गिरेर्मूर्ध्नि गिरिवत् परमाद्भुताम् । कल्किः कमलपत्राक्षः सर्वांस्तानाह सैनिकान् ॥ २४ ॥ भयोद्विग्नान् बुद्धिहीनान् त्यक्तोद्यमपरिच्छदान् ॥ २५ ॥ कल्किरुवाच । गिरिदुर्गे वह्निदुर्गं कृत्वा तिष्ठन्तु मामकाः । गजाश्वरथयोधा ये समायान्तु मया सह ॥ २६ ॥ अहं स्वल्पेन सैन्येन याम्य-

---

उधरका मार्ग बतलाने लगे, उस मार्गसे जाकर कल्किभगवान् ने देखा कि-मेघकी समान राक्षसी पर्वतके शिखर पर बैठीहुई पुत्रको दूध पिलारही है, उसके श्वासकी वायुसे वनके हाथी दूरको लुड़के हुए जारहे हैं, उसकी कर्णरूपी गुफाओंमें सिंह सो रहे हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ मृगोंके झुण्ड पर्वतकी गुफाके भ्रमसे अपने पुत्र पौत्रों सहित चिरकालसे उसके रोमकूपोंमें शयन कररहे हैं ॥ २३ ॥ और वह मृग व्याधसे किञ्चिन्मात्र भी भयभीत न होकर जूं की समान उसके रोमकूपों में लगरहे हैं कमलदलनयन कल्कि भगवान् पर्वतके शिखर पर दूसरे पर्वतकी समान उस राक्षसीको देखकर भयभीत, नष्टबुद्धि और अस्त्र शस्त्र त्यागनेमें उद्यत हुए सेनाके वीरों से कहने लगे ॥ २४-२५ ॥ कल्कि भगवान् बोले, कि-हाथीसवार घुड़सवार तथा रथसवार मेरे साथ आओ और मेरी सेनाके शेप सब योधा इस पर्वतकी गुफामें अपने चारोंओर अग्निका किला बनाकर बैठें ॥ २६ ॥ मैं थोड़ी

स्याः सन्मुखं शनैः। महन्तुं बालसन्दोहैः खड्गशक्तिपरश्वधैः ॥ २७ ॥ इत्युक्त्वास्थाय पश्चात्तान् बाणैस्तां समहनद्बली। सा क्रुद्धोत्थाय सहसा ननर्द परमाद्भुतम् ॥२८॥ तेन नादेन महता वित्रस्ताश्चाभवन् जनाः। निपेतुः सैनिकाः सर्वे मूर्च्छिता धरणीतले ॥ २९ ॥ सा रथांश्च गजांश्चापि विवृतास्या भयानका। जघास श्वासवातैः समानीय कुथोदरी ॥ ३० ॥ सेनागणास्तदुदरं प्रविष्टाः कल्किना सह। यथर्क्षमुखवातेन प्रविशन्ति पिपीलिकाः ॥ ३१ ॥ तद् दृष्ट्वा देवगन्धर्वा हाहाकारं प्रचक्रिरे। तत्रस्था मुनयः शेपुर्जेपुश्चान्ये

सी सेना लेकर बाण, तलवार, शक्ति और फरसेसे प्रहार करके मारडालनेके लिये उस राक्षसीके सामने जाता हूँ २७ कल्कि भगवान्, ऐसा कहकर और साथ लियेहुए सेनाके वीरोंको पीछे रखकर राक्षसीके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे, राक्षसीने भी उठकर क्रोधमें हो अति भयङ्कर गर्जना की ॥ २८ ॥ उस बड़ेभारी शब्दसे सब भयभीत होगये, सेनापति मूर्छित होकर भूमिपर गिरने लगे ॥ २९ ॥ उस समय वह भयानक कुथोदरी राक्षसी मुख फैलाकर रथ, हाथी और घोड़ोंको श्वासवायुसे खेंचकर भक्षण करने लगी ३० जिसप्रकार रीछके मुखके वायुसे खेंचेहुए अनेकों भुनगे उसके मुखमें घुसजाते हैं, तिसीप्रकार कल्कि भगवान् सहित सम्पूर्ण सेनाके योधा उस राक्षसीके मुखमें होकर पेटमें घुस गये ॥ ३१ ॥ ऐसा देखकर देवता और गन्धर्व हाहाकार करने लगे, तहाँ स्थित मुनिगण उस राक्षसीको शाप देने लगे और कोई २ महर्षि कल्कि भगवानके कुशलकी कामना

महर्षयः ।। ३२ ।। निपेतुरन्ये दुःखार्त्ता ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः। रुरुदुः शिष्टयोधा ये जहृषुस्तन्निशाचराः ।। ३३ ।। जगतां कदनं दृष्ट्वा सस्मारात्मानमात्मना । कल्किः कमलपत्राक्षः सुरारातिनिसूदनः ।। ३४ ।। बाणाग्निं चेलचर्माभ्यां कर्मनैर्याणदारुभिः । प्रज्वाल्योदरमध्येन करबालं समाददे ।। ३५ ।। तेन खड्गेन महता दाक्ष्यं निर्भिद्य बन्धुभिः । बलिभिर्भ्रातृभिर्वाहै र्वृतः शस्त्रास्त्रपाणिभिः ।। ३६ ।। बहिर्बभूव सर्वेशः कल्किः कल्कविनाशनः । सहस्राक्षो यथा वृत्रकुक्षिं दम्भोलिनेमिनः ।।३७।। योनिरन्ध्राद्गजरथास्तुरगाश्चाभवन् बहिः । नासिकाकर्णविवरात् केऽपि तस्याः विनिर्गताः ।। ३८ ।।

से मन्त्रोंका जप करनेलगे ।। ३२ ।। और बहुतसे वेदके जाननेवाले ब्राह्मण दुःखित होकर तहाँ ही गिरपड़े, स्वामिभक्त योधा रोनेलगे और राक्षसोंके समूह आनन्द मनाने लगे ।। ३३ ।। देवताओंके शत्रुओंका नाश करनेवाले कल्कि भगवान्ने इसप्रकार जगत्का दुःख देखकर अपने आत्मस्वरूपका स्मरण किया ।। ३४ ।। और अन्धकारमय उसके पटमें ही बाणसे अग्नि उत्पन्न करदी और वस्त्र चर्म तथा रथके काष्ठ आदिसे उस अग्निको प्रज्वलित करके अपनी तलवार उठाई ।। ३५ ।। और जिसप्रकार वृत्रासुरकी कोख को वज्रसे चीरकर इन्द्र निकले थे, तिसी प्रकार सर्वेश्वर पापनाशक वह कल्कि भगवान् अपनी विशाल तलवारसे राक्षसीकी दाहिनी कोखको फाड़कर महाबली, अस्त्रशस्त्रधारी बान्धव और भ्राताओं सहित निकले ।। ३५–३७ ।। कितने ही हाथी, घोड़े और पैदल कुथोदरीकी योनि (मूत्र-

ते निर्गतास्ततस्तस्याः सैनिका रुधिरोक्षिताः । तां विव्यधुर्निक्षिपन्तीं तरसा चरणौ करौ ॥ ३९ ॥ ममार सा भिन्नदेहा भिन्नकुक्षिशिरोधरा । नादयन्ती दिशो द्योः खं चूर्णयन्ती च पर्वतान् ॥ ४० ॥ विकञ्जोऽपि तथा वीक्ष्य मातरं कातरोऽभवत् । स विकञ्जः क्रुधा धावन् सेनामध्ये निरायुधः ॥ ४१ ॥ गजमालाकुलो वक्षो वाजिराजिविभूषणः । महासर्पकुलोष्णीषः केसरीमुद्रिताङ्गुलिः ॥ ४२ ॥ ममर्द कल्किसेनां तां मातुर्व्यसनकर्षितः । स कल्किस्तं ब्राह्ममस्त्रं

स्थान) में होकर वाहर निकल आये ॥ ३८ ॥ रुधिरमें सने हैं शरीर जिनके ऐसे सेनाके योधाओंने उस समय वाहर निकलकर देखा, कि–वह कुथोदरी निशाचरी हाथ पैर फेंक रही है, उस समय वह सेनाके वीर पेटमेंसे निकलते ही उस को वाणोंसे वींधनेलगे ॥ ३९ ॥ तब तो उसका पेट मस्तक आदि सम्पूर्ण शरीर छिन्न भिन्न होगया, तब उस निशाचरोने शब्दसे दशों दिशाओंको प्रतिध्वनित करके और कूद कूदकर पर्वतोंका चूराकर प्राणोंको त्यागदिया ॥ ४० ॥ उसका पुत्र विकञ्ज माताकी ऐसी दशा देखकर दुःखित हुआ और क्रोधमें भरकर अस्त्र शस्त्रोंके विना ही कल्कि भगवान्की सेनामें घुसपड़ा, उसके वक्षःस्थल पर हाथियोंकी माला, सब शरीरमें घोड़ोंके आभूषण, मस्तक पर कितने ही वडे वडे अजगरोंकी पगड़ी, और हाथोंकी अँगुलियोंमें सिंह अँगूठीरूप होरहे थे ॥ ४१–४२ ॥ वह विकञ्ज माताके शोकसे कातर होकर कल्कि भगवानकी सेनाको पीडित करने लगा; कल्कि भगवान्ने भी उस पाँच

रामदत्तं जिघांसया ॥४३॥ धनुषा पञ्चवर्षीयं राक्षसं शस्त्र-मादद । तेनास्त्रेण शिरस्तस्य छित्व भूमावपातयत् ॥ ४४ ॥ रुधिराक्तं धातुचित्रं गिरिशृङ्गमिवाद्भुतम् । सपुत्रां राक्षसीं हत्वा मुनीनां वचनाद्विभुः ॥४५॥ गङ्गातीरे हरिद्वारे निवासं समकल्पयत् । देवानां कुसुमासारैर्मुनिस्तोत्रैः सुपूजितः ४६ निनाय तां निशां तत्र कल्किः परिजनावृतः । प्रातर्ददर्श गङ्गायास्तीरे मुनिगणान् बहून् । तस्याः स्नानव्याजविष्णो-रात्मनो दर्शनाकुलान् ॥ ४७ ॥ हरिद्वारे गङ्गातटनिकट पिण्डारकवने वसन्तं श्रीमन्तं निजगणवृतं तं मुनिगणाः ।

वर्षके निशाचरका नाश करनेको परशुरामजीका दियाहुआ ब्रह्मास्त्र उठाया और उस ब्रह्मास्त्रसे विकञ्जका मस्तक काटडाला ॥ ४३-४४ ॥ मुनियोंके कहनेसे कल्कि भगवान् ने गेरू आदिसे चितेहुए पर्वतके शिखरकी समान अति अद्भुत रुधिरसे सनीहुई, पुत्रसहित निशाचरीका वधकिया४५ उसी समय देवताओंने पुष्पोंकी वर्षा की और मुनिगण स्तुति करने लगे, तदनन्तर कल्कि भगवान्ने तहाँसे चलकर हरिद्वारमें गङ्गाके तटपर जा सेनाको ठहराया ॥ ४६ ॥ विष्णुरूप कल्कि भगवान्ने सेनासहित एक रात्रि तहाँ बिता कर प्रातःकालके समय देखा, कि-मुनिगण गङ्गास्नानके बहानेसे हमारा दर्शन करनेको व्याकुल होरहे हैं ॥ ४७ ॥ हरिद्वारमें गङ्गाके तटपर पास ही सेनासहित बैठेहुए कल्कि भगवान् गङ्गाका दर्शन कररहे थे, उसी समय मुनियोंने

स्तवैः स्तुत्वा स्तुत्वा त्रिधिवद्गुदितैर्जन्हुतनया मपश्यन्तं कल्किं मुनिजनगणा द्रष्टुमगमन् ॥ ४८ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कुथोदरीवधानन्तरं मुनिदर्शनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

सूत उवाच । सुखागतान् मुनीन् दृष्ट्वा कल्किः परमधर्मवित् । पूजयित्वा च विधिवत् सुखासीनानुवाच तान् ॥ १ ॥ कल्किरुवाच । के यूयं सूर्यसंकाशा मम भाग्यादुपस्थिताः । तीर्थाटनोत्सुका लोकत्रयाणामुपकारकाः ॥ २ ॥ वयं लोके पुण्यवन्तो भाग्यवन्तो यशस्विनः । यतः कृपाकटाक्षेण युष्माभिरवलोकिताः ॥ ३ ॥ ततस्ते वामदेवोऽत्रिर्वशिष्ठो गालवो भृगुः । पराशरो नारदोऽश्वत्थामा रामः कृपस्त्रितः ॥ ४ ॥

आकर दर्शन किया और वारम्वार वेदकी श्रुतिरूप स्तुति के वाक्योंसे उन कल्कि भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ ४८ ॥ दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

सूतजी बोले, कि—परमधर्मात्मा कल्कि भगवान् मुनियोंको सुखपूर्वक आकर वैठे हुए देखकर, उनका पूजन करके कहने लगे ॥ १ ॥ कल्कि भगवान् बोले, कि--साक्षात् सूर्यकी समान तेजस्वी, तीर्थयात्रा करनेमें उत्कण्ठित और त्रिलोकीका हित करनेवाले आप कौन हैं ? मेरे वड़े भाग्य हैं जो आप यहाँ आकर प्राप्त हुए ॥ २ ॥ आज हम इस लोकमें पुण्यवान्, भाग्यवान् और यशस्वी हुए, जो हमें आप अपने कृपाकटाक्ष से देखरहे हैं ॥ ३ ॥ इस प्रकार कल्कि भगवान्के कहनेके अनन्तर वामदेव, अत्रि, वशिष्ठ, गालव, भृगु, पराशर, नारद अश्वत्थामा, कृपाचार्य, त्रित, दुर्वासा, देवल, कण्व, वेद,

दुर्वासा देवलः कण्वो वेदप्रमितिरङ्गिराः। एते चान्ये च बहवो मुनयः संशितव्रताः ॥ ५ ॥ कृत्वाग्रे मरुदेवापी चन्द्रसूर्य्यकुलोद्भवौ। राजानौ तौ महावीर्य्यौ तपस्याभिरतौ चिरम् ६ ऊचुः प्रहृष्टमनसः कल्किं कल्कविनाशनम्। महोदधेस्तीरगतं विष्णुं सुरगणा यथा ॥ ७ ॥ मुनय ऊचुः। जयाशेषजगन्नाथ! विदिताखिलमानस!। सृष्टिस्थितिलयाध्यक्ष! परमात्मन्! प्रसीद नः ॥ ८ ॥ कालकर्म्मगुणावास! प्रसारितनिजक्रिय!। ब्रह्मादिनुतपादाब्ज! पद्मानाथ! प्रसीद

प्रमिति और अङ्गिरा, यह सब मुनि तथा और बहुतसे परमतपस्वी ऋषिगण, चन्द्र और सूर्य्यवंशमें उत्पन्न होनेवाले महावीर और तपस्या करनेमें तत्पर महाराज मरु और देवापिको आगे करके, पापनाशक कल्कि भगवान्से कहने लगे; जिस प्रकार प्रसन्नहृदय देवताओंने महासागर (क्षीरसमुद्र)के तटपर विष्णु भगवान्की प्रार्थना की थी तिसी प्रकार यह सब ऋषि कल्कि भगवान्के पास अपना अभिप्राय कहने लगे ४-७ मुनि बोले, कि-हे जगन्नाथ! आपने सब को जीता है, आप सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तःकरणके वर्त्ताव को जानते हो. तुम ही इस अनन्त विश्वकी रचना, पालन और प्रलय करते हो; हे भगवन्! इस समय आप हमारे ऊपर प्रसन्न हूजिये ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मीपते! तुम कालरूप हो, जगत्के गुण कर्म तुमसे ही विद्यमान हैं, ब्रह्मादि देवता भी आपके ही चरणकमलोंकी स्तुति करते हैं, इस समय आप हमारे ऊपर प्रसन्न हूजिये ॥९॥ त्रिलोकीनाथ कल्कि भगवान् इस प्रकार मुनियोंका कहना सुनकर कहने लगे,

नः ॥ ९ ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा कल्किः प्राह जगत्पतिः । काविमौ भवतामग्रे महासत्त्वौ तपस्विनौ ॥ १० ॥ कथमत्रागतौ स्तुत्वा गङ्गां मुदितमानसौ । का वा स्तुतिस्तु जान्हव्या युवयोर्नामनी च के ॥११॥ तयोर्मरुः प्रमुदितः कृताञ्जलिपुटः कृती । आदावुवाच विनयी निजवंशानुकीर्त्तनम्॥१२॥ मरुरुवाच । सर्वं वेत्सि परात्मापि अन्तर्यामिन् ! हृदि स्थितः तवाज्ञया सर्वमेतत् कथयामि शृणु प्रभो ! ॥ १३ ॥ तव नाभेरभूद् ब्रह्मा मरीचिस्तत्सुतोऽभवत् । ततो मनुस्तत्सुतोऽभूदिक्ष्वाकुः सत्यविक्रमः ॥१४॥ युवनाश्व इति ख्यातो मान्धाता

कि–हे मुनियो ! तुम्हारे आगे जो यह महाबली परमपराक्रमी तथा तपस्या करनेमें तत्पर दो पुरुष ये कौन हैं,?॥११॥ ये गङ्गाकी स्तुति कर प्रसन्नचित्त होकर किस कारण आये हैं? तदनन्तर कल्कि भगवान् उन दोनोंकी ओर लक्ष्य करके कहने लगे, कि–तुमने किस इच्छासे गङ्गाकी स्तुति की है ? तुम कौन हो ? और तुम्हारे नाम क्या हैं ? यह सब मुझसे कहो ॥ ११ ॥ इसप्रकार कल्कि भगवान्के कहनेपर उन दोनोंमेंसे सब कार्य करनेमें कुशल 'मरु' प्रसन्नचित्त होकर खड़े होगए और हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक अपने वंशका वर्णन करने लगे ॥ १२ ॥ मरु बोले कि–हे भगवन् आप सबके हृदयमें स्थित अन्तर्यामीरूप हो, हे प्रभो ! आप सब जानते हो, आपकी आज्ञासे सब वृत्तान्त कहता हूँ सो श्रवण करिये॥ १३ ॥ आपकी नाभिसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ब्रह्माजीके पुत्र मरीचि हुए, मरीचिके मनु, मनुजीसे सत्यपराक्रमी राजा इक्ष्वाकु उत्पन्न हुए ॥ १४ ॥ इक्ष्वाकु

न्सुतोऽभवत् । पुरुकुत्सस्तत्सुतोऽभूदनरण्यो महामतिः ।१५। त्रसद्दस्युः पिता तस्मात् हर्य्यश्वस्त्यरुणस्ततः । त्रिशंकुस्तत्सुतो धीमान् हरिश्चन्द्रः प्रतापवान् ॥ १६ ॥ हरितस्तत्सुतस्तस्मात् भरुकस्तत्सुतो वृकः । तत्सुतः सगरस्तस्मादसमञ्जास्ततोंऽशुमान् ॥ १७ ॥ ततो दिलीपस्तत्पुत्रो भगीरथ इति स्मृतः । येनानीता जान्हवीयं ख्याता भागीरथी भुवि । स्तुता नुता पूजितेयं तव पादसमुद्भवा ॥ १८ ॥ भगीरथात् सुतस्तस्मान्नाभस्तस्मादभूद्द वली । सिन्धुद्वीपसुतस्तस्मात् अयुतायुस्ततोऽभवत् ॥ १९ ॥ ऋतुपर्णस्तत्सुतोऽभूत् सुदासस्तत्सुतोऽभवत् । सौदासस्तत्सुतो धीमानश्मकस्तत्सुतो मतः ॥२०॥

के पुत्र युवनाश्व हुए, युवनाश्वके पुत्र मान्धाता हुए, मान्धाताके पुत्र पुरुकुत्स हुए; पुरुकुत्ससे परमबुद्धिमान् अनरण्य उत्पन्न हुए ॥ १५ ॥ अनरण्यके पुत्र परमबुद्धिमान् त्रिशंकु हुए, त्रिशंकुसे परमप्रतापी राजा हरिश्चन्द्र हुए ॥ १६ ॥ उनका पुत्र हरित हुआ, हरितका पुत्र भरुत भरुतका पुत्र वृक, वृकका पुत्र असमञ्जस, असमञ्जसके अँशुमान् उत्पन्न हुए ॥ १७ ॥ अंशुमान्का पुत्र दिलीप, दिलीपका पुत्र भगीरथ नामसे प्रसिद्ध हुआ; उन भगीरथ की लाईहुई होनेके कारण यह गङ्गा भागीरथी नामसे प्रसिद्ध है, आपके चरणसे उत्पन्न होनेके कारण यह लोकमें स्तुति प्रणाम और पूजनको प्राप्त हुई है ॥ १८ ॥ भगीरथका पुत्र नाभ हुआ, नाभका पुत्र महाबली सिन्धुद्वीप हुआ, सिन्धुद्वीपसे अयुतायु हुआ ॥ १९ ॥ अयुतायुका पुत्र ऋतुपर्ण हुआ, ऋतुपर्णका सुदास, सुदासका सौदास, सौदासका

मूलकात् स दशरथस्तस्मादेड़विड़स्ततः। राजा विश्वसहस्तस्मात् खट्वाङ्गो दीर्घबाहुकः ॥ २१ ॥ ततो रघुरजस्तस्मात् सुतो दशरथः कृती। तस्माद्रामो हरिः साक्षादाविर्भूतो जगत्पतिः ॥ २२ ॥ रामावतारमाकर्ण्य कल्किः परमहर्षितः। मरुं प्राह विस्तरेण श्रीरामचरितं वद ॥२३॥ मरुरुवाच। सीतापतेः कर्म्म वक्तुं कः समर्थोऽस्ति भूतले। शेषः सहस्रवदनैरपि लालायितो भवेत् ॥ २४ ॥ तथापि शेमुषी मेऽस्ति वर्णयामि तवाज्ञया। रामस्य चरितं पुण्यं पापतापप्रमोचनम् २५ अजादिविबुधार्थितोऽजनि चतुर्भिरंशैः कुले रवेरजसुताद्गां

परम बुद्धिमान् अश्मक पुत्र हुआ ॥ २० ॥ अश्मकका पुत्र मूलक, मूलकका पुत्र दशरथ, दशरथसे एड़विड़, एड़विड़का पुत्र विश्वसह, विश्वसहका खट्वाङ्ग, खट्वाङ्गका पुत्र दीर्घबाहु हुआ ॥ २१ ॥ दीर्घबाहुका पुत्र रघु, रघुसे अज, अजका दशरथ, और दशरथसे साक्षात् जगत्पति श्रीहरि रामरूपसे प्रकट हुए ॥ २२ ॥ कल्कि भगवान् रामावतार की कथा सुनकर बड़े आनन्दित हुए, और मरुसे कहनेलगे कि-श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र विस्तारपूर्वक कहिये ॥ २३ ॥ तब मरु बोले, कि-हे भगवन ! सीतापति श्रीरामचन्द्रजीका सम्पूर्ण चरित्र कोई भी नहीं कहसकता और तो क्या शेषजी भी अपने सहस्रमुखोंसे श्रीरामचन्द्रजीका सम्पूर्ण चरित्र वर्णन करनेका साहस नहीं करसकते हैं ॥ २४ ॥ तथापि आपकी आज्ञासे अपनी बुद्धिके अनुसार सम्पूर्ण पाप और तापोंको दूर करनेवाले परमपवित्र श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रको कहता हूँ ॥ २५ ॥ पहिले एक समय ब्रह्मादि देवताओंकी

जनति यातुधानक्षयः । शिशुः कुशिकजाध्वरक्षयकरक्षयो यो बलाद् बली ललितकन्धरो जयति जानकीवल्लभः ॥२६॥ मुनेरनु सहानुजो निखिलशस्त्रविद्यातिगो ययावतिवनप्रभो जनकराजराजत्सभाम् । विधाय जनमोहनद्युतिमतीव कामद्रुहः प्रचण्डकरचण्डिमा भवनभञ्जने जन्मनः ॥ २७ ॥ तमप्रतिमतेजसं दशरथात्मजं सानुजं मुनेरनु यथाविधेः शशिवदादिदेवं परम् । निरीक्ष्य जनको मुदा क्षितिसुतापतिं सम्मतं निजोचितपणक्षमं मनसि भर्त्सयन्नाययौ ॥ २८ ॥ स भूप-

---

प्रार्थनासे सूर्य्यवंशमें राजा दशरथके चार पुत्ररूप होकर राक्षसोंका नाश करनेकी इच्छासे जानकीपति श्रीरामचन्द्रजी ने अवतार धारण किया जिन्होंने बालक अवस्थामें विश्वामित्र जीके यज्ञमें विघ्न करनेवाले राक्षसोंका नाश करके यश पाया ॥२६॥ जिनके प्रभावसे कामनापूर्ण जगत्में पुनर्जन्म नहीं होता अर्थात् मुक्ति होजाती है, जो महाबली और परमकान्तिमान् हैं, वह पूर्णरीतिसे सम्पूर्ण शस्त्रविद्याको जाननेवाले श्रीरामचन्द्र प्राणियोंको मोहित करनेवाले रूप को धारण करके लक्ष्मणजीके सहित विश्वामित्रजीके साथ राजा जनककी सभामें गये ॥ २७ ॥ जिसप्रकार ब्रह्माजी के पीछे चन्द्रमा बैठे हों तिसीप्रकार वह परमतेजस्वी लक्ष्मणजीं सहित दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी विश्वामित्र मुनिके पीछे उचित रीतिसे बैठे, तिन परमवस्तु साक्षात् आदिदेव श्रीरामचन्द्रजीको देखकर राजा जनकने जानकीके योग्य वर समझा, और अपने करेहुए प्रणको (जो धनुष तोड़ेगा वही जानकी पावेगा) अनुचित जानकर मन ही मनमें अपने

परिपूजितो जनकजेक्षितैरर्चितः कराब्जकठिनं धनुः करसरो-रुहे संहितम् । विभज्य बलवद् दृढं जय रघूद्वहेत्युच्चकैर्ध्वनं त्रिजगतीगतं परिविधाय रामो बभौ ॥२६॥ ततो जनकभूपति र्दशरथात्मजेभ्यो ददौ चतस्र उपतीर्सुदा वरचतुर्भ्य उद्वाहने। स्वलंकृतानिजात्मजाः पथि ततो बलं भार्गवश्चकार उररी निजं रघुपतौ महोग्रं त्यजन् ॥ ३० ॥ ततः स्वपुरमागतो दश-रथस्तु सीतापतिं नृपं सचिवसंयुतो निजविचित्रसिंहासने । विधातुममलप्रभं परिजनैः क्रियाकारिभिः समुद्यतमतिं तदा द्रुतमवारयत् कैकेयी ॥ ३१ ॥ ततो गुरुनिदेशतो जनकराज-

को धिक्कार दिया और श्रीरामचन्द्रजीके समीप आये २८ फिर श्रीरामचन्द्रजीने राजा जनकके कियेहुए आदरसे और श्रीजानकीजीके कटाक्षोंसे सत्कार पाकर उस अत्यन्त कठोर धनुषको हाथमें लेकर दो टूकड़े करदिये, उस समय "श्रीराम-चन्द्रजीकी जय" यह ध्वनि ऊँचे स्वरसे त्रिलोकीमें गूँजने लगी. उससे श्रीरामचन्द्रजीकी बड़ी शोभा हुई ॥ २६ ॥ तदनंतर राजा जनकने श्रीरामचन्द्रजी आदि चारों भ्राताओं को विवाहकी विधिसे अलंकृत और रमणीय चार कन्यायें दीं, फिर मार्गमें परशुरामजीने रघुपति श्रीरामचन्द्र जीको अपना उग्र पराक्रम दिखाया ॥ ३० ॥ तदनन्तर राजा दशरथने अपनी अयोध्यानगरीमें आकर मन्त्रियोंके साथ सम्मति करके विमलकान्ति सीतापति श्रीरामचन्द्रजी को राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त करने की इच्छा की; उस समय कैकेयीने शीघ्रही आकर कुटुम्बी आदि बहुतसे जन समूहमें परम उद्योगी राजा दशरथको श्रीरामचन्द्रजीको राज्य

कन्यायुतः प्रयाणमकरोत् सुधीर्यदनुगः सुमित्रासुतः। वनं निजगणं त्यजन् गुहगृहे वसन्नादारात् विसृज्य नृपलाञ्छनं रघुपतिर्जटाचीरभृत् ॥ ३२ ॥ प्रियानुजयुतस्ततो मुनिमतो वने पूजितः स पंचवटिकाश्रमे भरतमातुरं सङ्गतम् । निवार्य्य मरणं पितुः समवधार्य्य दुःखातुरस्तपोवनगतोऽवसद्रघुपतिस्ततस्ताः समाः ॥ ३३ ॥ दशाननसहोदरां विषमवाणवेधातुरां समीक्ष्य वररूपिणीं प्रहसतीं सतीं सुन्दरीम् । निजाश्रयमभीप्सतीं जनकजापतिर्लक्ष्मणात् करालकरवालतः समकरोद्विरूपां ततः ॥ ३४ ॥ समाप्य पथि दानवं खरशरैः शनैर्नाशयन् चतुर्दशसहस्रकं समहनत् खरं सानुगम् । दशानन-

---

देनेका निषेध किया ॥ ३१ ॥ फिर पिताजीकी आज्ञासे सीता और लक्ष्मणजी सहित श्रीरामचन्द्रजी वनको गये, फिर पीछे२ आनेवाले पुरवासियोंको विदा करके गुहके यहाँ पहुंचे, तहाँ सम्पूर्ण राजचिन्हींको त्यागकर जटा वल्कल धारण किये ॥ ३२॥ तदनन्तर वनमें स्त्री और छोटे भ्राता सहित मुनियोंकी समान आचार धारण करके पूजित हुए और पञ्चवटीके आश्रममें आए हुए दुःखित भरतजीको लौटा कर और पिताका मरण सुनकर शेष वर्ष तपोवनमें बिताए ॥ ३३ ॥ फिर कामदेवके वाणसे पीड़ित, सुवेषा, सुन्दरी, हास्ययुक्त रावणकी बहिन शूर्पनखाको अपनी अभिलाषिणी देखकर श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीको इशारा किया, तब लक्ष्मणजीने तलवारसे नाक कान काटकर उस राक्षसीको विरूप करदिया ॥ ३४ ॥ मार्गमें दानवको नष्ट करके चौदह हजार सेनाके स्वामी रावणके वशीभूत खर-

वशानुगं कनकचारुचंचन्मृगं प्रियःप्रियकरो वने समवधीद्व बलाद्राक्षसम् ॥ ३५ ॥ ततो दशमुखस्त्वरंस्तमभिवीक्ष्य रामं रुषा व्रजन्तमनुलक्ष्मणं जनकजां जहाराश्रमे। ततो रघुपतिः प्रियां दलकुटीरसंस्थापितां न वीक्ष्य तु विमूर्च्छितो बहु विलप्य सीतेति ताम् ॥ ३६ ॥ वने निजगणाश्रमे नगतले जले पल्वले विचित्य पतितं खगं पथि ददर्श सौमित्रिणा। जटायुवचनात् ततो दशमुखाहृतां जानकीं विविच्य कृतवान् मृते पितरि वन्हिकृत्यं प्रभुः ॥ ३७ ॥ प्रियाविरहकातरोऽनुज-पुरःसरो राघवो धनुर्धरधुरन्धरो हरिबलं नवालापिनम्।

दूषणका सेना सहित संहार किया, फिर सीताकी इच्छासे सुवर्णके वने चञ्चल मृगरूपी राक्षसका वध किया ॥३५॥ तदनन्तर मार्गमें श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणको जाताहुआ देखकर रावण शीघ्रही आश्रममें आया और सीताको हर कर लेगया, श्रीरामचन्द्रजी पर्णकुटीमें सीताको न देखकर हा सीते ! हा सीते ! इसप्रकार वारम्वार विलाप करतेहुए मूर्छित होगये ॥ ३६ ॥ फिर ऋषियोंके आश्रम, पर्वतोंकी गुहा–जल–तथा खाई आदि सव स्थानोंमें सीताको ढूंढ़ते२ मार्गमें मृतप्राय (जिसके प्राण निकलनेही को थे) जटायुको देखा, और उससे यह वात सुनी, कि–सीताको रावण हर कर लेगया है, तदनन्तर उस जटायुका मरण होने पर उसकी सम्पूर्ण और्ध्वदैहिक क्रिया (प्रेतकर्म) पिताकी समान की ॥ ३७ ॥ तदनन्तर सीताके वियोगसे कातर, धनुषधारी, रघुकुलशिरोमणि, छोटेभ्राता लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रजीने जिनको पहिले नहीं देखा था ऐसे वानरों

ददर्श ऋषभाचलाद्रविजवालिराजानुजप्रियं पवननन्दनं परिणतं हितं प्रेषितम् ॥ ३८ ॥ ततस्तदुदितं मतं पवनपुत्रसुग्रीवयोस्तृणाधिपतिभेदनं ।निजनृपासनस्थापितम् । विविच्य व्यवसायकैर्निजसखाप्रियं वालिनं निहत्य हरिभूपतिं निजसखं स रामोकरोत् ॥ ३९ ॥ अथोत्तरमिमां हरिर्जनकजां समन्वेषयन् जटायुसहजोदितैर्जलनिधिं तरन् वायुजः । दशाननपुरं विशञ्जनकजां समानन्दयन्नशोकवनिकाश्रमे रघुपतिं पुनः प्रायगौ ॥ ४० ॥ ततो हनुमता बलादमितरक्षसां नाशनं ज्वलज्ज्वलनसंकुलज्वलितदग्धलंकापुरम् । विविच्य रघुनायको जलनिधिं रुषा शोषयन् बबन्ध हरियूथपैः परिवृतो नगैरीश्वरः ॥ बभंज पुरपत्तनं विविधसर्गदुर्गत्तमं निशा-

की सेनाको देखा, और सूर्यके पुत्र वालिके छोटे भ्राता सुग्रीवके मन्त्री हनुमान्जीको देखा ॥ ३८ ॥ तदनन्तर सुग्रीव और पवनकुमार हनुमानजीकी प्रार्थनासे सात तालके वृक्षोंको वेधा और बाणसे वालिका वध करके तथा सुग्रीवके साथ मित्रता करके उस सुग्रीवको वानरोंका राजा बनाया ॥३९॥ तदनन्तर पवनकुमार हनुमान्जी जानकीजीको ढूंढ़ते २ जटायुके कहने पर समुद्रके पार गए, और लङ्कापुरीमें जाकर अशोकवाटिकामें सीताजासे सम्भाषण करके उनके चित्तको प्रसन्न किया फिर रामचन्द्रजीके पासको लौट आये ॥ ४० ॥ हनुमान्जीने अपने बलसे तहाँ अनेकों राक्षसोंका वध करके लङ्काको भस्म करदिया, यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हुये और क्रोधके कारण पर्वतोंसे समुद्रका पुल बाँधा तथा वानरोंसहित लङ्कापुरीमें जापहुँचे

चरपतेः क्रुधा रघुपतिः कृती सद्गतिः ॥ ४१ ॥ ततोऽनुज-युतो युधि प्रबलचण्डकोदण्डभृत् शरैः खरतरैः क्रुधा गज-रथाश्वहंसाकुले । करालकरवालतः प्रबलकालजिह्वाग्रतो निहत्य वरराक्षसान् नरपतिर्बभौ सानुगः॥ ४२ ॥ ततोऽति-बलवानरैर्गिरिमहीरुहोद्यत्करैः करालतरताड़नैर्जनकजारुषा नाशितान्। निजघ्नुरमरार्दनानतिबलान् दशास्यानुगान् नला-ङ्गदहरीश्वराऽऽशुगसुतर्क्षराजादयः ॥४३॥ ततोऽतिबललक्ष्मण-स्त्रिदशनाथशत्रुं रणे जघान घनघोषणानुगगणैरसृक्पासनैः प्रहस्तविकटादिकानपि निशाचरान् सङ्गतान्। निकुम्भमक-

---

तहाँ राक्षसपति रावणका किला परकोटा आदि सब तोड़ डाला ॥ ४१ ॥ तदनन्तर युद्ध करनेमें प्रबल अतिकराल धनुषधारी लक्ष्मणसहित राजा रामचन्द्रजी हाथी, घोड़े, रथ आदि पर चढेहुए श्रेष्ठ राक्षसोंका प्रबल कालकी जिह्वाके अग्रभागकी समान कराल तलवारसे संहार करके शोभा पाने लगे॥ ४२॥ तदनन्तर नल, अङ्गद, वानरराज सुग्रीव. पवन-कुमार हनुमान् और अन्य महाबली वानरोंने तथा जाम्बवन्त वृक्षोंको फेंककर पर्वतोंको फेंककर तथा अनेकों प्रकारकेभयङ्कर प्रहार करके, जानकीजीके क्रोधसे पहिले ही मृतककी समान हुए, महापराक्रमी, देवताओंके वैरी, राक्षसोंका संहार किया ॥४३॥ फिर महाबली लक्ष्मणजीने, महाघोर गर्जना करनेवाले और रुधिर पीनेवाले अनुचरोंसहित इन्द्रजीत मेघनादको यमलोकमें पहुंचाया, फिर उन लक्ष्मणजीने ही क्रोधमें होकर, प्रहस्त, निकुम्भ, मकराक्ष और विकट आदि

राक्षसान् निशितखड्गपातैः क्रुधा ॥ ४४ ॥ ततो दशमुखो रणे गजरथाश्वपत्तीश्वरैरलंघ्यगणकोटिभिः परिवृतो युयोधायुधैः । कपीश्वरचमूपतेः पतिमनन्तदिव्यायुधं रघूद्वहमनिन्दितं सपदि सङ्गतो दुर्जयः ॥ ४५ ॥ दशाननमरिं ततो विधिवरस्मयावर्द्धितं महाबलपराक्रमं गिरिमिवाचलं संयुगे । जघान रघुनायको निशितसायकैरुद्धतं निशाचरचमूपतिं प्रबलकुम्भकर्णं ततः ॥४६॥ तयोः खरतरैः शरैर्गगनमच्छमाच्छादितं बभौ घनघटासमं मुखरमत्तडिद्वह्निभिः । धनुर्गुणमहाशनिध्वनिभिरावृतं भूतलं भयङ्करनिरन्तरं रघुपतेश्च

राक्षसोंको भी तीक्ष्ण तलवारसे काटदिया ॥ ४४ ॥ तदनन्तर अतिकठिनसे जीतने योग्य रावण, करोड़ों हाथी सवार रथके सवार घोड़ोंके सवार और पैदलोंकी सेनाको लेकर रणभूमिमें, वानरसेनाके स्वामी सुग्रीवके प्रभु असीम दिव्य अस्त्रोंको धारण करनेवाले, परमयशस्वी, श्री रामचन्द्रजीके समीप आकर अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा करता हुआ युद्ध करनेलगा ॥ ४५ ॥ उस समय रघुवीर श्रीरामचन्द्रजीने ब्रह्माजीसे वरदान पानेके कारण वृद्धिको प्राप्तहुए, महाबली परमपराक्रमी, रणभूमिसे पर्वतकी समान चलायमान न होने वाले, उद्धत, शत्रु-राक्षसोंकी सेनाके स्वामी रावण और महाबली कुम्भकर्णको तीक्ष्ण बाणोंसे घायल करदिया ४६ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी और रावणने परस्पर अतितीखे बाण छोड़कर आकाशमण्डलको छादिया, उस समय ऐसा प्रतीत होता था, कि-मानों आकाशमण्डल मेघमण्डलकी घनी घटाओंसे छारहा है, बाणोंमें परस्पर टक्कर लगनेसे शब्द

रक्षःपतेः ॥ ४७ ॥ ततो धरणिजारुषा विविधरामबाणौ-जसा, पपात भुवि रावणस्त्रिदशनाथविद्रावणः । ततोऽतिकु-तुकी हरिर्ज्वलनरक्षितां जानकीं समर्प्य रघुपुङ्गवे निजपुरीं ययौ हर्षितः ॥ ४८ ॥ पुरन्दरकथादरः सपदि तत्र रक्षः-पतिं विभीषणमभीषणं समकरोत्ततो राघवः ॥ ४९ ॥ हरी-श्वरगणावृतोऽवनिसुतायुतः सानुजो, रथे शिवसखेरिते सुवि-

युक्त अग्निके कण निकलनेपर शब्दायमान बिजलीके समान शोभा हुई, वज्रके शब्दकी समान प्रत्यञ्चा (रोदे) के शब्द से भूतल भरगया, उस समय रणभूमिने अतिभयङ्कर रूप धारण किया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर देवराज इन्द्रको भी भय-भीत करनेवाला रावण, सीताके कोप और रामचन्द्रजीके अस्त्रोंके तेजसे प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिरपड़ा, उसी समय हनुमान्जी अतिआनन्दित होकर अग्निमें शुद्ध हुई जानकीजीको श्रीरामचन्द्रजीके पास लेआये, तब श्रीराम-चन्द्रजी अपनी अयोध्यापुरीको लौटपड़े ॥ ४८ ॥ तदन-न्तर इन्द्रदेवके कहनेके अनुसार श्रीरामचन्द्रजीने उसी समय शांतरूप विभीषणको राक्षसोंके राज्यपर अभिषिक्त करदिया फिर श्रीरामचन्द्रजी वानरराजसुग्रीव आदि सम्पूर्ण वानरों-सहित और सीता तथा लक्ष्मणजीको साथमें लेकर पवनसे चलाएहुए, अतिनिर्मल, शोभायमान,पुष्पक विमान पर चढ़-कर अयोध्यापुरीको चलदिये, चलते समय मार्गमें वनको आनेके समयके, अपने मुनियोंकेसे वेषका और गुहके साथ मित्रभावका स्मरण करने लगे, फिर मुनियोंने आकर उन श्रीरामचन्द्रजी का पूजन किया ॥ ४९ ॥ फिर उन

मले लसत्पुष्पके । मुनीश्वरगणार्च्चितो रघुपतिस्त्वयोध्यां ययौ विविच्य मुनिलाञ्छनं गुहगृहेऽतिसख्यं स्मरन् ॥ ५० ॥ ततो निजगणावृतो भरतमातुरं सान्त्वयन्, स्वमातृगणवाक्यतः पितृनिजासने भूपतिः । वशिष्ठमुनिपुङ्गवैः कृतनिजाभिषेको विभुः, समस्तजनपालकः सुरपतिर्यथा संबभौ ॥ ५१ ॥ नरा वहुधनाकरा द्विजवरास्तपस्तत्पराः,स्वधर्मकृतनिश्चया:स्वजन-सङ्गता निर्भयाः । घनाः सुवहुवर्षिणो वसुमति सदा हर्षिता, भवत्यतिवले नृपे रघुपतावभूत् सज्जगत् ॥ ५२ ॥ गतायुत-

रामचन्द्रजीने भरतजीको अनुचरोंसहित मनमें दुःखित और कातर समझकर शांत किया फिर माताओंकी आज्ञा के अनुसार पिताके सिंहासन पर बैठे और वशिष्ठ आदि ऋषियोंने उनका अभिषेक किया, तदनन्तर वह श्रीरामचन्द्र जी देवराज इन्द्रकी समान सम्पूर्ण लोकके स्वामी होकर शोभा पानेलगे ॥ ५० ॥ इसप्रकार महावली, पराक्रमी रघुवीर श्रीरामचंद्रजीने राज्यका पालन करनेका प्रारम्भ किया उनके राज्य करते समय सम्पूर्ण प्रजा ऐश्वर्यवाले हुई, ब्राह्मण निरन्तर तपस्या करने लगे सब ही आपसमें मिलकर निर्भयचित्तसे अपने २ धर्मका अनुष्ठान करनेलगे, समयके अनुसार श्रेष्ठवर्षा होनेके कारण सम्पूर्ण जगत् सन्मार्ग पर चलनेलगा ॥ ५१ ॥ इस प्रकार रघुकुलशिरोमणि श्रीराम-चन्द्रजीने दशहजार वर्ष पर्यन्त अपने श्रेष्ठगुणसे प्रजाको प्रसन्न किया और सबप्रकारसे मनोरथ पूर्ण करके उन श्रीरामचन्द्रजीने अपनी प्रिया जानकीका भी मन प्रसन्न रक्खा और महर्षियोंको वहुतसा धन दक्षिणामें देकर अनेक यज्ञ

समाः प्रियैर्निजगुणैः प्रजा रञ्जयन्, निजां रघुपतिः प्रियां निजमनोभवैर्मोहयन् । मुनीन्द्रगणसंयुतोऽप्ययजदादिदेवान्मखैर्धनैर्विपुलदक्षिणैरतुलवाजिमेधैस्त्रिभिः ॥ ५३ ॥ ततः किमपि कारणं मनसि भावयन् भूपतिर्जहौ जनकजां वने रघुवरस्तदा निर्घृणः । ततो निजमतं स्मरन् समनयत् प्रचेतः-सुतो, निजाश्रममुदारधी रघुपतेः प्रियां दुःखिताम् ॥ ५४ ॥ ततः कुशलवौ सुतौ, प्रसुषुवे धरित्रीसुता, महाबलपराक्रमौ रघुपतेर्यशोगायनौ । स तामपि सुतान्वितां मुनिवरस्तु रामान्तिके, समर्पयदनिन्दितां सुरवरैः सदा वन्दिताम् ॥ ५५ ॥

किये तथा तीन अश्वमेध यज्ञ करके देवताओंको तृप्त किया५२ तदनन्तर रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीने निर्दय होकर अन्तःकरणमें किसी कारणको विचारकर जानकीको वनमें त्यागदिया, फिर श्रेष्ठ कर्म करनेवाले वाल्मीकिजी अपनी रचीहुई रामायणका स्मरण करके, दुःखको प्राप्त हुई श्रीरामचन्द्रजीकी प्रिया जानकीको अपनेआश्रममें लेगये ५३ फिर भूमिपुत्री सीताने महाबली परमपराक्रमी लव और कुश नामक दो पुत्र उत्पन्न करे, इन दोनोंने श्रीरामचन्द्रजी के पास जाकर उनके यशका गान करा मुनिवर वाल्मीकिजी ने इन दोनों पुत्रोंके साथ निर्दोष, देवताओंसे प्रणाम करीहुई, सीता, श्रीरामचन्द्रजीको समर्पण करी५४फिर श्रीरामचन्द्रजी, सामने रोदन करती हुई पुत्रोंसहित जानकीसे कहने लगे,कि-तुम अपनी शुद्धिके लिए सबके सामने अग्निमें फिर प्रवेश करो, सीताने श्रीरामचन्द्रजीका यह वाक्य सुनकर उनके चरणकमलों में प्रणाम किया, और अपनी माता पृथ्वीके साथ मणिसे

ततो रघुपतिस्तु तां सुतयुतां रुदन्तीं पुरो, जगाद दहने पुनः प्रविश शोधनायात्मनः । इतीरितमवेक्ष्य सा रघुपतेः पदाब्जे नता विवेश जननीयुता मणिगणोज्ज्वलं भूतलम् ॥ ५६ ॥ निरीक्ष्य रघुनायको जनकजाप्रयाणं स्मरन्, वशिष्ठगुरुयोगतोऽनुजयुतोऽगमत् स्वं पदम् । पुरःस्थितजनैः स्वकैः पशुभिरीश्वरः संस्पृशन् मुदा सरयुजीवनं रथवरैः परीतो विभुः॥५७॥ ये शृण्वन्ति रघूद्वहस्य चरितं कर्णामृतं सादरात्, संसारार्णवशोषणञ्च पठतामामोददं मोक्षदम् । रोगाणामिह शान्तये धनजनस्वर्गादिसम्पत्तये, वंशानामपि वृद्धये प्रभवति श्रीशः परेशः प्रभुः ॥ ५८ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे सूर्यवंशानुवर्णने श्रीरामचन्द्रचरितं नाम तृतीयोऽध्यायः ।

प्रकाशवान् होती हुई रसातलमें प्रवेश करगई ॥ ५५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार जानकीका अन्तर्ध्यान होना देख-इस वृत्तान्तको स्मरण करते हुए गुरु वशिष्ठ और सेवकबर्ग तथा पुरवासियोंसहित और पशुओंसहित प्रसन्नचित्तसे सरयू के जलका आचमन करके दिव्य विमानपर बैठ,वैकुण्ठधामको चलेगए ५६ जो पुरुष, कानोंको अमृतकी समान प्रिय इस श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रको श्रवण करेंगे लक्ष्मीपति परमेश्वर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे उनके असाध्य रोगोंकी शांति होगी,वंशकी वृद्धि होगी और धनसम्पत्ति, जनसम्पत्ति तथा स्वर्गादि सम्पत्ति प्राप्त होवैगी, इस चरित्रको श्रवण करने पर अन्तःकरण आनन्दित होवेगा, संसारसमुद्र सूख जायगा और परम पुरुषार्थरूप मुक्तिपदकी भी प्राप्ति होगी ॥५७॥ तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

रामात् कुशोऽभूदतिथिस्ततोऽभून्निषधान्नभः । तस्मादभूत् पुण्डरीकः क्षेमधन्वाऽभवत् ततः ॥ १ ॥ देवानीकस्ततो हीनः पारिपात्रोऽथ हीनतः । बलाहकस्ततोऽर्कश्च रजनाभस्ततोऽभवत् ॥ २ ॥ खगणाद्विधृतस्तस्माद्धिरण्यनाभसंज्ञितः । ततः पुष्पाद् ध्रुवस्तस्मात् स्यन्दनोऽथाग्निवर्णकः ॥ ३ ॥ तस्माच्छीघ्रोऽभवत् पुत्रः पिता मेऽतुलविक्रमः । तस्मान्मरुं मां केऽपीह बुधञ्चापि सुमित्रकम् ॥ ४ ॥ कलापग्राममासाद्य विद्धि सत्तपसि स्थितम् । तत्रावतारं विज्ञाय व्यासात् सत्यवतीसुतात् ॥५॥ प्रतीक्ष्य कालं लक्षाब्दं कलेः प्राप्तस्तवान्तिकम् ।

श्रीरामचन्द्रजीका पुत्र कुश, कुशका अतिथि, अतिथिका निषध, निषधका नभ, नभका पुण्डरीक, पुण्डरीकका क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वाका देवानीक, देवानीकका हीन, हीनका पारिपात्र, पारिपात्रका बलाहक, बलाहकका अर्क, अर्कका रजनाभ, रजनाभका खगण, खगणका विधृत, विधृतका हिरण्यनाभ, हिरण्यनाभका पुष्प, पुष्पका ध्रुव, ध्रुवका स्यन्दन, स्यन्दनका अग्निवर्ण और अग्निवर्णका पुत्र शीघ्र हुआ, वह परमपराक्रमी शीघ्र मेरे पिता थे, मेरा नाम मरु है, कोई २ मुझे बुध कहते हैं और कोई २ सुमित्र कहते हैं ॥ १–४ ॥ इतने दिनों पर्यन्त मैं कलाप ग्राममें निवास करता हुआ तपस्या करता रहा, मैं सत्यवतीके पुत्र व्यासजी के मुखसे आपके अवतारका वृत्तान्त सुनकर कलियुगके लाख वर्ष पर्यन्त प्रतीक्षा करके आपके पास आया हूँ परमात्मारूप आपके समीप आनेसे करोड़ों जन्मके पापपुञ्ज नष्ट होजाते हैं, धर्म्मकी वृद्धि होती है, यश और

जन्मकार्टयवसां राशनाशनं धर्म्मशासनम् । यशःकीर्त्तिकरं सर्वकामपूरं परात्मनः ॥ ६ ॥ कल्किरुवाच । ज्ञातस्तवान्वयं त्वां च सूर्य्यवंशसमुद्भवम् । द्वितीयः कोऽपरः श्रीमान् महापुरुषलक्षणः ॥ ७ ॥ इति कल्किवचः श्रुत्वा देवापिर्मधुराक्षराम् । वाणीं विनयसम्पन्नः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ८ ॥ देवापिरुवाच । प्रलयान्ते नाभिपद्मात् तवाभूच्चतुराननः । तदीयतनयादत्रेश्चन्द्रस्तस्मात्ततो बुधः ॥ ९ ॥ तस्मात् पूरुरवा जज्ञे ययातिर्नहुषस्ततः । देवयान्यां ययातिस्तु यदुं तुर्वसुमेव च ॥ १० ॥ शर्मिष्ठायां तथा द्रुह्युञ्चानुं पूरुञ्च सत्पते । जनयामास भूतादिर्भूतानीव सिसृक्षया ॥ ११ ॥ पूरोर्जज्ञे-

कीर्त्ति बढती है तथा सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण होती हैं।५-६। यह सुनकर कल्कि भगवान बोले, कि-इस समय मैंने तुम्हारी वंशावली सुनी और समझ लिया कि-तुम सूर्य्यवंशी राजा हो परन्तु तुम्हारे साथ यह जो दूसरा पुरुष है इसमें श्रीमान् और महापुरुषोंके लक्षण हैं, ये कौन है ? ॥ ७ ॥ देवापि, कल्कि भगवान्के ऐसे मधुर वाक्यको सुनकर नम्रताभरी वाणीसे बोले ॥ ८ ॥ देवापि बोला, कि-प्रलयके अन्तमें आपकी नाभिके कमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए, ब्रह्माके अत्रि नामक पुत्र हुए, अत्रिका चन्द्र, चन्द्रका पुत्र बुध, बुधका पुरूरवा, पुरूरवाका नहुप, नहुषका ययाति, तिस ययातिके देवयानिसे यदु और तुर्वसु ये दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥९॥१०॥ हे साधुओंकी रक्षा करनेवाले भगवन् ! उस ययातिके शर्मिष्ठा नामक स्त्रीसे द्रुह्यु, अनु और पुरु ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए, सृष्टिके समय भूतादि अर्थात् तामस अहङ्कारसे जिस

जयस्तस्मात् प्रचिन्वानभवत् ततः । प्रवीरस्तन्मनस्युर्वै तस्मा-च्चाभयदोऽभवत् ॥ १२ ॥ उरुक्षयाच्च त्र्यरुणिस्ततोऽभूत् पुष्करारुणिः । बृहत्क्षेत्रादभूद्धस्ती यन्नाम्ना हस्तिनापुरम् १३ अजमीढोऽहिमीढश्च पुरमीढस्तु तत्सुताः । अजमीढादभूदृक्ष-स्तस्मात् संवरणात् कुरुः ॥ १४ ॥ कुरोः परीक्षित् सुधनु-र्जन्हुर्निषध एव च । सुहोत्रोऽभूत् सुधनुपश्चच्यवनाच्च ततः कृती ॥ १५ ॥ ततो बृहद्रथस्तस्मात् कुशाग्रादृषभोऽभवत् । ततः सत्यजितः पुत्रः पुष्पवान्नहुपस्ततः ॥ १६ ॥ बृहद्रथा-न्यभार्यायां जरासन्धः परन्तपः । सहदेवस्ततस्तस्मात् सोमा-

प्रकार पञ्चभूत उत्पन्न होते हैं तिसीप्रकार ययातिके पाँच पुत्र हुए ॥११॥ पुरुका पुत्र जनमेजय, जनमेजयका प्रचि-न्वान्, प्रचिन्वानका प्रवीर, प्रवीरका मनुस्यु, मनुस्युका अभयद, अभयदका उरुक्षय, उरुक्षयका त्र्यरुणि, त्र्यरुणिका पुष्कारुणि, पुष्कारुणिका बृहत्क्षेत्र, बृहत्क्षेत्रका पुत्र हस्ती हुआ, इस हस्ती राजाके नामसेही ह स्तनापुर वसा है १२-१३ उस हस्ती राजाके अजमीढ़–अहिमीढ़–और पुरमीढ़ ये तीन पुत्र हुए; अजमीढ़का पुत्र ऋक्ष, ऋक्षका संवरण, संवरण का कुरु, कुरुका परीक्षित, परीक्षितके सुधनु, जन्हु और निषध ये तीन पुत्र हुए, उनमें सुधुनका पुत्र सुहोत्र, सुहोत्र का च्यवन, च्यवनका बृहद्रथ, बृहद्रथका कुशाग्र, कुशाग्रका ऋषभ, ऋषभका सत्यजित्का पुष्पवान्, और पुष्पवान्का पुत्र नहुप हुआ ॥ १४–१६ ॥ बृहद्रथकी दूसरी स्त्रीसे शत्रुओंको सन्ताप देनेवाला जरासन्ध उत्पन्न हुआ, जरा-सन्धका पुत्र सहदेव हुआ, सहदेवका पुत्र सोमापि, सोमापि

पेभूच्छ्रुतश्रवाः ॥ १७ ॥ सुरथाद्विदूरथस्तस्मान् सार्वभौमोऽभवत् ततः। जयसेनाद्रथानीकोऽभूद्युतायुश्च कोपनः १८ तस्माद्देवातिथिस्तमादृक्षस्तस्माद्दिलीपकः । तस्मात् प्रतीपकस्तस्य देवापिरहमीश्वर ! ॥ १९ ॥ राज्यं शान्तनवे दत्त्वा तपस्येकधिया चिरम् । कलापग्राममासाद्य त्वां दिदृक्षुरिहागतः ॥ २० ॥ मरुणाऽनेन मुनिभिरेभिः प्राप्य पदाम्बुजम् । तव कालकरालास्याद्द यास्याम्यात्मवतां पदम् ॥२१॥ तयोरेवं वचः श्रुत्वा कल्किः कमललोचनः । प्रहस्य मरुदेवापी समाश्वास्य समब्रवीत् ॥ २२ ॥ कल्किरुवाच । युवां परमधर्म्मज्ञौ राजानौ विदिताबुभौ । मदादेशकरौ भूत्वा निज-

का श्रुतश्रवा, श्रुतश्रवाका सुरथ, सुरथका विदूरथ, विदूरथ का सार्वभौम, सार्वभौमका जयसेन, जयसेनका रथानीक, रथानीकसे परमकोपी युतायु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ १७-१८ युतायुका पुत्र देवातिथि हुआ, देवातिथिका ऋत्त, ऋत्तका दिलीप, दिलीपका प्रतीपक, प्रतीपकका पुत्र मैं देवापि हूँ, मैं शान्तनुको अपना राज्य देकर कलाप ग्राममें रहताहूँ एकाग्र मनसे वहुत कालसे तपस्या कररहा हूँ, इस समय आपके दर्शनके निमित्त यहाँ आया हूँ ॥ १९–२० ॥ मैंने इन मरु के साथ और इन सम्पूर्ण मुनियोंके साथ आपके चरणकमलोंका दर्शन पाया है, निःसन्देह अब हमको कालके कराल गालमें नहीं जाना पड़ेगा, हमें आत्यज्ञानी पुरुषोंका पद मिलेगा ॥ २१ ॥ कमलदललोचन कल्कि भगवान् मरु और देवापिकी इस बातको सुनकर मुस्कुराते हुए ढाढस देकर कहने लगे ॥ २२ ॥ कल्कि भगवान् बोले, कि–मैं जानता

राज्यं भरिष्यथः ॥ २३ ॥ मरो ! त्वामभिषेक्ष्यामि निजायो-ध्यापुरेऽधुना । हत्वा म्लेच्छानधर्मिष्ठान् प्रजाभूतविहिंस-कान् ॥ २४ ॥ देवापे ! तव राज्ये त्वां हस्तिनापुरपत्तने । अभिषेक्ष्यामि राजर्षे ! हत्वा पुक्कसकान् रणे ॥ २५ ॥ मथुरायामहं स्थित्वा हरिष्यामि तु वो भयम् । शय्याकर्णा-नुष्ट्रमुखानेकजंघान् विनोदरान् ॥ २६ ॥ हत्वा कृतं युगं कृत्वा पालयिष्याम्यहं प्रजाः । तपोवेशं व्रतं त्यक्त्वा समा-रुह्य रथोत्तमम् ॥ २७ ॥ युवां शस्त्रास्त्रकुशलौ सेनागण-परिच्छदौ । भूत्वा महारथौ लोके मया सह चरिष्यथः॥२८॥

हूँ, तुम दोनों परमधर्म्मात्मा राजा हो, इस समय तुम मेरी आज्ञाके अनुसार राजा होकर अपने २ राज्यको करो २३ हे मरु राजन् ! मैं इस समय प्रजाओंको पीड़ा देनेवाले, प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले और धर्महीन म्लेच्छोंका नाश करके तुम्हें तुम्हारी राजधानी अयोध्यापुरी दिलवाऊँगा और उसमें तुम्हारा अभिषक करूंगा ॥ २४ ॥ हे राजर्षि देवापि ! मैं, रणभूमिमें म्लेच्छोंका संहार करके तुम्हें तुम्हारी राजधानी हस्तिनापुर दिलवाऊँगा ॥ २५ ॥ मैं भी मथुरापुरीमें रहताहुआ तुम्हारे भयको दूर करता रहूंगा मैं शय्याकर्ण, उष्ट्रमुख और एकजङ्घ नामक म्लेच्छोंका संहार करके सत्ययुगकी स्थापना करता हुआ प्रजाओंका पालन करूँगा, तुम भी तपस्विवेश और व्रतको त्यागकर महारथ पर चढ़ो ॥ २६–२७ ॥ क्योंकि–तुम अस्त्र शस्त्र छोड़नेमें प्रवीण और महारथी हो, तुम म्लेच्छ आदि धर्म-द्वेषियोंका नाश करनेके लिये हमारे साथ विचरो ॥ २८ ॥

विशाखयूपभूपालस्तनयां विनयान्विताम् । विवाहे रुचिरापाङ्गीं सुन्दरीं त्वां प्रदास्यति ॥ २९ ॥ सा वो भूपाल ! लोकानां स्वस्तये कुरु मे वचः। रुचिराश्वसुतां शान्तां देवापे ! त्वं समुद्वह ॥ ३० ॥ इत्याश्वासकथाः कल्केः श्रुत्वा तौ मुनिभिः सह । विस्मयाविष्टहृदयौ मेनाते हरिमीश्वरम्॥३१॥ इति ब्रुवत्यभयदे आकाशात् सूर्य्यसन्निभौ । रथौ नानामणिव्रातघटितौ कामगौ पुरः । समायातौ ज्वलद्दिव्यशस्त्रास्त्रैः परिवारितौ॥३२॥ ददृशुस्ते सदोमध्ये विश्वकर्म्मविनिर्मितौ । भूपा मुनिगणाः सभ्याः सहर्षा किमितीरताः ॥३३॥ कल्कि-

हे मरु राजन् ! विशाखयूप नामवाला राजा, विनयवती, सुन्दरनेत्रा, परमसुन्दरी, अपनी कन्याके साथ तुम्हारा विवाह करदेगा ॥ २९ ॥ हे मरु राजन् ! जगत्के कल्याण के निमित्त तुम राजा होकर मेरे वाक्यका पालन करो, हे देवापि ! तुम श्रीरुचिराश्वकी शान्ता नामवाली कन्याके साथ विवाह करो ॥ ३० ॥ मरु, देवापि और मुनिगण, कल्कि भगवान्का ऐसा आश्वासनका वाक्य सुनकर हृदयमें अचरजसा करनेलगे और यह निश्चय जानलिया, कि–यह ईश्वर श्रीहरि हैं ॥ ३१ ॥ कल्कि भगवान् इस प्रकार अभयवाक्य कह रहे थे, कि–उसी समय आकाशमार्गसे कामगामी (इच्छाके अनुसार विचरनेवाले) दो रथ उतरे, वे दोनों रथ सूर्यकी समान तेजयुक्त, नानाप्रकारकी मणियोंसे जड़े हुए और सफ़ेद २ चमकतेहुए दिव्य अस्त्र शस्त्रोंसे युक्त थे ॥ ३२ ॥ मुनि, राजे और सभामें बैठेहुए सब पुरुष विश्वकर्माके बनायेहुए रथको सभामें आया हुआ देखकर प्रसन्न

रुवाच। युवामादित्यसोमेन्द्रयमवैश्रवणाङ्गजौ। राजानौ लोकरक्षार्थमाविर्भूतौ विदन्त्यमी ॥ ३४ ॥कालेनाच्छादिताकारौ मम सङ्गादिहोदितौ। युवां रथावारुहतां शक्रदत्तं ममाज्ञया३५ एवं वदति विश्वेशे पद्मानाथे सनातने। देवा ववर्षुः कुसुमैस्तुष्टुवुर्मुनयोऽग्रतः ॥ ३६ ॥ गङ्गावारिपरिक्लिन्नशिरोभूतिपरागवान्। शनैः पर्वतजासङ्गशिववत् पवनो ववौ ॥ ३७ ॥ तत्रायातः प्रमुदिततनुस्तप्तचामीकराभो, धर्म्मावासः सुरुचिर-

हुए, और यह क्या ? यह क्या ? ऐसा कहकर अचरज माननेलगे ॥ ३३ ॥ कल्कि भगवान् बोले, कि-सबको ही मालूम है कि-तुम दोनों राजा हो और लोकरक्षाके निमित्त सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र, यम और कुबेरके अंशसे उत्पन्न हुए हो ॥ ३४ ॥ इतने दिनों पर्यन्त तुम अपने २ स्वभावको गुप्त करके रहते रहे हो, इस समय मेरे प्रकट होनेपर, मुझसे मिलनेके लिये यहाँ आये हो, अब तुम मेरी आज्ञाके अनुसार इन्द्रके भेजेहुए इन रथोंपर चढ़ो ॥ ३५ ॥ लक्ष्मीपति त्रिलोकीनाथ सनातन कल्कि भगवान् इस प्रकार कहरहे थे, कि-उसी समय देवता पुष्पोंकी वर्षा करनेलगे और मुनिगण सामने आकर स्तुति करनेलगे ॥ ३६ ॥ गङ्गाजीके जलसे मिलनेके कारण गीलाहुआ महादेवजीके शिरपर स्थित विभूतिकी परागयुक्त और पार्वतीजीके शरीरका स्पर्श होनेके कारण मङ्गलरूप वायु मन्द मन्द चलने लगा ॥ ३७ ॥ तदनन्तर उसी स्थानपर एक भिक्षुक आन-पहुँचा उसके मुखपर आनन्दके चिन्ह प्रकट होरहे थे, शरीरकी कान्ति तपायेहुए सुवर्णकी समान उज्वल थी, धर्म

जटाचीरभृद्द दण्डहस्तः। लोकातीतो निजतनुमरुन्नाशिताऽधर्मसंघस्तेजोराशिः सनकसदृशो मस्करी पुष्कराक्षः ॥ ३८ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे सूर्यचन्द्रवंशानुकीर्त्तनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

शुक उवाच । अथ कल्किः समालोक्य सदसाम्पतिभिः सह । समुत्थाय ववन्दे तं पाद्यार्घाचमनादिभिः ॥ १ ॥ वृद्धं संवेश्य तं भिक्षुं सर्वाश्रमनमस्कृतम् । पप्रच्छ को भवानत्र ? मम भाग्यादिहागतः ॥ २ ॥ प्रायशो मानवा लोके लोकानां पारणेच्छया। चरंति सर्वसुहृदः पूर्णा विगतकल्मषाः ३ मस्कर्युवाच । अहं कृतयुगं श्रीश ! तवादेशकरं परम् । तवा-

---

का परम आधार था, अतिमनोहर वल्कल वस्त्र धारण किये हुए था, हाथमें दण्ड शोभायमान था, अधिक क्या कहूँ, वह अलौकिक पुरुष ही था, उसके शरीरकी वायुसे पापोंके समूह नष्ट होते थे, वह सूर्यकी समान तेजस्वी, था और उसके दोनों नेत्र कमलकी समान थे ॥३८॥ चौथा अध्याय समाप्त

सूतजी बोले, कि–हे ऋषियो ! तदनन्तर कल्कि भगवान् ने उस भिक्षुकको देखते ही सब पुरुषों सहित उठकर पाद्य अर्घ, और आचमनीय आदि सामग्रीसे पूजन किया ॥ १ ॥ फिर उन सम्पूर्ण आश्रमोंके पूजनीय भिक्षुकको बैठाकर बूझा, कि–आप कौन हैं ? हमारे धन्यभाग हैं जो आपने आकर हमैं दर्शन दिया ॥ २ ॥ जो मनुष्य निष्पाप और पूर्ण तथा सबको समानदृष्टिसे देखनेवाले होते हैं वे प्राणियों का उद्धार करनेके निमित्त पृथ्वीपर विचरते हैं ॥ ३ ॥ यह यह सुनकर वह भिक्षुक (संन्यासी) बोले कि–हे श्रीनाथ !

विर्भावविभवमीक्षणार्थमिहागतम् ॥ ४ ॥ निरुपाधिर्भवान् कालः सोपाधित्वमुपागतः । क्षणदण्डलवाद्यङ्गैर्मायया रचितं त्वया ॥ ५ ॥ पक्षाहोरात्रमासर्त्तु संवत्सरयुगादयः । तवेच्छया चरन्त्येते मनवश्च चतुर्दश ॥ ६ ॥ स्वायम्भुवस्तु प्रथमस्ततः स्वारोचिषो मनुः । तृतीय उत्तमस्तस्माच्चतुर्थस्तामसः स्मृतः ॥ ७ ॥ पञ्चमो रैवतः षष्ठश्चाक्षुषः परिकीर्त्तितः । वैवस्वतः सप्तमो वै दक्षसावर्णिरष्टमः ॥ ८ ॥ नवमो दक्षसावर्णिर्ब्रह्मसावर्णिकस्ततः । दशमो धर्मसावर्णिरेकादशः स उच्यते ॥ ९ ॥ रुद्रसावर्णिकस्तत्र मनुर्वै द्वादशः स्मृतः । त्रयोदशमनुर्वेदसावर्णिर्लोकविश्रुतः ॥ १० ॥

मैं सर्वथा आपके वशमें रहनेवाला सत्ययुग हूँ, मैं आपका अवतार और ऐश्वर्य देखनेके निमित्त यहाँ आया हूँ ॥४॥ आप निरुपाधि कालस्वरूप हो, आप क्षण, घटिका, पल आदि अङ्गोंके द्वारा इस समय उपाधियुक्त प्रतीत होरहे हो, आपकी मायासे सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है ॥५॥ आपके वशमें होनेके कारण क्षण, दिन, रात्रि, मास, ऋतु, सम्वत्सर और युग आदि तथा चौदह मनु, ये सब नियमके अनुसार विचरते रहते हैं ॥ ६ ॥ पहला स्वायम्भुव मनु, दूसरा स्वारोचिष, तीसरा उत्तम, चौथा तामस, पाँचवाँ रैवत मनु, छठा चाक्षुष, सातवाँ वैवस्वत, आठवाँ सावर्णि, नवम दक्षसावर्णिमनु, दशवाँ ब्रह्मसावर्णिमनु, ग्यारहवाँ धर्मसावर्णि मनु, बारहवाँ रुद्रसावर्णि, तेरहवाँ सर्वत्र प्रसिद्ध वेदसावर्णि नामक मनु, और चौदहवाँ इन्द्रसावर्णि नामक मनु, ये सब आपकी विभूतिस्वरूप हैं, ये सब आपकी मायारूप शक्तिसे

चतुर्दशेन्द्रसावर्णिरेते तत्र विभूतयः । यान्त्यायान्ति प्रकाशन्ते नामरूपादिभेदतः ॥ ११ ॥ द्वादशाब्दसहस्रेण देवानाञ्च चतुर्युगम् । चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं सहस्रं गणितं मतम् ॥ १२ ॥ तावच्छतानि चत्वारि त्रीणि द्वे चैकमेव हि । सन्ध्याक्रमेण तेषान्तु सन्ध्यांशोऽपि तथाविधः ॥ १३ ॥ एकसप्ततिकं तत्र युगं भुङ्क्ते मनुर्भुवि । मनूनामपि सर्वेषामेवं परिणतिर्भवेत् । दिवा प्रजापतेस्तत्तु निशा सा परिकीर्त्तिता ॥ १४ ॥ अहोरात्रञ्च पक्षस्ते मासः संवत्सरर्त्तवः । सदुपाधिकृतः कालो ब्रह्मणो जन्ममृत्युकृत् ॥ १५ ॥ शतसंवत्सरे ब्रह्मा लयं प्राप्नोति हि त्वयि । लयान्ते त्वन्नाभिमध्या-

---

नामरूपादि भेदयुक्त प्रतीत होते हैं ॥ ७—११ ॥ देवताओं के बारह हजार वर्षोंके चार युग होते हैं, जिसमें देवताओंके चार हजार वर्षका सत्ययुग, तीन हजार वर्षका त्रेता, दो हजार वर्षका द्वापर, और एक हजार वर्षका कलियुग होता है; और चारों युगोंकी पूर्वसंध्या क्रमसे चार सौ, तीनसौ, दो सौ और एक सौ वर्षकी होती है, इन चारों युगोंकी शेष सन्ध्याका भी इतना ही परिमाण है ॥ १२ ॥ १३ ॥ हर एक मनु इकहत्तर युगपर्यन्त पृथ्वीका भोग करता है, इसी प्रकार सम्पूर्ण मनुओंका परिणाम होता है, जितने समय पर्यन्त चौदह मनुओंका अधिकार रहता है वह ब्रह्माजी का एक दिन होता है; इतने ही कालकी समान समय में ब्रह्माजीकी एक रात्रि होती है ॥ १४ ॥ काल इसप्रकार दिन, रात्रि, पक्ष, मास, वर्ष, ऋतु आदि उपाधियोंको धारण करके ब्रह्माका जन्म मरण आदि करता है ॥१५ ॥

दुच्स्थितः सृजति प्रभुः ॥१६॥ तत्र कृतयुगान्तेऽहं कालं सद्धर्म-पालकम् । कृतकृत्याः प्रजा यत्र तन्नाम्ना मां कृतं विदुः१७ इति तद्वच आश्रुत्य कल्किर्निजजनावृतः । प्रहर्षमतुलं लब्ध्वा श्रुत्वा तद्वचनामृतम् ॥ १८ ॥ अवहित्थामुपालक्ष्य युगस्याह जनान् हितान् । योद्धुकामः कलेः पूर्यां हृष्टो विशसने प्रभुः१९ गजरथतुरगान्नरांश्च योधान् कनकविचित्रविभूषणाचिताङ्गान् । धृतविविधवरास्त्रपूगान् युधि निपुणान् गणयध्वमानयध्वम्२०

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कृतयुगागमनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

सौ वर्षकी आयु होने पर ब्रह्मा तुम्हारेमें लीन होजाता है प्रलयकालका अन्त होने पर प्रभु ब्रह्माजी अपनी नाभिके कमलसे उत्पन्न होते हैं। १६ ॥ तहाँ मैं कालका अंश सत्य-युग हूँ, मेरे अधिकारमें धर्मका पालन उत्तमरीतिसे होता है, मेरा अधिकार होने पर प्रजा धर्मानुष्ठान करके कृतकृत्य होजाती है, इसकारण ही मैं कृतयुग नामसे प्रसिद्ध हूँ १७ अनुचरों सहित कल्कि भगवान् सत्ययुगका यह वाक्य सुन कर परम आनन्दको प्राप्तहुए१८कलिका संहार करनेमें समर्थ कल्कि भगवान् गुप्तरूपमें सत्ययुगका आगमन देखकर कलिके अधिकारमें विशसन नामक पुरीमें संग्राम करनेकी इच्छा से अपने अनुचर पुरुषोंसे कहने लगे ॥ १९ ॥ कि–जो वीर हाथियों पर चढ़कर युद्ध करें, जो रथों पर चढकर युद्ध करनेमें समर्थ हैं, जो पैदल हैं,जिनके शरीर सुवर्णके नाना-प्रकारके आभूषणोंसे शोभायमान हैं,जो अस्त्र शस्त्रोंसे संग्राम कर सकते हैं और जो युद्ध करनेमें चतुर हैं,ऐसे योधाओंकी संपूर्ण सेनाओंको लाओ,और सबकी पृथक् २गिनतीकरो२०

सूत उवाच । इति तौ मरुदेवापी श्रुत्वा कल्केर्वचः पुरः । कृतोद्वाहौ रथारूढौ समायातौ महाभुजौ ॥ १ ॥ नानायुधधरैः सैन्यैरावृतौ शूरमानिनौ । बद्धगोधाङ्गुलित्राणौ दंशितौ बद्धहस्तकौ ॥ २ ॥ कार्ष्णायसशिरस्त्राणौ धनुर्द्धरधुरन्धरौ । अक्षौहिणीभिः षड्भिस्तु कम्पयन्तौ भुवं भरैः॥३॥ विशाखयूपभूपस्तु गजलक्षैः समावृत । अश्वैः सहस्रनियुतैः रथैः सप्तसहस्रकैः॥४॥ पदातिभिर्द्विलक्षैश्च सन्नद्धैर्धृतकार्मुकैः । वातोद्धूतोत्तरोष्णीषैः सर्वतः परिवारितः ॥ ५ ॥ रुधिराश्वसहस्राणां पञ्चाशद्भिर्महारथैः । गजैर्दशशतैर्मत्तैर्नवलक्षैर्वृतो

सूतजी कहते हैं, कि--हे ऋषियो ! तदनन्तर विवाह करके वह महाबाहु मरु और देवापि, कल्कि भगवान्के इस वाक्यको सुनकर रथ पर चढ सन्मुख आये ॥ १॥उन दोनों राजाओंके साथ असंख्य सेना थी और नानाप्रकारके अस्त्र शस्त्र धारण किये हुए थे, वे दोनों अपनेमें महावीरपनेका अभिमान रखते थे, उनके हाथ और सब शरीर कवचसे ढके हुए थे, वे दोनों वीर अपने हाथोंकी अँगुलियोंमें दस्ताने पहिने हुए थे ॥ २ ॥ उनका मस्तक काले टोपसे शोभायमान होरहा था, वे दोनों सबसे श्रेष्ठ धनुषधारी थे, उन दोनोंकी छः अक्षौहिणी सेनासे भूमण्डल कम्पायमान होरहा था ॥ ३ ॥ विशाखयूप राजाके साथमें एक लाख हाथी, सौ लाख घोड़े, सात हजार रथ और दो लाख धनुषधारी पैदल सब प्रकारसे तयार थे, उस विशाखयूप राजाकी पगड़ीका और दुपट्टेका सिरा वायुसे कम्पित हो रहा था ॥४॥५॥ इसके सिवाय उसके साथ पचास हजार

वभौ ॥ ६ ॥ अक्षौहिणीभिर्दशभिः कल्किः परपुरञ्जयः। समावृतस्तथा देवैरेवमिन्द्रो दिवि स्वराट् ॥ ७ ॥ भ्रातृपुत्र-सुहृद्भिश्च मुदितः सैनिकैर्वृतः। ययौ दिग्विजयाकांक्षी जगतामीश्वरः प्रभुः ॥ ८ ॥ काले तस्मिन् द्विजो भूत्वा धर्मः परजनैः सह। समाजगाम कलिना बलिनापि निराकृतः ९ ऋतं प्रसादमभयं सुखं मुदमथ स्वयम्। योगमर्थं ततोऽदर्पं स्मृतिं क्षेमं प्रतिश्रयम् ॥ १० ॥ नरनारायणौ चोभौ हरेरंशौ तपोव्रतौ। धर्मस्त्वेतान् समादाय पुत्रान् स्त्रीश्चागतस्त्वरन्११ श्रद्धा मैत्री दया शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः। बुद्धिर्मेधा

लाखरथोंके घोड़े, दश हजार मत्त हाथी बहुतसे महारथी और नौ लाख पैदल थे॥ ६ ॥ शत्रुओंके नगरोंको जीतने वाले कल्कि भगवान् इसप्रकार स्वर्गलोकमें स्थित इन्द्रदेव की समान दश अक्षौहिणी सेनासे युक्त होकर शोभायमान होने लगे ॥ ७ ॥ जगत्के ईश्वर कल्कि भगवान् इसप्रकार भ्राता, पुत्र, मित्रगण और बहुत सी सेनाको साथमें लेकर दिग्विजय करनेकी इच्छासे चल दिये ॥ ८ ॥ उस समय बलवान कलियुगसे तिरस्कारको प्राप्त हुआ धर्म, ब्राह्मण का रूप धारण करके तहाँ आया ॥ ९ ॥ उसके अनुचरोंमें ऋत, प्रसाद, अभय, सुख, प्रीति, योग, अर्थ, अनहङ्कार (अहङ्कार न होना), स्मृति, क्षेम, प्रतिश्रय और श्रीहरि के अंश परमतपस्वी नरनारायण थे, इन सबको तथा अपने स्त्रीपुत्रोंको लेकर धर्म शीघ्रतासे उस स्थान पर आया जहाँ कल्कि भगवान् थे ॥ १० ॥ ११ ॥ श्रद्धा, मित्रता, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, लज्जा

तितिक्षा च ह्रीमूर्त्तिर्धर्मपालकाः ॥ १२ ॥ एतास्तेन सहा-
याता निजबन्धुगणैः सह । कल्किमालोकितुं तत्र निजकार्य
निवेदितुम् ॥ १३ ॥ कल्किर्द्विजं समासाद्य पूजयित्वा यथा-
विधि । प्रोवाच विनयापन्नः कस्त्वं ? कस्मादिहागतः ? १४
स्त्रीभिः पुत्रैश्च सहितः क्षीणपुण्य इव ग्रहः । कस्य वा ?
विषयाद्राज्ञस्तत्त्वं वद तत्त्वतः ॥ १५ ॥ पुत्राः स्त्रियश्च ते
दीनाः हीनस्ववलपौरुषाः । वैष्णवाः साधवो यद्वत् पाष-
ण्डैश्च तिरस्कृताः ॥ १६ ॥ कल्केरिति वचः श्रुत्वा धर्मः
शर्म निजं स्मरन् । प्रोवाच कमलानाथमनाथस्त्वतिकातरः १७
पुत्रैः स्त्रीभिर्निजजनैः कृताञ्जलिपुटैर्हरिम् । स्तुत्वा नत्वा

ये आठ मूर्त्तियें धर्मका पालन करनेवाली हैं ॥ १२ ॥ सो
ये सब अपने बान्धवों सहित कल्कि भगवान्का दर्शन करने
को और अपना कार्य निवेदन करनेको तहाँ आये ॥१३॥
कल्किभगवान् ब्राह्मणका वेष धारण करेहुए उस धर्मको देख
कर प्रसन्न हुए और नम्रतासे विधिपूर्वक पूजन सत्कार करके
कहने लगे, कि—आप कौन हैं ? और कहांसे आरहे हैं?१४
तुम, क्षीणपुण्य पुरुषोंकी समान स्त्री और पुत्रों सहित
कौनसे राजाके राजमेंसे आरहे हो ? यह ठीक २ मुझसे
कहिये ? ॥ १५ ॥ पाखण्डी पुरुषोंसे तिरस्कारको प्राप्त
हुए विष्णुभक्त साधु पुरुषोंकी समान आपके पुत्र और
स्त्री वलहीन पुरुषार्थहीन और अत्यन्त कातर होरहे हैं १६
अनाथ और कातर हुआ वह धर्म, कमलापति कल्कि भग-
वान्का यह वचन सुनकर अपने कल्याणके निमित्त कहने
लगा ॥ १७ ॥ उस ब्राह्मण रूपधारी धर्मने प्रथम तो स्त्री,

पूजयित्वा मुदितं तं दयापरम् ॥ १८ ॥ धर्म उवाच । शृणु कल्के ! ममाख्यानं धर्मोऽहं ब्रह्मरूपिणः । तत्र वक्षःस्थलात्-उज्जातः कामदः सर्वदेहिनाम् ॥ १९ ॥ देवानामग्रणीर्हव्य-कव्यानां कामधुग् विभुः । तवाज्ञया चराम्येव साधुकीर्त्तिकृ-दन्वहम् ॥२०॥ सोऽहं कालेन बलिना कलिनापि निराकृतः । शककाम्बोजशबरैः सर्वैरावासवासिना ॥ २१ ॥ अधुना तेऽखिलाधार ! पादमूलमुपागताः । यथा संसारकालाग्नि-संतप्ताः साधवोऽर्दिताः ॥ २२ ॥ इति वाग्भिरपूर्वाभिर्धर्मेण

पुत्र और अनुचरों सहित हाथ जोड़कर आनन्दरूप दयामय श्रीहरिका पूजन किया, फिर नमस्कार करके स्तुति करने लगा ॥१८॥ स्तुति करनेके अनन्तर वह ब्राह्मणवेषधारी धर्म बोला, कि-हे कल्कि भगवन् ! मैं विस्तारसे वर्णन करता हूँ, सुनिये, मैं पितामहरूप आपके वक्षःस्थलसे उत्पन्न हुआ हूँ, मेरा नाम धर्म्म है, मैं सम्पूर्ण प्राणियोंके मनोरथोंको सिद्ध करता हूँ ॥ १९ ॥ मैं देवताओंमें आगे गिना जाता हूँ मुझे यज्ञमें हव्य-कव्यका भाग मिलता है, मैं यज्ञका फल देकर साधुपुरुषोंकी कामनाओंको पूर्ण करता हूँ, मैं आप की आज्ञानुसार सदा साधुओंका कार्य करनेके निमित्त विच-रता रहता हूँ ॥ २० ॥ इस समय शक, काम्बोज, शबर आदि म्लेच्छ जातिके पुरुष कलियुगके अधिकारमें निवास करते हैं उस बलवान् कलियुगसे मैं समयके वशीभूत होकर तिरस्कारको प्राप्त होरहा हूँ ॥ २१ ॥ हे जगदाधार ! हे भगवन् ! इस समय साधु पुरुष संसाररूप कालाग्निसे संतप्त होकर पीड़ाको पारहे हैं, इसकारण मैं आपके चरणोंकी

परितोषितः । कल्किः कल्कहरः श्रीमानाह संहर्षयन् शनैः२३
धर्म ! कृतयुगं पश्य मरुं चण्डांशुवंशजम् । मां जानासि यथा जातं धातृप्रार्थितविग्रहम् ॥ २४ ॥ कीटके बौद्धदलनमिति मत्वा सुखी भव । अवैष्णवानामन्येषां तवोपद्रवकारिणाम् । निग्रहं कुर्यामि सेनाभिश्चर गां त्वं विनिर्भयः ॥२५॥
का भीतिस्ते ? क्व मोहोऽस्ति ? यज्ञदानतपोव्रतैः । सहितैः सञ्चर विभो ! मयि सत्ये व्युपस्थिते ॥ २६ ॥ अहं यामि त्वयागच्छ स्वपुत्रैर्बान्धवैः सह । दिशां जयार्थं त्वच्छत्रुनिग्र-

---

शरणमें आया हूँ ॥२२॥ पापनाशक श्रीमान् कल्कि भगवान धर्म्मके ऐसे अपूर्व वचनोंको सुनकर प्रसन्न होकर सब को हर्षित करते हुए धीरे २ कहनेलगे ॥ २३ ॥ कि—हे धर्म्म! यह देखो अब सत्ययुग आगया है,और यह सूर्य्यवंशी राजा है, इसका नाम मरु है, मैंने ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे यह अवतार धारण किया है, यह तुम जानते ही हो ॥ २४ ॥
मैं कीकटदेशमें बौद्धोंका वध कर चुका हूँ, तुम यह सुनकर सुखी हो जो विष्णुभक्त नही हैं; जो तुम्हारे(धर्मके) कार्य्यमें उपद्रव करते हैं, मैं उनका संहार करनेको सेनाओंको साथ लिये हुए जाता हूं, अब तुम निर्भय चित्तसे पृथ्वी पर विचरो ॥ २५ ॥ जब मैं उपस्थित हूँ, जब सत्ययुग उपस्थित है, फिर तुम्हें क्या भय है ? तुम किस कारण मोह आदिसे तिरस्कारको पाते हो, अब तुम यज्ञ, दान, तपस्या, और व्रतके साथ विचरो ॥२६॥
हे धर्म्म ! तुम जगत्के प्रिय हो, तुम पुत्र और बान्धवोंसहित दिग्विजय तथा शत्रुओंका संहार करनेको यात्रा

ह्यार्थं जगत्प्रिय ! ॥ २७ ॥ इति कल्केर्वचः श्रुत्वा धर्मः परम-हर्षितः । गन्तुं कृतमतिस्तेन आधिपत्यममुं स्मरन् ॥ २८ ॥ सिद्धाश्रमे निजजनानवस्थाप्य स्त्रियश्च ताः ॥२९॥ सन्नद्धः साधुसत्कारैर्वेदब्रह्ममहारथः । नानाशास्त्रान्वेषणेषु सङ्कल्प-वरकार्मुकः ॥३०॥ सप्तस्वराश्वो भूदेवसारथिर्वह्निराश्रयः । क्रियाभेदबलोपेतः प्रययौ धर्मनायकः ॥ ३१ ॥ यज्ञदानतपः-पात्रैर्यमैश्च नियमैर्वृतः । खशकाम्बोजकान् सर्वाञ्छबरान् बर्बरानपि ॥ ३२ ॥ जेतुं कल्किर्ययौ यत्र कलेरावासमीप्सि-

करो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ ॥ २७ ॥ कल्कि भगवान् की यह बात सुनकर धर्म्मने परम आनन्द माना और अपने अधिपतिपनेका स्मरण करके कल्कि भगवान्के साथ चलने को उद्यत हुआ ॥ २८ ॥ धर्म्मने कल्कि भगवान्के साथ यात्रा करते समय स्त्री और अनुचरों आदिको सिद्धाश्रममें रखदिया ॥ २९ ॥ धर्मने जिससमय युद्ध करनेको यात्राकी उस समय साधु पुरुषोंका किया हुआ सत्कार उसका संग्राम करनेका वेष हुआ, वेद और ब्रह्म महारथरूप होकर आये, नानाप्रकारके शास्त्रोंको ढूंढते समय श्रेष्ठ सङ्कल्पही उसका धनुषरूप हुआ ॥ ३० ॥ वेदके सात स्वर उसके रथके सात घोड़े हुए, ब्राह्मण उसके सारथि हुए, अग्नि उस धर्म्मका आश्रय अर्थात् बैठनेका आसन हुआ इस प्रकार धर्मरूप स्वामिकार्त्तिकेय, नानाप्रकारकी क्रियाओंके अनुष्ठानरूप बहुतसी सेनाको साथ लेकर चलदिया ॥३१॥ इसप्रकार कल्कि भगवान् यज्ञ, दान, तपस्या, यम, नियम आदिको साथ लेकर खश, काम्बोज, शबर, बर्बर आदि

तम् । भूतवासवलोपेतं सारमेयवराकुलम् ॥ ३३ ॥ गोमांस-पूतिगन्धाढ्यं काकोलूकशिवावृतम् । स्त्रीणां दुर्द्यूतकलह-विवादव्यसनाश्रयम् ॥ ३४ ॥ घोरं जगद्भयकरं कामिनी-स्वामिनं गृहम् । कलिः श्रुत्वोद्यमं कल्केः पुत्रपौत्रवृतः क्रुधा३५ पुरा द्विशसनान् प्रायात् पेचकाक्षरथोपरि । धर्मः कलिं समा-लोक्य ऋषिभिः परिवारितः ॥ ३६ ॥ युयुधे तेन सहसा कल्किवाक्यप्रचोदितः । ऋतेन दम्भः संग्रामे प्रसादो लोभ-माह्वयत् ॥ ३७ ॥ समयादभयं क्रोधो भयं सुखमुपाययौ ।

म्लेच्छोंके जीतनेके लिए कलियुगके रहनेके अभीष्ट स्थानपर गए कलियुगके रहनेका स्थान भूतोंका वासा होनेके कारण दृढ़ होरहा था,उसके चारों ओर कुत्तोंके समूह भरेहुए थे३२।३३ उस स्थानपर गोमांसकी दुर्गन्धि फैलरही थी, काक और उलूकोंके समूह चारों ओर मड़रा रहे थे, वह स्थान स्त्रियोंके कलह, विवाद, नानाप्रकारके व्यसन और जुआ खेलनेका आश्रय था ॥ ३४ ॥ घोररूप और जगत्को भयदायक था, उस नगरके रहनेवाले सब पुरुष स्त्रियोंके वशीभूत थे, युद्ध करनेके निमित्त कल्कि भगवान्की यात्राका वृत्तान्त सुनकर कलि क्रोधमें भरगया और पुत्र, पौत्र आदिको साथमें लेकर उलूककी ध्वजावाले रथपर चढ़कर विशसन नामक नगरसे बाहर आया; ऋषियोंको साथमें लियेहुए धर्म, कलिको देखकर कल्कि भगवान्की आज्ञाके अनुसार उसके साथ युद्ध करने लगा, ऋतके साथ दम्भका युद्ध होनेलगा, प्रसाद लोभको युद्ध करनेके लिये पुकारने लगा ॥ ३५—३७ ॥ अभयके साथ क्रोधका और सुखके

निरयो मुदमासाद्य युयुधे विविधायुधैः ॥ ३८ ॥ आधि-र्योगेन च व्याधिः क्षेमेण च बलीयसा। प्रश्रयेण तथा ग्लानि-र्जरास्मृतिमुपाह्वयत् ॥३९॥ एवं वृत्तो महाघोरो युद्धः परम-दारुणः। तं द्रष्टुमागता देवा ब्रह्माद्याः खे विभूतिभिः ४० मरुः खशैश्च काम्बोजैर्युयुधे भीमविक्रमैः। देवापिः समरे चोलैर्बर्बरैस्तङ्गणैरपि ॥ ४१ ॥ विशाखयूपभूपालः पुलिन्दैः श्वपचैः सह। युयुधे विविधैः शस्त्रैरस्त्रैर्दिव्यैर्महाप्रभैः॥४२॥ कल्किः कोकविकोकाभ्यां वाहिनीभिर्वरायुधैः। तौ तु कोक-विकोकौ च ब्रह्मणो वरदर्पितौ ॥ ४३ ॥ भ्रातरौ

साथ भयका संग्राम होनेलगा, निरय प्रीतिके समीप आकर अनेकों प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे युद्ध करनेलगा ॥ ३८ ॥ आधि (मनकी व्यथा) योगके साथ, और व्याधि बलवान् क्षेमके साथ संग्राम करनेलगा, ग्लानि नम्रताके साथ, जरा (वृद्धावस्था) स्मरणशक्तिके साथ, युद्ध करनेलगी ॥३९॥ इस प्रकार परमदारुण महाघोर युद्ध होने लगा, ब्रह्मा आदि देवता उस युद्धको देखनेके लिये अपनी२ विभूतियों सहित आकाशमार्गमें आये ॥ ४० ॥ मरु भीमपराक्रमी खश और काम्बोजोंके साथ संग्राम करनेलगे, देवापि, चोल (चीन) बर्बर और उनके अनुचरोंके साथ युद्ध करनेलगे ॥ ४१ ॥ विशाखयूप राजा, पुलिन्द और श्वपचोंके साथ महाप्रभाव-शाली अनेकों प्रकारके दिव्य अस्त्र शस्त्रोंके द्वारा संग्राम करनेलगा ॥ ४२ ॥ कल्कि भगवान् अपनी सेनाको साथ लेकर अनेकों प्रकारके उत्तमोत्तम अस्त्रशस्त्रोंके द्वारा कोक विकोकके साथ युद्ध करनेलगे,यह कोक और विकोक ब्रह्माजी

दानवश्रेष्ठौ मत्तौ युद्धविशारदौ । महावीर्यौ महासत्त्वौ देवानां भयवर्द्धनौ ॥ ४४ ॥ पदातिकौ गदाहस्तौ वज्राङ्गौ जयिनौ दिशाम् । शुम्भैः परिवृतौ मृत्युजितावेकत्र योधनात् ॥ ४५ ॥ ताभ्यां स युयुधे कल्किः सेनागणसमन्वितः । शुभानां कल्किसैन्यानां समरस्तुमुलोऽभवत् ॥४६॥ हेषितैर्बृंहितैर्दन्तशब्दैष्टङ्कारनादितैः । शूरोत्कृष्टैर्बाहुवेगैः संशब्दैस्तलताडनैः ॥४७॥ सम्पूरिताः दिशः सर्वा लोका

के वरदानसे बड़े घमण्डमें भररहे थे ॥ ४३ ॥ यह कोक और विकोक नामक दोनों भ्राता दानवोंमें श्रेष्ठ, अतिउन्मत्त और संग्राम करनेमें परम चतुर थे, इन दोनों भ्राताओंमें परस्पर ऐसा मेल था,जैसे एक प्राण दो शरीर हों,ये परम प्रतापी थे, और देवताओंको भी इनसे भय रहता था ॥४४॥ इन दोनोंका शरीर वज्रकी समान कठोर था, दोनों दिग्विजयी थे, ये दोनों भ्राता युद्ध करने पर मृत्युको जीतनेका साहस रखते थे. इन दोनों भ्राताओंने बड़े२ वीरोंकी सेना साथमें लेकर और हाथमें गदा धारण करके पैदल ही युद्ध किया था ॥४५॥ कल्कि भगवान् भी अपनी सेनाको साथ में लिये इन कोक और विकोकके साथ घोर संग्राम करने लगे, कल्कि भगवान्की सेनामेंके प्रधान २ योधा भी घोर संग्राम करनेलगे ॥ ४६ ॥ घोड़ोंकी हिनहिनाहटसे, हाथियों की चिंघारोंसे, दाँतोंकी टक्करोंसे, शूरोंका भुजाओंके वेग से, घूँसोंके प्रहार और चपेटोंकी चोटसे रणभूमिमें बड़ा भारी शब्द होनेलगा ॥ ४७ ॥ उस शब्दसे दशों दिशायें भर गईं, उस समय किसीको भी आराम पानेका अवकाश

नो शर्म लेभिरे । देवाश्च भयसंत्रस्ता दिवि व्यस्तपथा ययुः।४८। पाशैर्दण्डैः खड्गशक्त्यृष्टिशूलैर्गदाघातैर्वाणपातैश्च घोरैः । युद्धे शूराश्छिन्नबाहृवङ्घ्रिमध्याः पेतुः संख्ये शतशः कोटिशश्च ॥ ४९ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कल्किसेनासंग्रामो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सूत उवाच । एवं प्रवृत्ते संग्रामे धर्मः परमकोपनः । कृतेन सहितो घोरं युयुधे कलिना सह ॥ १ ॥ कलिर्दमित्रबाणोघैर्धर्मस्यापि कृतस्य च । पराभूतः पुरीं प्रायात् त्यक्त्वा गर्दभवाहनम् ॥ २ ॥ विच्छिन्नपेचकरथः स्रवद्रक्ताङ्गसञ्चयः ।

नहीं मिला, देवता भयसे घबड़ाकर आकाशमें अस्तव्यस्त मार्गमेंको जानेलगे ॥ ४८ ॥ इस संग्राममें फाँसियोंसे, दंडों से, तलवारोंसे, शक्तियोंसे, त्रिशूलोंसे, ऋष्टियोंसे गदाओंसे और भयङ्कर वाणसमूहोंसे करोडों वीरोंके हाथ पैर और पेट कट २ कर रणभूमिमें गिरने लगे ॥ ४९ छठा अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

सूतजी बोले, कि–हे ऋषियो!इसप्रकार संग्रामका प्रारम्भ होने पर धर्म परमकुपित हुआ और सत्ययुगके साथ मिल कलियुगसे घोर युद्ध करनेलगा ॥१॥ तब तो धर्म और सत्ययुगके भयङ्कर वाणोंसे तिरस्कारको प्राप्त हुआ कलियुग अपनी सवारीके गदहेको छोड़कर अपनी नगरीमेंको भाग गया ॥ २ ॥ उस कलियुगका उलूकके चिन्हकी ध्वजावाला रथ टुकड़े २ होगया, उसके सब शरीरमेंसे रुधिर टपकने लगा, और उसमेंसे महादुर्गन्धि निकलने लगी, मुख अति

क्षुद्गन्धः करालास्यः स्त्रीस्वामिकमगाद्द गृहम् ॥ ३॥ दम्भः सम्भोगरहितोद्धतबाणगणाहतः । व्याकुलः स्वकुलाङ्गारो निःसारः प्राविशद्द गृहम् ॥ ४ ॥ लोभः प्रासादाभिहतो गदया भिन्नमस्तकः । सारमेयरथं छिन्नं त्यक्त्वागाद्रुधिरं वमन् ५ अभयेन जितः क्रोधः कषायीकृतलोचनः । गन्धाखुवाहं विच्छिन्नं त्यक्त्वा विशसनं गतः ॥ ६ ॥ भयं सुखतलाघा-ताद्गतासुर्न्यपतद् भुवि । निरयो मुदमुष्टिभ्यां पीड़ितो यममा-ययौ ॥ ७ ॥ आधिव्याध्यादयः सर्वे त्यक्त्वा वाहमुपाद्रवन् ।

भयङ्करसा होगया, ऐसी दशाको प्राप्त हुआ कलियुग स्त्री-स्वामिक (जहाँ स्त्रीकी ही आज्ञा चलती है ऐसे) स्थानमें घुस गया ॥ ३ ॥ अपने कुलका अङ्गाररूप, निःसार, दम्भ वैराग्यके छोड़े हुए बाणोंसे ताड़ित होकर हृदयमें व्याकुल होता हुआ अपने घरमें घुस गया ॥ ४ ॥ लोभको प्रसादने पीड़ित कर दिया, उसके मस्तकको लातोंसे चूर्ण करदिया, वह कुत्तोंसे जुते हुए अपने रथका चूरा २ होजाने पर उस को छोड़कर रुधिरका वमन करता हुआ भाग गया ॥ ५ ॥ अभयके साथ संग्राम करके पराजयको प्राप्त हुआ क्रोध घबड़ा गया और उसके दोनों नेत्र लाल २ होगये, तब तो दुर्गन्ध युक्त मूसेसे जुते हुए अपने रथको छिन्न भिन्न होजानेके कारण त्यागकर विशसन नगरके भीतर घुस गया ॥ ६ ॥ भय भी सुखके थप्पड़की चोटसे प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिरपड़ा, निरय प्रीतिके घूँसोंकी चोटसे पीडित होकर यम-लोकको चलागया ॥ ७ ॥ आधि व्याधि आदि सम्पूर्ण ही कलियुगके सहायक, सत्ययुगके बाणसमूहोंसे पीडित हो

नानादेशान् भयोद्विग्ना कृतत्राणप्रपीडिताः ॥ ८ ॥ धर्मः कृतेन सहितो गत्वा विशसनं कलेः । नगरं बाणदहनैर्ददाह कलिना सह ॥ ९ ॥ कलिर्विप्लुष्टसर्वाङ्गो मृतदारो मृतप्रजः । जगामैको रुदन् दीनो वर्षान्तरमलक्षितः ॥ १० ॥ मरुस्तु शककाम्बोजान् जघ्ने दिव्यास्त्रतेजसा । देवापिः शबरांश्चोलान् वर्बरास्तंगणानपि ॥ ११ ॥ दिव्यास्त्रशस्त्रसम्पातैरर्दयामास वीर्यवान् । विशाखयूपभूपालः पुलिन्दान् पुक्कसानपि ॥१२॥ जघान विमलप्रज्ञः खड्गपातेन भूरिणा । नानास्त्रशस्त्रवर्षैस्ते योधा नेशुरनेकधा ॥ १३ ॥ कल्किः

कर अपनी २ सवारियोंको त्याग भयभीत होते हुए जिधर तधरको भागगए ॥ ८ ॥ तदनन्तर धर्म सत्ययुगको साथ में लेकर कलियुगकी प्रधान राजधानी विशसन नगरमें गया और बाणोंकी अग्निसे कलियुग सहित उस नगरको भस्म कर दिया ॥ ९ ॥ उस समय कलियुगके सम्पूर्ण अङ्ग जल गए, उसके स्त्री पुत्रादि सम्पूर्ण ही कुटुम्बी यमलोकको पधार गए, तब ता वह इकला ही दीन अन्तःकरणसे रोता हुआ गुप्तरीतिसे भारतवर्षसे अन्यत्र चला गया ॥ १० ॥ इधर मरुने दिव्य अस्त्रोंके समूहसे शक और काम्बोजोंका नाश कर दिया और देवापि राजाने भी शबर, चोल तथा वर्बरोंको इसीप्रकार छिन्न भिन्न करदिया ॥ ११ ॥ परमतेजस्वी विशाखयूप राजाने दिव्य अस्त्र शस्त्रोंका प्रहार करके पुलिन्द और पुक्कसोंको तित्तर वित्तर कर दिया ॥ १२ ॥ वह निर्मलबुद्धि विशाखयूप राजा,निरन्तर तलवार चला कर

तथा और अनेकों प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंको बरसाकर शत्रु-

कोकविकोकाभ्यां गदापाणिर्युधां पतिः । युयुधे विन्यासविज्ञो लोकानां जनयन् भयम् ॥ १४ ॥ वृकासुरस्य पुत्रौ तौ नप्तारौ शकुनेर्हरिः । तयोः कल्किः स युयुधे मधुकैटभयोर्यथा ॥१५॥ तयोर्गदाप्रहारेण चूर्णिताङ्गस्य तत्पतेः । करात् च्युतापतद्भूमौ दृष्ट्वोचुरित्यहो जनाः ॥ १६ ॥ ततः पुनः क्रुधा विष्णुर्जगज्जिष्णुर्महाभुजः । भल्लकेन शिरस्तस्य विकोकस्याच्छिनत् प्रभुः ॥ १७ ॥ मृतो विकोकः कोकस्य दर्शनादुत्थितो

सेनाका संहार करनेलगा, उससमय शत्रुदलके योधाओंमेंसे अनेकों योधा यमलोको पधारगए ॥ १३ ॥ गदा चलाने में चतुर परमवीर कल्कि भगवान्ने हाथमें गदा लेकर कोक विकोकके साथ युद्ध करना प्रारम्भ करदिया, उस संग्रामके समय प्राणियोंके मन भयसे व्याकुल होनेलगे ॥ १४ ॥ वह कोक और विकोक नामवाले दोनों भ्राता वृकासुरके पुत्र और शकुनिके नाती थे, जिस प्रकार हरिने पहले मधु और कैटभके साथ युद्ध किया था तिसीप्रकार कल्कि भगवान् उन महावीर दोनों भ्राताओंके साथ संग्राम करनेलगे १५ युद्ध करते २ उन दोनोंकी गदाओंके प्रहारोंसे कल्कि भगवान्का शरीर चूर २ होगया, हाथमेंसे गदा गिरपडी और अपने आप भी पृथ्वी पर गिर पड़े, ऐसा देखकर सबको अचम्भा सा होगया ॥ १६ ॥ इतने में ही त्रिलोकविजयी महाभुज जगत्पति विष्णुरूप कल्कि भगवान् उठे और क्रोधमें भरकर भालेसे विकोकका मस्तक काटडाला ॥ १७ ॥ यद्यपि इसप्रकार महाबली विकोकका मरण होगया, परन्तु वह अपने भ्राता कोकका दर्शन करते ही मृत्युशय्यासे फिर

बली । तद्द दृष्ट्वा विस्मिता देवाः कल्किश्च परवीरहा ॥१८॥ प्रतिकर्त्तुर्गदापाणेः कोकस्याप्यच्छिनच्छिरः । मृतः कोको विकोकस्य दृष्टिपातात् समुत्थितः ॥ १९ ॥ पुनस्तौ मिलितौ तेन युयुधाते महाबलौ । कामरूपधरौ वीरौ कालमृत्यू इवापरौ ॥ २० ॥ खड्गचर्मधरौ कल्किं प्रहरन्तौ पुनः पुनः । कल्किः क्रुधा तयोस्तद्वद् वाणेन शिरसी हृते ॥ २१ ॥ पुनर्लग्ने समालोक्य हरिश्चिन्तापरोऽभवत् । विसत्त्वस्त्वमथालोक्य तुरगस्तावताडयत् ॥ २२ ॥ कालकल्पौ दुराधर्षौ तुरगेण-

---

उठखड़ा हुआ, यह देखकर देवता और शत्रुपक्षके वीरोंका नाश करनेवाले कल्कि भगवान् भी बड़े अचम्भेमें होगए ॥ १८ ॥ गदाधारी कोकको, विकोकके पुनर्जीवनका कारण होनेसे कल्कि भगवान्ने कोकका भी मस्तक काट डाला, इसप्रकार कोकका मरण होगया, परन्तु यह भी अपने भ्राता विकोकके दृष्टिपातसे तत्काल जीवित होकर उठखड़ा हुआ ॥ १९ ॥ तदनन्तर, इच्छाके अनुसार रूप धारण करनेवाले महाबली कोक और विकोक दोनों भ्राता फिर इकट्ठे होकर दूसरे काल और मृत्युकी समान कल्कि भगवान्के साथ युद्ध करनेलगे ॥ २० ॥ वे दोनों ढाल तलवार लेकर कल्कि भगवान्के ऊपर वारम्वार प्रहार करनेलगे, तब तो कल्कि भगवान्ने क्रोधमें भरकर बाणसे उन दोनोंके शिर एकसाथ कटडाले ॥ २१ ॥ परन्तु दोनोंके शिर फिर लगगए, ऐसा देखकर कल्कि भगवान् चिन्तासे अत्यन्त ही व्याकुल हुए, तदनन्तर कल्कि भगवान्का घोड़ा, कोक और विकोकको प्रहार करते देखकर उनके ऊपर बढ़े

दिंतौ भृशम् । कल्केस्तं जघ्नतुर्बाणैरमर्षात्ताम्रलोचनौ ॥२३॥ तयोर्भुजान्तरं सोऽश्वः क्रुधा समदशद्ध भृशम् । तौ तु प्रभिन्नास्थिभुजौ विशस्ताङ्गदकार्मुकौ । पुच्छं जगृहतुः सक्रोधौ पुच्छं बालकाविव ॥ २४ ॥ धृतपुच्छौ तु तौ ज्ञात्वा सप्तिः परमकोपनः । पश्चात् पद्भ्यां दृढं जघ्ने तयोर्वक्षसि वज्रवत् ॥ २५ ॥ त्यक्तपुच्छौ मूर्च्छितौ तौ तत्क्षणात् पुनरुत्थितौ । पुरतः कल्किमालोक्य बभाषाते स्फुटाक्षरौ ॥ २६ ॥ ततो ब्रह्मा तमभ्येत्य कृताञ्जलिपुटः शनैः । प्रोवाच कल्किं नैत्राम्

वेगसे प्रहार करनेलगा ॥ २२ ॥ यमराजकी समान किसी से तिरस्कारको प्राप्त न होनेवाले कोक और विकोक, कल्कि भगवान्के घोड़ेसे अत्यन्त तिरस्कारको पाकर क्रोधमें भरगए और लाल २ नेत्र करके उस घोड़ेके ऊपर बाणोंके प्रहार करनेलगे ॥ २३ ॥ उस समय घोड़ेने भी क्रोधमें भरकर कोक और विकोककी भुजाओंको काटडाला, तब तो दोनों के भुजाओंकी हड्डी चूर चूर होगई, बाजूबन्द और धनुष का भी चूरा २ होगया, फिर जिसप्रकार बालक गौकी पूंछ पकड़ लेता है तिसीप्रकार उन दोनोंने घोड़ेकी पूंछ पकड़ली ॥२४॥ उनको पूंछ पकड़ते देखकर घोड़ा अत्यन्त ही क्रोधमें भरगया और उसने पीछेकी दोनों लातोंसे बडे. जोरसे वज्रकी समान उनके हृदय पर प्रचण्ड प्रहार किया २५ तब तो कोक और विकोक मूर्च्छित होकर पूंछको छोड़ पृथ्वी पर गिरपड़े और उसी समय फिर उठखड़े हुए, तथा उन दोनोंने सामने कल्कि भगवानको देखकर उनको स्पष्ट अक्षरोंसे फिर युद्ध करनेको बुलाया ॥ २६ ॥

शस्त्रास्त्रैर्वधमर्हतः ॥२७॥ करात्रातादेककाले उभयोर्निर्मितो वधः। उभयोर्दर्शनादेव नोभयोर्मरणं क्वचित्। विदित्वेति कुरुष्वात्मन्! युगपच्चानयोर्वधम् ॥ २८ ॥ इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा त्यक्तशस्त्रास्त्रवाहनः। तयोः प्रहरतोः स्वैरं कल्किर्दानवयोः क्रुधा। मुष्टिभ्यां वज्रकल्पाभ्यां बभञ्ज शिरसी तयोः ॥२९॥ तौ तत्र भग्नमस्तिष्कौ भग्नशृंगावगाविव। पेततुर्दिवि देवानां भयदौ भुवि बाधकौ ॥ ३० ॥ तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं गन्धर्वाप्सरसां गणाः। ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्च मुनयः

उस समय ब्रह्माजी कल्कि भगवान्के पास आकर हाथ जोड़े हुए धीर २ कहनेलगे, कि-यह कोक और विकोक अस्त्र अथवा शस्त्रसे नहीं मरेंगे ॥ २७ ॥ हे परमात्मन्! एकसाथ हाथका प्रहार करनेसे दोनोंका मरण होसक्ता है, इन दोनोंमें एकके दृष्टिपातसे दूसरा मृतक भी जीवित होजायगा, ऐसा जानकर आप एकसाथ दोनोंका वध करिये ॥ २८ ॥ कल्कि भगवान्ने ब्रह्माजीके इस वाक्यको सुनकर सवारी और अस्त्र शस्त्रोंको त्याग दिया और धीरे २ प्रहार करते हुए उन दोनों दैत्योंके बीचमें जाकर अत्यन्त क्रोधपूर्वक एकसाथ दो घूँसे मारकर उन दोनोंके मस्तकोंको चूर २ करदिया ॥ २९ ॥ स्वर्गलोकमें स्थित देवताओंको भी भय देनेवाले, सबके अहितकारक वे दोनों दानव शिर टूटजाने पर शिखरटूटे हुए दो पर्वतोंकी समान पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ ३० ॥ ऐसा परमअद्भुत कल्कि भगवान्का पराक्रम देखकर गंधर्व गान करनेलगे, अप्सराओंने नृत्य करनेका प्रारम्भ करदिया, मुनिगण स्तुति करने लगे

सिद्धचारणाः । देवाश्च कुसुमासारैर्ववृषुर्हृष्टमानसाः ॥३१॥ दिवि दुन्दुभयो नेदुः प्रसन्नाश्चाभवन् दिशः । तयोर्वधप्रमुदितः कविर्दशसहस्रकान । साश्वान् महारथान्साक्षादहनद्दिव्यसायकैः ॥ ३२ ॥ प्राज्ञः शतसहस्राणां योधानां रणमूर्द्धनि । चयं निन्ये सुमन्त्रस्तु रथिनां पञ्चविंशतिम् ॥३३॥ एवमन्ये गर्ग्यभर्ग्यविशालाद्या महारथान् । निजघ्नुः समरे क्रुद्धा निषादान् म्लेच्छवर्वरान् ॥ ३४ ॥ एवं विजित्य तान् सर्वान् कल्किर्भूपगणैः सह । शय्याकर्णांश्च भल्लाटनगरं जेतुमाययौ ॥ ३५ ॥ नानावाद्यैर्लोकसंघैर्वरास्त्रैः नानावस्त्रै-

देवता सिद्ध और चारणोंके समूह हृदयमें प्रसन्न होकर पुष्पों की वर्षा करनेलगे ॥ ४१ ॥ तदनन्तर कविने कोक और विकोकके वधसे आनन्द पाकर और प्रोत्साहित होकर दिव्य अस्त्रोंसे घोड़े और रथोंके सहित दश हजार महारथी वीरों का स्वयं नाश किया ॥ ३२ ॥ उस संग्रामभूमिमें प्राज्ञने एक लाख योधाओंको गिराया, सुमन्त्रके हाथसे भी पचीस हजार रथी मारे गए ॥ ३३ ॥ इसी प्रकार गर्ग्य, भर्ग्य आदि वीरोंने क्रोधमें भरकर उस समय म्लेच्छ, वर्वर और निषादों का नाश किया ॥ ३४ ॥ राजाओं सहित कल्कि भगवान् इस प्रकार सम्पूर्ण धर्म्मद्वेषी शत्रुओंको जीतकर शय्याकर्णों के अधिकारमें जो भल्लाटनगर था उसको जीतनेके लिये चल दिये ॥३५॥ और कल्कि भगवान्की बड़ी भारी सेना भी उनकी आज्ञाके अनुसार युद्ध करनेको चलदी, उस समय अनेकों प्रकारके बाजोंके शब्दोंसे दशों दिशायें गूँजने लगीं, नानाप्रकारके उत्तम २ अस्त्रोंको धारण करनेवाले अनेकों

भूषणैर्भूषिताङ्गैः । नानावाहैश्चामरैर्वीज्यमानैः यात्से योद्धुं कल्किरत्युग्रसेनः ॥ ३६ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कोक-
विकोकादीनां वधो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

सूत उवाच । सेनागणैः परिवृतः कल्किर्नारायणः प्रभुः । भल्लाटनगरं प्रायात् खड्गधृक् सप्तिवाहनः ॥१॥ स भल्लाटेश्वरो योगी ज्ञात्वा विष्णुं जगत्पतिम् । निजसेनागणैः पूर्णो योद्धुकामो हरिं ययौ ॥ २ ॥ स हर्षोत्पुलकः श्रीमान् ! दीर्घाङ्गः कृष्णभावनः । शशिध्वजो महातेजा गजायुतबलः सुधी ॥ ३ ॥ तस्य पत्नी महादेवी विष्णुव्रतपरायणा ।

वीर उनके साथ चले अनेकों प्रकारकी सवारियें चलीं और चारों ओरसे कल्कि भगवान्के ऊपर चँवर डुलने लगे॥३६॥
सातवाँ अध्याय समाप्त॥ ७ ॥

सूतजी कहते हैं, कि–हे ऋषियों ! नारायण प्रभु कल्कि भगवान् हाथमें खड्ग लेकर घोड़े पर चढे और अनगिनत सेनाको साथमें लिये हुए भल्लाटनगरको चलदिये ॥१॥ परमयोगी भल्लाटनगरका राजा यह सुनकर, कि–साक्षात् विष्णु भगवान्के पूर्णावतार जगत्पति कल्कि भगवान् संग्राम करनेकी इच्छासे सेनाको साथमें लिये हुए आरहे हैं, परम प्रसन्न हुआ, हर्षके कारण उसके सम्पूर्ण शरीर पर रोमांच खड़े होगये, क्योंकि–वह शशिध्वज नामक भल्लाटदेशका राजा श्रीकृष्ण भगवान्के ध्यानमें तत्पर रहता था, और श्रेष्ठबुद्धि श्रीमान, सर्वाङ्गसुन्दर और महातेजस्वी था ॥२॥३॥ इस शशिध्वज राजाकी स्त्रीका नाम सुशान्ता था, वह

सुशान्ता स्वामिनं प्राह कल्किना योद्धुमुद्यतम् ॥ ४ ॥ नाथ कान्तं जगन्नाथं सर्वान्तर्यामिनं प्रभुम् । कल्किं नारायणं साक्षात् कथं त्वं प्रहरिष्यसि ॥ ५ ॥ शशिध्वज उवाच । सुशान्ते ! परमो धर्मः प्रजापतिविनिर्मितः । युद्धे प्रहारः सर्वत्र गुरौ शिष्ये हरेरिव ॥ ६ ॥ जीवतो राजभोगः स्यान्मृतः स्वर्गे प्रमोदते । युद्धे जयो वा मृत्युर्वा क्षत्रियाणां सुखावहः ७ सुशान्तोवाच । देवत्वं भूपतित्वं वा विषयाविष्टकामिनाम् ।

सुशान्ता पटरानी और अनेकों प्रकारके विष्णुभगवान्के व्रतों को धारण करनेवाली थी, वह राजधर्म्मके अनुसार कल्कि भगवान्के साथ युद्ध करनेको उद्यत हुए अपने पतिसे कहने लगी ॥ ४ ॥ कि-हे नाथ ! जो जगत्के स्वामी हैं, सम्पूर्ण जगत् जिनकी प्रार्थना करता है और जो सबके अन्तर्यामी हैं, उन साक्षात् नारायण कल्कि भगवान्के ऊपर तुम किस प्रकार प्रहार करोगे ? ॥ ५ ॥ यह सुनकर शशिध्वज बोला, कि-हे सुशान्ते ! पितामह ब्रह्माजीने इसप्रकार धर्म्मका निर्णय किया है, कि-संग्राममें इन श्रीहरि कल्कि भगवान् की समान गुरु पुरुषोंके ऊपर तथा शिष्यके शरीर पर प्रहार करनेमें कोई दोष नहीं है ॥ ६ ॥ यदि जीवित रहकर संग्रामभूमिसे लौट आता है तो पुरुष अखण्ड राज्यको भोगता है, और यदि युद्धमें मरण होजाता है तो वह संग्राम-भूमिमें प्राण त्यागनेवाला पुरुष स्वर्गलोकमें आनन्द भोगता है, इसकारण ही क्षत्रियोंका रणमें मरण हो, चाहे जय हो, दोनों ही परमसुखके कारण हैं ॥ ७ ॥ इसप्रकार पतिके कहनेको सुनकर सुशान्ता बोली, कि-हे नाथ ! जो पुरुष कामी हैं,

उन्मदानां भवेदेव न हरेः पादसेविनाम् ॥ ८ ॥ त्वं सेवकः स चापीशस्त्वं निष्कामः स चाप्रदः । युवयोर्युद्धमिलनं कथं मोहाद् भविष्यति ॥ ९ ॥ शशिध्वज उवाच । द्वन्द्वातीते यदि द्वन्द्वमीश्वरे सेवके तथा । देहावेशाल्लीलयैव सा सेवा स्या-त्तथा मम ॥१०॥ देहावेशादीश्वरस्य कामाद्या दैहिका गुणाः। मायाङ्गा यदि जायन्ते विषयाश्च न किं तथा ॥११॥ ब्रह्मतो ब्रह्मतेशस्य शरीरित्वे शरीरिता । सेवकस्याभेददृशस्त्वेवं

जिनका चित्त सदा विषयोंमें आसक्त रहता है और जो विषयके मदसे उन्मत्त होरहे हैं, वे ही युद्धमें जय होने पर अखण्ड राज्यको और मरण होने पर स्वर्गप्राप्तिको परम पुरुषार्थ मानते हैं, परन्तु जो पुरुष श्रीहरिके चरण कमलों की सेवा करते हैं, वे उस अखण्ड राज्य और स्वर्गलोक को अत्यन्त तुच्छ मानते हैं ॥ ८ ॥ हे नाथ ! तुम सेवक हो वह स्वामी हैं, तुम निष्काम हो इसकारण वह फल देनेवाले नहीं हैं, ऐसी अवस्थामें मोहका कार्य जो दोनोंका संग्राम होना उसकी किसप्रकार सम्भावना होसक्ती है ? ॥ ९ ॥ यह सुनकर शशिध्वज बोला, कि-हे प्रिये ! सुख दुःखादि द्वन्द्वोंसे रहित ईश्वर और सेवक दोनोंके देहधारणकी हेतु रूप मायाके कारण यदि द्वन्द्वोंका आरोप (मिथ्या प्रतीत) है तो हमारा संग्राम आदि भी लीलाके कारण सेवामें ही गिना जायगा ॥ १० ॥ यदि ईश्वरको देहका अध्यास होने से यह मायाके अङ्ग काम, क्रोध आदि दैहिक (देहके) गुण आरोपित होते हैं तो क्या सम्पूर्ण विषय आरोपित नहीं होंगे ॥११॥ सच्चिदानन्द ईश्वरमें जिस समय ब्रह्मता

जन्मलयोदयाः ॥ १२ ॥ सेवकता विष्णोर्मायया सेवेति परिकीर्त्तिता । द्वैताद्वैतस्य चेष्टैषा त्रिवर्गजनिका सताम् ॥ १३ ॥ अतोऽहं कल्किना योद्धुं यामि कांते स्वसेनया । त्वं तं पूजय कान्तेऽद्य ! कमलापतिमीश्वरम् ॥ १४ ॥ कृतार्थोऽहं त्वया-विष्णुसेवा सम्मिलितात्मना । स्वामिन्निह परत्रापि वैष्णवी प्रथिता गतिः ॥ १५ ॥ इति तस्या वल्गुवाग्भिः प्रणतायाः शशिध्वजः । आत्मानं वैष्णवं मेने साश्रु-

होती है, उस समय वह ब्रह्म होता है, जिस समय शरीरीपना होता है, उस समय शरीरी होता है, इसीप्रकार जिस सेवकका भेदज्ञान दूर होजाता है उसके जन्म लय और वृद्धि भी दूर होजाते हैं अर्थात् उपाधिभेदसे ही सेवकके नामभेद आदि हैं ॥ १२ ॥ यह सेवा करने योग्य है, यह सेवा करनेवाला है, इसप्रकारका जो व्यवहार है सो केवल विष्णु भगवान्की ही माया है, यह द्वैत अद्वैतका विचार साधु पुरुषोंको धर्म, अर्थ कामरूप त्रिवर्गका देनेवाला है१३ हे प्रिये ! इसकारण मैं कल्कि भगवान्के साथ संग्राम करनेके लिए अपनी सेनाको साथमें लेकर जाता हूँ, हे प्रिये ! अब तुम उन ही कमलापति विष्णु भगवान्का पूजन करो ॥१४॥ ऐसा सुनकर सुशान्ता बोली, कि–हे स्वामिन् ! तुम विष्णु भगवान्की सेवा करके उन विष्णु भगवान्में ही एकताको प्राप्त होजाओगे, तब ही मैं कृतार्थ होऊँगी, इस लोकमें और परलोकमें एक विष्णु भगवान्को छोड़कर दूसरी कोई गति नहीं है ॥१५॥ जब सुशान्ताने नम्रतापूर्वक यह बात कही तब तो महाराजा शशिध्वज नेत्रोंमें जल भरकर विष्णु भगवान्

नेत्रो हरिं स्मरन् ॥ १६ ॥ तामालिङ्गय प्रमुदितः शूरैर्बहुभिरावृतः । तन्नाम स्मरन् रूपं वैष्णवैर्योद्धुमाययौ१७गत्वा तु कल्किसेनायां विद्राव्य महतीं चमूम् ।शय्यकर्णगणैर्वीरैः सन्नद्धैरुद्यतायुधैः १८शशिध्वजसुतः श्रीमान् । सूर्यकेतुर्महाबलः । मरुभूपेन युयुधे वैष्णवो धन्विनां वरः ॥ १९ ॥ तस्यानुजो बृहत्केतुः कान्तः कोकिलनिस्वनः । देवापिना स युयुधे गदायुद्धविशारदः ॥ २० ॥ विशाखयूपभूपस्तु शशिध्वज-

का स्मरण करनेलगे और अपनेको परमवैष्णव माना १६ तदनन्तर राजा शशिध्वजने प्रसन्न होकर परमप्रिया सुशांता को हृदयसे लगाया और अनेकों वीरोंको साथ लेकर श्रीहरि-श्रीहरि उच्चारण करता हुआ तथा श्रीहरिके रूपका स्मरण करताहुआ युद्ध करनेको विष्णुभक्तोंको साथ लेकर चलदिया ॥ १७ ॥ राजा शशिध्वजने कल्कि भगवान्की सेनामें घुसकर कल्कि भगवान्की उस बड़ीभारी सेनाका किला तोड़दिया और महावीर, वीररससे उन्मत्त हुए शय्याकर्ण नामक योधा अस्त्रशस्त्रोंको चलाकर कल्किभगवान् की सेनासे संग्राम करनेलगे ॥ १८ ॥ महाधनुर्धारी परमबली परमविष्णुभक्त शशिध्वजका पुत्र श्रीमान् सूर्य्यकेतु सूर्य्यवंशी राजा मरुके साथ युद्ध करनेलगा ॥ १९ ॥ सूर्यकेतुका छोटा भ्राता बृहत्केतु अतीव रमणीय मूर्त्ति कोकिलाकी समान मधुरस्वरसे बोलनेवाला और गदायुद्ध करनेमें परमप्रवीण था, वह देवापिके साथ संग्राम करने लगा ॥२०॥ विशाखयूप राजा बहुतसे हाथियोंपर चढ़े हुए वीरोंको साथमें लेकर अनेकों प्रकारके अस्त्रशस्त्रोंको छोड़ता

न्दृषेण च । युयुधे विविधैः शस्त्रैः करिभिः परिवारितः २१
रुधिराश्वो धनुर्धारी लघुहस्तः प्रतापवान् । रजस्यनेन युयुधे
भर्ग्यः शान्तेन धन्विना ॥ २२ ॥ शूलैः प्रासैर्गदाघातैर्बाण-
शक्त्यृष्टितोमरैः । भल्लैः खड्गैर्भुशुण्डीभिः कुन्तैः समभव-
द्रणः ॥ २३ ॥ पताकाभिर्ध्वजैश्चिन्हैस्तोमरैश्छत्रचामरैः ।
प्रोद्धूतधूलिपटलैरन्धकारो महानभूत् ॥ २४ ॥ गगनेऽनुघना
देवाः के वा वासं न चक्रिरे । गन्धर्वैः साधुसन्दर्भैर्गायनैर-
मृतायनैः ॥२५॥ द्रष्टुं समागताः सर्वे लोकाः समरमद्भुतम् ।
शंखदुन्दुभिसन्नादैरास्फोटैर्बृंहितैरपि ॥ २६ ॥ हेषितैर्योध-
नोत्कृष्टैर्लोका मूका इवाभवन् । रथिनो रथिभिः सार्कं पदा-

हुआ शशिध्वज राजाके साथ युद्ध करनेलगा ॥ २१ ॥
लालवर्णके घोड़ेपर चढ़ाहुआ अतिशीघ्र बाण छोड़नेमें
प्रसिद्ध धनुष्धारी परमप्रतापवान् भर्ग्य, धूलिसमूहमें ही
धनुर्धारी शान्तके साथ युद्ध करनेलगा ॥ २२ ॥ इसप्रकार
शूल, प्रास, गदा, बाण, शक्ति, ऋष्टि, तोमर, भाले और
तलवारोंसे महाघोर संग्राम होनेलगा ॥ २३ ॥ पताकाओंसे,
ध्वजाओंसे, राजाओंके अपने २ चिन्होंसे,तोमरोंसे, छत्रोंसे,
चँवरोंसे और उड़ेहुए धूलिके समूहसे संग्रामभूमिमें बड़ा
भारी अन्धकार होगया ॥ २४ ॥ देवता मेघमण्डलोंकी ओट
में खड़े होकर युद्धको देखनेलगे, गन्धर्व सुन्दर कविताओंका
मधुर गान करतेहुए संग्रामको देखनेलगे ॥ २५ ॥ सम्पूर्ण
लोकपाल और लोकोंके निवासी उस अद्भुत संग्रामके
देखनेको आए, रणभूमिमें शङ्खदुन्दुभियोंके शब्दोंसे, वीरों
की ललकारसे हाथियोंकी चिंघारसे, घोड़ोंकी हिनहिनाहट

ताश्च पदातिभिः ॥ २७ ॥ हया हयैरिभाश्चेभैः समरोऽमर-दानवैः । यथाभवत् स तु घनो यमराष्ट्रविवर्द्धनः ॥ २८ ॥ शशिध्वजचमूनाथैः कल्किसेनाधिपैः सह । निपेतुः सैनिका भूमौ छिन्नबाह्वङ्घ्रिकन्धराः ॥ २९ ॥ धावन्तोऽतिब्रुवन्तश्च विकुर्वन्तोऽसृगुक्षिताः ॥ ३० ॥ उपर्युपरि संछन्ना गजाश्व-रथमर्दिताः । निपेतुः प्रधने वीराः कोटिकोटिसहस्रशः । भूते सानन्दसन्दोहाः स्रवन्तो रुधिरोदकम् ॥ ३१ ॥

और अस्त्रशस्त्रोंमें परस्पर टक्कर लगनेके शब्दसे सब पुरुष गूंगोंकी समान प्रतीत होनेलगे अर्थात् उस समय किसीका शब्द कोई नहीं सुनसकता था; हाथियोंपर सवार योधा हाथीसवारोंके साथ, पैदल पैदलोंके साथ, घुड़सवार घुड़सवारोंके साथ और हाथी हाथियोंके साथ संग्राम करने लगे, देवता और दैत्योंके संग्रामकी समान इस संग्राममें भी यमराजकी प्रजाकी संख्या बढ़ने लगी॥२६-२८॥शशिध्वजके सेनापति वीर, कल्कि भगवान्के सेनापति वीर तथा और भी बहुतसे सेनाके वीर हाथ,चरण और मस्तकरहित होकर संग्रामभूमिमें गिरने लगे ॥२९॥ कोई२ चोट खाकर भागने लगे, कोई चिल्लानेलगे, कोई २ घबड़ाकर अस्तव्यस्त स्वरसे चिल्लानेलगे, कोई२ वीर संपूर्ण शरीरमें रुधिरकी धाराओं से भीजगए, इसप्रकार एकके ऊपर एकने गिरकर भूमिको छादिया, कोई हाथियोंके पैरोंसे कुचल गए, कोई घोड़ोंकी लातोंके मारे प्राणहीन होकर गिरपडे, और कोई रथोंके पहियोंसे पिचकर प्राणरहित होगए॥३०॥ उसप्रकार उस संग्राममें हजारों और करोडों वीरपुरुष प्राणहीन होकर

उष्णीषहंसाः सञ्छिन्नगजरोधोरथप्लवाः । करोरुमीनाभरण-प्रसिक्ताञ्चनवालुकाः ॥ ३२ ॥ एवं प्रवृत्ताः संग्रामे नद्यः सद्योऽतिदारुणाः । सूर्यकेतुस्तु मरुणा सहितो युयुधे बली ३३ कालकल्पो दुराधर्षो मरुं बाणैरताडयत् । मरुस्तु तत्र दशभिर्मार्गणैरर्दयद्द भृशम् ॥ ३४ ॥ मरुबाणाहतो वीरः सूर्यकेतुरमर्षितः । जघान तुरगान् कोपात् पादोद्घातेन तद्रथम् ३५ चूर्णयित्वाऽथ तेनापि तस्य वक्षस्यताड़यत् । गदाघातेन

रणभूमिमें गिरपड़े, रणभूमिमें रुधिरकी नदी बहनेलगी, उस रुधिरकी नदीके वहनेसे पिशाच, राक्षस, गीदड़ और गिज्ज आदि प्राणियोंको बड़ा आनन्द हुआ ॥ ३१ ॥ उस रुधिरकी नदीमें गिरे हुए शूरोंके टोप हंसोंकी समान प्रतीत होनेलगे, और मृत्युको प्राप्त होकर गिरेहुए हाथी तटकी समान शोभायमान होनेलगे, रथोंके समूह नौकाओंकी समान प्रतीत होनेलगे कटे हुए बहुतसे हाथ और पैर मछलिया की समान प्रतीत होनेलगे, टूटेहुए तलवारोंके टुकड़े वालुका के चमकीले कणोंकी समान प्रतीत होनेलगे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार उस समय रणभूमि अतिभयङ्कर नदी बन गई, महाबली सूर्यकेतु, मरुके साथ युद्ध करनेलगे ॥३३॥ काल की समान दुधर्ष (किसीसे तिरस्कारको प्राप्त न होनेवाले) सूर्यकेतुने बाणोंके प्रहारसे मरुको व्याकुल करदिया मरुने भी दश बाण छोड़ कर सूर्यको बहुत ही घायल कर दिया ३४ वीर सूर्यकेतु मरुके बाणोंसे विधकर क्रोधमें भरगया और उसके सम्पूर्ण घोड़ोंको मारडाला तथा लातोंके प्रहारसे उसके रथका चूरा २ करदिया, फिर गदाको घुमाकर मरुके

तेनापि मरुर्मूर्च्छामवाप ह ॥३६॥ सारथिस्तमपोवाह रथेनान्येन धर्मवित् । बृहत्केतुश्च देवापिं बाणैः प्राच्छादयद्वली ॥ ३७ ॥ धनुर्विकृष्य तरसा नीहारेण यथा रविम् । स तु बाणमयं वर्षं परिवार्य निजायुधैः ३८ ॥ बृहत्केतुं दृढं जघ्ने कंकपत्रैः शिलाशितैः । भिन्नं शूलमथालोक्य धनुर्गृह्य पतत्रिभिः ॥ ३९ ॥ शितधारैः स्वर्णपुंखैर्गार्धपत्रैरयोमुखैः । देवापिमाशुगैर्जघ्ने बृहत्केतुः ससैनिकम् ॥ ४० ॥ देवापिस्तद्धनुर्दिव्यं चिच्छेद निशितैः शरैः । छिन्नधन्वा बृहत्केतुः

वक्षःस्थलमें बड़ी जोरसे प्रहार किया, उस प्रहारसे मूर्च्छित होकर मरु पृथ्वी पर गिरपड़ा ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ धर्म्मको जाननेवाला सारथी अपने स्वामी मरुको दूसरे रथपर उठा कर लेगया, इधर महाबली बृहत्केतुने देवापिको बाणोंसे ढक दिया ॥ ३७ ॥ जिसप्रकार कुहरसे सूर्य ढकजाता है तिसीप्रकार उस समय बाणोंसे ढके हुए देवापिने तत्काल अपने धनुषसे छोड़े हुए बाणोंके द्वारा उसके बाणोंकी वर्षाको दूर करदिया ॥ ३८ ॥ फिर उस देवापिने शिला पर सान धरे हुए अतितीखे बाणोंसे बृहत्केतुके बड़े २ अस्त्रोंके टुकड़े २ कर दिये, तब तो बृहत्केतु ने फिर धनुष उठाया और उस पर बाण चढ़ाये ॥ ३९ ॥ और सुवर्णके पीछेके भागसे शोभायमान गिज्जके परोंसे युक्त तथा लोहेका है अग्रभाग जिनका ऐसे तीखे बाणोंका देवापिके ऊपर प्रहार करनेलगा ॥ ४० ॥ देवापिने भी तीखे बाणोंसे बृहत्केतुके उस दिव्य धनुषको टुकड़े २ कर दिया, जब बृहत्केतुके धनुषके टुकड़े २ होगये, तब तो उसने

खड्गपाणिर्जिघांसया ॥ ४१ ॥ देवापेः सारथिं साश्वं जघ्ने शूरो महामृधे। स देवापिर्धनुस्त्यक्त्वा तलेनाहत्य तं रिपुम् ४२ भुजयोरन्तरानीय निष्पिपेष स निर्दयः। तं द्व्यष्टवर्षं निष्क्रान्तं मूर्च्छितं शत्रुणार्दितम् ॥ ४३ ॥ अनुजं वीक्ष्य देवापिर्मूर्ध्नि सूर्यध्वजोऽवधीत् । मुष्टिना वज्रपातेन सोऽपतन्मूर्च्छितो भुवि । मूर्च्छितस्य रिपुः क्रोधात् सेनागणमताडयत् ॥ ४४ ॥ शशिध्वजः सर्वजगन्निवासं कल्किं पुरस्तादभिसूर्यवर्चसम् । श्यामं पिशङ्गाम्बरमम्बुजेक्षणं बृहद्भुजं चारुकिरीटभूषणम् ४५ नानामणिव्रातचिताङ्गशोभया निरस्तलोकेक्षणहृत्तमोमयम् ।

देवापिका वध करनेकी इच्छासे तलवार धारण की ॥४१॥ फिर उस वीर बृहत्केतुने उस घोर सग्राममें देवापिके घोड़े और सारथीको मारडाला,तब तो देवापिने धनुषको त्यागकर उस शत्रु (बृहत्केतु) के एक चपेटा मारा ॥४२॥ और उसको दोनों भुजाओंके बीचमें लाकर निर्दयीपनेसे कुचलडाला अट्ठाईस वर्षका बृहत्केतु शत्रुसे पीडित होकर तत्काल मूर्छित होगया और मृतक (मरेहुए) की समान पृथ्वी पर गिर पड़ा॥४३॥राजा सूर्यकेतुने छोटे भ्राताकी यह दशा देख कर वज्रके प्रहारकी समान एक घूँसा देवापिके मस्तकमें मारा,तब तो देवापि भी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिरपड़ा, देवापिका शत्रु सूर्यकेतु देवापिको मूर्च्छित देखकर उसकी सेनाके ऊपर निर्दयीपनेसे प्रहार करनेलगा ॥ ४४ ॥ इधर राजा शशिध्वजने रणभूमिमें सन्मुख खड़ेहुए कल्कि भगवान्का दर्शन किया, वह कल्कि भगवान् सूर्यकी समान तेजस्वी और श्याम वर्ण थे, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके एकमात्र आधार

विशाखयूपादिभिरावृतं प्रभुं ददर्श धर्मेण कृतेन पूजितम्॥४६

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे शशिध्वज कल्किसेनयोर्युद्धं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

सूत उवाच । हृदि ध्यानास्पदं रूपं कल्केर्दृष्ट्वा शशिध्वजः । पूर्णं खड्गधरं चारु तुरगारूढमब्रवीत् ॥ १ ॥ धनुर्बाणधरं चारु विभूषणवराङ्गकम् । पापतापविनाशार्थमुद्यतं जगतां परम् ॥ २ ॥ प्राह तं परमात्मानं हृष्टरोमा शशिध्वजः ।

हैं, जिनके दोनों नेत्र कमलकी समान थे; जिनका मस्तक मनोहर किरीटसे शोभायमान होरहा था ॥४५॥ यह कल्कि भगवान् अनेकों प्रकारकी मणियोंसे भूषित शरीरकी शोभा के द्वारा सम्पूर्ण प्राणियोंके नेत्र और हृदयोंके अन्धकार को दूर कररहे थे, विशाखयूप आदि राजे उन कल्कि भगवान्के चारों ओर खड़े हुए थे धर्म और सत्ययुग कल्कि भगवान्का पूजन करनेमें लगे हुए थे ॥४६॥ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

सूतजी कहते हैं, कि—हे ऋषियो ! राजा शशिध्वज, हृदयमें ध्यान करने योग्य मनोहर घोड़े पर चढ़ेहुए खड्गधारी पूर्णावतार कल्कि भगवान्का दर्शन करके कहनेलगा कि—॥ १ ॥ क्योंकि–यह त्रिलोकीनाथ कल्कि भगवान् धनुषबाणधारी मनोहर आभूषणोंसे भूषित अपनी मूर्त्तिके द्वारा प्राणियोंके पाप और तापोंका नाश करनेके लिये उद्यत थे, इसकारण उन कल्कि भगवान्का दर्शन करते ही राजा शशिध्वजके शरीर पर रोमाञ्च खड़े होगये और उन-परमात्मा कल्कि भगवान्से कहनेलगा, कि–हे पुण्डरीकाक्ष

एह्येहि पुण्डरीकाक्ष ! प्रहारं कुरु मे हृदि ॥ ३ ॥ अथवात्मन् बाणभिया तमोऽन्धे हृदि मे विश । निर्गुणस्य गुणज्ञत्वमद्वैतस्यास्त्रताडनम् ॥ ४ ॥ निष्कामस्य जयोद्योगसहायं यस्य सैनिकम् । लोकाः पश्यन्तु युद्धे मे द्वैरथे परमात्मनः ॥ ५ ॥ परबुद्धिर्यदि दृढं प्रहर्त्ता विभवे त्वयि । शिवविष्णोर्भेदकृते लोकं यास्यामि संयुगे ॥ ६ ॥ इति राज्ञो वचः श्रुत्वा अक्रोधः क्रुद्धवद्विभुः । बाणैरताडयत् संख्ये धृतायुधमरिन्दमम् ॥७॥ शशिध्वजस्तत्प्रहारमगणय्य वरायुधैः । तं जघ्ने बाणवर्षेण

आइये ! मेरे हृदय पर प्रहार कीजिये ! ॥२ ॥ ३॥ अथवा हे परमात्मन् ! मेरे बाणोंके प्रहारके भयसे अज्ञानरूप अन्धकारसे भरेहुए मेरे हृदयमें प्रवेश करके छुप जाइये,जो निर्गुण होकर भी गुणोंको जानते हैं, जो अद्वय होकर भी अस्त्र शस्त्रोंका प्रहार करनेको उद्यत होरहे हैं, और जो निष्काम होकर भी जयकी प्राप्तिके लिये सेनाओंका संहार कररहे हैं, उन परमात्माके साथ मैं शशिध्वज युद्ध करनेको प्रवृत्त होता हूँ; सब पुरुष देखें ॥ ४ ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! यद्यपि तुम विभु हो तथापि तुम्हारे ऊपर शस्त्रका दृढ़ प्रहार करूँगा क्योंकि–प्रहार करने पर यदि मुझे भेदज्ञान रहेगा तब भी मैं, जिस लोकको शिव और विष्णु भगवान्में भेद मानने वाले जाते हैं. उस लोकको जाऊँगा ॥ ६ ॥ अस्त्रशस्त्रधारी शत्रुसन्तापकारी राजा शशिध्वजकी इस बातको सुनकर प्रभु कल्कि भगवान्ने क्रोधको त्यागदिया, परन्तु अपनी आकृति ऊपरसे क्रोधी पुरुषकी समान ही रक्खी, और उस रणभूमिमें शशिध्वजके ऊपर सैकड़ों बाण छोड़नेलगे७

धाराभिरिव पर्वतम् ॥ ८ ॥ तद् बाणवर्षभिन्नान्तः कल्किः परमकोपनः । दिव्यैः शस्त्रास्त्रसङ्घातैस्तयोर्युद्धमवर्त्तत ॥ ९॥ ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रैर्वायव्यस्य च पार्वतैः । आग्नेयस्य च पार्जन्यैः पन्नगस्य च गारुडैः ॥ १० ॥ एवं नानाविधैरस्त्रैरन्योऽन्यमभिजघ्नतुः । लोकाः सपालाः संत्रस्ता युगान्तमिव मेनिरे ॥ ११ ॥ देवा बाणाग्निसंत्रस्ता अगमन् खगमाः किल । ततोऽतिवितथोद्योगौ वासुदेवशशिध्वजौ १२

राजा शशिध्वजने उस बाणोंके प्रहारको कुछ भी नहीं गिना किन्तु जिसप्रकार मेघ पर्वतके ऊपर वर्षा करता है, तिसी प्रकार वह शशिध्वज कल्कि भगवान्के ऊपर अनेकों प्रकार के अस्त्रशस्त्रोंकी वर्षा करनेलगा ॥ ८ ॥ उन बाणोंकी वर्षासे शरीर छिन्न भिन्न होजानेसे कल्कि भगवान्को अत्यन्त ही क्रोध आगया, तब तो दिव्य अस्त्रशस्त्रों के द्वारा उन दोनोंका बड़ाभारी युद्ध होनेलगा ॥ ९ ॥ ब्रह्मास्त्रसे ब्रह्मास्त्र, पार्वतास्त्रसे वायव्यास्त्र, पार्जन्य अस्त्र से आग्नेय अस्त्र, और गारुड़ास्त्रसे पन्नगास्त्र, टुकड़े २ होनेलगा ॥ १० ॥ इसप्रकार कल्कि भगवान् और राजा शशिध्वजके अनेकों प्रकारके दिव्य अस्त्रोंके द्वारा युद्ध करने पर सम्पूर्ण प्राणी और लोकपाल अत्यन्त भयभीत होगए तथा मनमें चिन्ता करनेलगे, कि-कहीं आज प्रलयकाल तो नहीं आगया ॥ ११ ॥ जो सम्पूर्ण देवता युद्ध देखनेको आकाशमार्गमें आये थे वे भी बाणोंकी अग्निसे भयभीत होनेलगे, इसप्रकार कल्कि भगवान् और राजा शशिध्वज, दोनोंका दिव्य अस्त्र छोड़ना निष्फल हुआ १२

निरस्त्रौ बाहुयुद्धेन युयुधाते परस्परम् पदाघातैस्तलाघातैर्मुष्टि-प्रहरणैस्तथा ॥१३॥ नियुद्धकुशलौ वीरौ मुमुदाते परस्परम्। वराहोद्धतशब्देन तं तलेनाहनद्धरिः ॥ १४ ॥ स मूर्छितो नृपः कोपात् समुत्थाय च तत्क्षणात्। मुष्टिभ्यां वज्रकल्पाभ्यामवधीत कल्किमोजसा। स कल्किस्तत्प्रहारेण पपात भुवि मूर्च्छितः ॥ १५ ॥ धर्मः कृतश्च तं दृष्ट्वा मूर्च्छितं जगदीश्वरम्। समागतौ तमानेतुं कक्षे तौ जगृहे नृपः ॥ १६ ॥ कल्किं वक्षस्युपादाय लब्धार्थः प्रययौ गृहम्। युद्धे नृपाणामन्येषां

ऐसा देख दोनोंने अस्त्रशस्त्र त्याग दिये और परस्पर घोर बाहुयुद्ध (कुस्ती) करनेलगे, लातोंसे, थप्पड़ोंसे तथा घूँसोंसे दोनोंका संग्राम होनेलगा ॥ १३ ॥ दोनों ही वीर थे और दोनों ही युद्ध करनेमें प्रवीण थे इसकारण दोनों परस्पर युद्धकी चतुरता देखकर प्रसन्न हुए, सृष्टिके प्रारंभ में जब वाराह भगवान्‌ने पृथ्वीको उठाया था, उस समय जैसा शब्द हुआ था वैसे ही महाघोर शब्दवाला थप्पड़ कल्कि भगवान्‌ने राजा शशिध्वजके मारा ॥ १४ ॥ तब तो राजा शशिध्वज मूर्च्छित होकर गिरपड़ा और फिर उठकर क्रोधमें भरगया तथा जोरसे, वज्रकी समान दो घूँसे कल्कि भगवान्‌के मारे, कल्किजी भी उस प्रहारसे मूर्च्छित होकर गिरपड़े ॥ १५ ॥ धर्म और सत्ययुग त्रिलोकीनाथ कल्कि भगवान्‌को मूर्च्छित देखकर उनको उठाकर लेजानेको तहाँ आये, तब राजा शशिध्वजने धर्म और सत्ययुग दोनोंको बगलोंमें दबालिया ॥ १६ ॥ फिर कल्किजीको वक्षःस्थलसे चिपटाकर कृतकृत्य हो अपने स्थानकी ओरको चला और

पुत्रौ दृष्ट्वा सुदुर्जयौ॥१७॥कल्किं सुराधिपपतिं प्रधने विजित्य धर्मं कृतञ्च निजबाहुयुगे निधाय। हर्षोल्लसद्धृदय उत्पुलकः प्रमाथी गत्वा गृहं हरिगृहे ददृशे सुशान्ताम्॥ १८ ॥ दृष्ट्वा तस्याः सुललितमुखं वैष्णवीनाञ्च मध्ये,गायन्तीनां हरिगुण-कथास्तामथ प्राह राजा। देवादीनां विनयवचसा शम्भले जन्मना वा विद्यालाभं परिणयविधिं म्लेच्छपाषण्डनाशम्१६ कल्किः स्वयं हृदि सदायमिहागतोऽद्धा मूर्च्छाच्छलेन तव सेवन-

विचारनेलगा, कि—कोई दूसरा राजा युद्धमें मेरे पुत्रोंका तो पराजय कर ही नहीं सकता॥ १७॥ इसप्रकार शशिध्वज देवताओंके भी स्वामी कल्कि भगवान्‌को संग्राममें जीतकर तथा धर्म और सत्ययुगको दोनों बगलोंमें दाबकर हर्षके मारे हृदयमें न समाया और उसके शरीर पर आनन्दके रोमांच खड़े होगये, इसप्रकार वह कल्कि भगवान्‌की सेनाओंको नष्ट भ्रष्ट करता हुआ अपने स्थानको गया और देखा कि-रानी सुशान्ता विष्णुमन्दिरमें बैठी है॥ १८॥ विष्णुभक्त स्त्रियें उसके चारों ओर बैठीहुई श्रीहरिके गुण और कथाओं का गान कररही थीं राजा शशिध्वज सुशान्ताका सुन्दर मुख-कमल देखकर कहनेलगा कि-जिन्होंने देवताओंकी प्रार्थनासे संभलग्राममें अवतार धारण किया है,वह कल्कि भगवान् यह उपस्थित (मौजूद) हैं, इन्होंने इसप्रकार विद्या पढ़ी है, इस प्रकार विवाह किया है, और इसप्रकार पाखण्डियोंका तथा म्लेच्छोंका नाश किया है यह सब सुनाया।१६। हे प्रिये! जो कल्कि भगवान् सदा हृदयमें निवास करते हैं वह ही इस समय तुम्हें शक्ति दिखानेको मायाके द्वारा मूर्छाके बहानेसे यहाँ

मीक्षणार्थम् । धर्मं कृतञ्च मम कक्षयुगे सुशान्ते ! कान्ते ! विलोकय समर्चय संविधेहि ॥ २० ॥ इति नृपवचसा विनोदपूर्णा हरिकृतधर्मयुतं प्रणम्य नाथम् । सह निजसखिभिर्ननर्त्त रामा हरिगुणकीर्त्तनवर्त्तना विलज्जा ॥ २१ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे धर्म-
कल्किकृतामामानयनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

सुशान्तोवाच । जय हरेऽमराधीशसेवितं तव पदाम्बुजं भूरिभूषणम् । कुरु ममाग्रतः साधुसत्कृतं त्यज महामते ! मोहमात्मनः ॥ १ ॥ तव वपुर्जगद्रूपसम्पदा विरचितं सतां मानसे स्थितम् । रतिपतेर्मनोमोहदायकं कुरु विचेष्टितं काम-

---

आये हैं, हे प्रिये ! यह देखो धर्म और सत्ययुग मेरी दोनों बगलोंमें दबे हुए हैं, तुम इन सबका पूजन करो ।२०। सुशान्ता राजा शशिध्वजकी यह बात सुनकर अत्यंत ही आनन्दित हुई और श्रीहरि, धर्म, सत्ययुग तथा अपने पतिको प्रणाम करके लज्जाको त्याग अपनी सखियों सहित श्रीहरिके गुणों का कीर्त्तन और प्रदक्षिणा करती हुई नृत्य करनेलगी ।।२१।। नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥

सुशान्ता कहनेलगी, कि-हे हरे ! तुम्हारी जय हो ! मायाके बलसे धारण की हुई अपनी मूर्च्छाको त्यागिये, हे महामते ! साधुपुरुषोंके तथा इन्द्रदेवके सेवन किये हुए नानाप्रकारके आभूषणोंसे शोभायमान चरण कमलोंको मेरे सामनेको करिये ॥ १ ॥ तुम्हारा यह शरीर जगत्की सर्वोत्तम सम्पत्तियोंसे रचित है, तुम्हारा यह रूप साधुपुरुषोंके हृदयमें स्थित रहता है, तुम्हारे इस रूपको

लम्पटम् ॥ २ ॥ तव यशो जगच्छोकनाशनं मृदुकथामृतप्रीति-दायकम् । स्मितसुधोक्षितं चन्द्रवन्मुखं तव करोत्वलं लोक-मङ्गलम् ॥३॥ मम पतिस्त्वयं सर्वदुर्जयो यदि तवाप्रियं कर्मणा-चरेत् । जहि तदात्मनः शत्रुमुद्यतं कुरु कृपां न चेदीदृगीश्वरः४ महदहं युतं पञ्चमात्रया प्रकृतिजायया निर्मितं वपुः । तव निरीक्षणाल्लीलया जगत् स्थितिलयोदयं ब्रह्मकल्पितम्॥५॥ भूवियन्मरुद्वारितेजसां राशिभिः शरीरेन्द्रियाश्रितैः । त्रिगुणया

देखकर कामदेव भी लज्जित होता है. हे प्रभो ! अब जिस प्रकार मेरा मनोरथ पूर्ण हो वही करिये ॥ २ ॥ हे प्रभो ! तुम्हारे यशका गान जगत्के शोकको दूर करता है,तुम्हारा यह चन्द्रमाकी समान मुख कोमल वचनरूप अमृतकी वर्षा करके सबको प्रसन्न करता है, तुम्हारा यह मुखचन्द्र मन्दमुसकानरूप अमृतसे भीगा हुआ है, तुम्हारा यह मुख-कमल जिसप्रकार जगत्का कल्याण करे सो करिये ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! मेरे इस पतिको कोई भी प्राणी नहीं जीतसकता यदि इसने किसीप्रकारसे तुम्हारा कुछ अप्रिय कार्य किया हो तो आप शत्रुभावको त्यागकर कृपा करिये, नहीं तो प्राणी संसारमें तुम्हें किस मिषसे कृपामय (दयालु) ईश्वर कहैंगे ? ॥ ४ ॥ तुम्हारी प्रकृतिरूप स्त्रीसे महत्तत्व अहङ्कार और पञ्चतन्मात्रा आदि द्वारा शरीर बनता है, तुम्हारे कटाक्ष और लीलासे ब्रह्मके विषें कल्पना किये हुए इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होते हैं ॥ ५ ॥ शरीर और इन्द्रियोंके आश्रित, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पञ्चमहाभूतोंकी समष्टिके द्वारा और अपनी त्रिगुणमयी

स्त्वया मायया विभो ! कुरु कृपां भवत्सेवनार्थिनाम् ॥ ६ ॥ तव गुणालयं नाम पावनं कलिमलापहं कीर्त्तयन्ति ये। भव-भयक्षयं, तापतापिता मुहुरहो जनाः संसरन्ति नो ॥ ७ ॥ तव जन्म सतां मानवर्द्धनं निजकुलक्षयं देवपालकम्। कृत-युगार्पकं धर्मपूरकं कलिकुलान्तकं शन्तनोतु मे ॥ ८ ॥ मम गृहं पतिपुत्रनप्तृकं गजरथैर्ध्वजैश्चामरैर्धनैः। मणिवरासनं सत्-कृतिं विना तव पदाब्जयोः शोभयन्ति किम् ॥ ९ ॥ तव जगद्वपुः सुन्दरस्मितं मुखमनिन्दितं सुन्दरारवम्। यदि न मे

मायाके द्वारा तुम्हारी सेवाकी प्रार्थना करनेवाले प्राणियोंके ऊपर कृपा करिये ॥ ६ ॥ जो पुरुष संसारके दुःखोंसे क्लेशित होकर कलियुगके पापोंका नाश करनेवाले,संसारके भयको दूर करनेवाले, सर्वगुणोंके स्थान, परमपवित्र,आपके नामका कीर्त्तन करते हैं, उन पुरुषोंको फिर इस संसारमें जन्म धारण नहीं करना पड़ता है ॥ ७॥ आपका अवतार होनेसे साधुपुरुषोंके सत्कारकी वृद्धि होती है, ब्राह्मणोंकी उन्नति होती है, देवताओंकी रक्षा होती है; सत्ययुगकी प्रवृत्ति होती है, धर्मकी वृद्धि होती है, और कलिकुलका नाश होता है, आपका यह अवतार मेरा कल्याण करे॥८॥ मेरे घरमें पति, पुत्र, पौत्र, हाथी, रथ, ध्वजा, चँवर, ऐश्वर्य और मणियोंसे जड़े हुए सिंहासन आदि सम्पूर्ण पदार्थ विद्यमान हैं, परन्तु आपके चरणकमलोंकी पूजाके विना उन सब वस्तुओंकी कुछ भी शोभा नहीं है ॥ ९ ॥ हे जगद्रूप ! सुन्दर मन्द मुसक्यानसे शोभायमान, सर्वाङ्ग सुन्दर मनोहर मधुरवाक्योंसे भूषित और सुन्दर चेष्टायुक्त,

प्रियं वल्गुचेष्टिते परिकरोत्यहो मृत्युरस्त्विह ॥ १० ॥ हयचर भयहर करहरशरण खरतरवरशरदशबलमदन ! । जय हतपरभर भववरनशन शशधरशतसमरसभरवदन ! ॥ ११ ॥ इति तस्याः सुशान्ताया गीतेन परितोषितः । उत्तस्थौ रणशय्यायाः कल्कियुद्धस्थवीरवत् ॥ १२ ॥ सुशान्तां पुरतो दृष्ट्वा कृतं वामे तु दक्षिणे । धर्मं शशिध्वजं पश्चात् प्राहेति व्रीडितानन: ॥ १३ ॥ का त्वं ? पद्मपलाशाक्षि ! मम सेवार्थमुद्यता कान्ते ! शशिध्वजः शूरो मम पश्चादुपस्थितः ॥ १४ ॥ हे

आपका यह मुख यदि मेरा कल्याण करनेमें प्रवृत्त नहीं होगा तो तत्काल मेरा मरण होजायगा ॥ १० ॥ तुम घोड़े पर चढ़कर विचरते हो, आपकी कृपासे सबका भय दूर होता है, आप ब्रह्मा और महादेवजीके आश्रय हो, आपने अति तीखे बाणोंके समूहसे महाबली वीरोंका संहार किया है, जो वीर पुरुष संग्राममें आपसे तिरस्कार और नाशको प्राप्त हुए हैं, आपने उनका पालन किया है, क्योंकि--आप संसारका भय दूर करते हो, आपके चरणकमल सैंकड़ों चन्द्रमाओंकी समान सुधारसयुक्त हैं ॥ ११ ॥ कल्कि भगवान् इसप्रकार सुशान्ताके स्तुति करनेसे प्रसन्न होकर संग्राम में पड़ेहुए वीरकी समान मूर्च्छासे उठे ॥ १२ ॥ वह कल्कि भगवान् सन्मुख रानी सुशान्ताको, बाईं ओर सत्ययुगको, दाईं ओर धर्मको और पीछे राजा शशिध्वजको खड़ा देख कर लज्जासे नीचेको मुख करके कहनेलगे ॥ १३ ॥ कि-हे कमलदलनेत्रे ! तुम कौन हो ? किस प्रयोजनसे मेरी सेवा करनेमें लगीहुई हो ? महावीर शशिध्वज मेरे पीछे क्यों

धर्म ! हे कृतयुग ! कथमत्रागता ? वयम् । रणाङ्गनं विहायास्याः शत्रोरन्तःपुरे वद ॥ १५ ॥ शत्रुपत्न्यः कथं साधु ! सेवन्ते मामरिं मुदा । शशिध्वजः शूरमानी मूर्च्छितं हन्ति नो कथम् ? ॥ १६ ॥ सुशान्तोवाच । पाताले दिवि भूमौ वा नरनागसुराऽसुराः । नारायणस्य ते कल्के ! के वा ? सेवां न कुर्वते ॥ १७ ॥ यत्सेवकानां जगतां मित्राणां दर्शनादपि । निवर्त्तते शत्रुभावस्तस्य साक्षात् कुतो रिपुः ? ॥ १८ ॥ त्वया सार्द्धं मम पतिः शत्रुभावेन संयुगे । यदि योग्यस्तदानेतुं किं समर्थो ? निजालयम् ॥ १९ ॥ तव दासो मम स्वामी अहं दासी निजा तव । आवयोः सम्प्रसादाय आ-

खड़ा है ? ॥ १४ ॥ हे धर्म ! हे सत्ययुग ! हम रणभूमिसे यहाँ शत्रुके रणवासमें कैसे आगए, यह बताओ ? १५ मैं तो शत्रु हूँ, फिर शत्रुकी स्त्री प्रसन्नहृदयसे मेरी सेवा क्यों कर रही है ? मैं तो मूर्च्छित होगया था, फिर वीरमानी शशिध्वजने मेरा प्राणान्त क्यों नहीं किया ? ॥ १६ ॥ इसप्रकार कल्कि भगवान्का वचन सुनकर सुशान्ता बोली, कि-भूलोक स्वर्गलोक और पाताललोकमें निवास करनेवाले मनुष्य, देवता, दैत्य और नागोंमें ऐसा कौन है ? जो श्रीनारायण कल्कि भगवान्की सेवा नहीं करेगा ? ॥ १७ ॥ सम्पूर्ण जगत् जिनका सेवक है, जिनका मित्र है, जिनके दर्शनमात्रसे शत्रुभाव दूर होजाता है, उन श्री नारायण कल्कि भगवान्का कौन पुरुष किसप्रकार शत्रु होसकता है ? ॥ १८ ॥ मेरे पति यदि शत्रुभावसे आपके साथ संग्राम करते तो क्या आपको अपने स्थान पर लासकते ? ॥ १९ ॥ मेरे पति आप

गतोऽसि महाभुज ! ॥ २० ॥ धर्म उवाच ! अहं तवैनयो- र्भक्त्या नामरूपानुकीर्त्तनात् । कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कलित्तय ! ॥ २१ ॥ कृतयुग उवाच । अधुनाहं कृतयुगस्तव दासस्य दर्शनात् । त्वमीश्वरो जगत्पूज्यसेवकस्यास्य तेजसा ॥ २२ ॥ शशिध्वज उवाच । दण्ड्यं मां दण्डय विभो ! योद्धृत्वादुद्यतायुधम् । येन कामादिरागेण त्वय्यात्मन्यपि वैरिता ॥२३॥ इति कल्कि- र्वचस्तेषां निशम्य हसिताननः । त्वया जितोऽस्मीति नृपं पुनः

के दास हैं, मैं आपकी दासी हूँ, हे महाभुज ! हमारे ऊपर प्रसन्न होकर आप अपने आप ही यहाँ पर आये है ।२०। धर्म बोला, कि-हे कलियुगका संहार करनेवाले भगवन् ! यह दोनों जिसप्रकार आपकी भक्ति कररहे हैं, जिसप्रकार आपके नामोंका कीर्त्तन कररहे हैं, जिसप्रकार आपकी स्तुति कर रहे हैं, इसको देखकर मैं कृतार्थ होगया, अब इससे अधिक और क्या कृतार्थ होऊँगा ॥ २१ ॥ सत्ययुग बोला कि-आज आपके इस दासका दर्शन करके मैं सत्ययुग नामकी सार्थकताको पागया, आप भी इस सेवकके तेजसे ईश्वर और जगत्के पूजनीय हुए ॥ २२ ॥ शशिध्वज राजा बोला कि-हे प्रभो ! मैंने युद्ध करके आप के शरीरों पर प्रहार किये हैं, आप मेरे आत्मा हो, मैं काम क्रोध आदिके वशीभूत होकर आपसे शत्रुतावश युद्धमें प्रवृत्त हुआ था, सो अब दण्ड देने योग्य मुझको आप दण्ड दीजिये ॥ २३ ॥ कल्कि भगवान् राजा शशिध्वजका यह वाक्य सुनकर मुसकुराते हुए वारम्वार कहनेलगे, कि-तूने

पुनरुवाच ह ॥ २४ ॥ ततः शशिध्वजो राजा युद्धादाहूय पुत्रकान् । सुशान्ताया मतिं बुद्ध्वा रमां प्रादात् स कल्कये २५ तदैव मरुदेवापी शशिध्वजसमाहृतौ । विशाखयूपभूपश्च रुधिराश्वश्च संयुगात् ॥ २६ ॥ शय्याकर्णनृपेणापि भल्लाटं पुरमाययुः । सेनागणैरसंख्यातैः सा पुरी मर्दिताभवत् २७ गजाश्वरथसम्बाधैः पत्तिच्छत्ररथध्वजैः । कल्किनापि रमायाश्च विवाहोत्सवसम्पदाम् ॥ २८ ॥ द्रष्टुं समीयुस्त्वरिता हर्षात् सबलवाहनाः । शंखभेरीमृदङ्गानां वादित्राणाञ्च निस्वनैः ॥२९॥ नृत्यगीतविधानैश्च पुरस्त्रीकृतमङ्गलैः । विवाहो रमया कल्केरभूदतिसुखावहः ॥ ३० ॥ नृपा नानाविधैर्भोज्यैः

युद्धमें जीतलिया ॥ २४ ॥ तदनन्तर राजा शशिध्वजने अपने पुत्रोंको रणमेंसे बुलालिया और रानी सुशान्ताकी इच्छा जानकर कल्कि भगवान्‌को रमा नामवाली अपनी कन्या विवाह दी ॥ २५ ॥ उस समय मरु देवापि विशाखयूप राजे और रुधिराश्व ये सब शशिध्वज राजाके बुलवानेसे श्यामकर्ण नामक राजाके साथ भल्लाटनगरमें गए, अनगिनत सेनाके समूहसे भल्लाटनगरी घिचपिच होनेलगी २६ ॥ २७ ॥ कल्कि भगवान्‌के साथ रमाका विवाह होगा, यह सुनकर विवाहका उत्सव देखनेको अनेकों राजे हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, छत्र, चित्रविचित्र रथोंकी ध्वजा तथा अनेकों प्रकारकी सेना और सवारियोंकी साथ लियेहुए शीघ्रतासे आये, शंख, नफीरी, मृदङ्ग तथा और अनेकों प्रकारके बाजों की ध्वनिसे नृत्यगान आदिसे और नगरकी स्त्रियोंके माङ्गलिक कार्योंसे रमा और कल्कि भगवानका विवाह अत्यन्त

पूजिता विविशुः सभाम् । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चा वरजातयः ॥ ३१ ॥ विचित्रभोगाभरणाः कल्किं द्रष्टुमुपाविशन् । तस्यां सभायां शुशुभे कल्किः कमललोचनः ॥ ३२ ॥ नक्षत्रगणमध्यस्थः पूर्णः शशधरो यथा । रेजे राजगणाधीशो लोकान् सर्वान् विमोहयन् ॥ ३३ ॥ रमापतिं कल्किमवेक्ष्य भूपः सभागतं पद्मदलायतेक्षणम् । जामातरं भक्तियुतेन कर्मणा । विबुध्य मध्ये निषसाद तत्र ह ॥ ३४ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कल्किना रमाविवाहो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

सूत उवाच । तत्राहुस्ते सभामध्ये वैष्णवं तं शशिध्वजम् ।

ही सुखदायक हुआ ॥२८-३०॥ राजे लोग अनेकों प्रकार के भक्ष्य भोज्य आदि पदार्थोंसे सत्कारको प्राप्त होकर सभा में बैठे, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा और २ जातियोंके पुरुष नानाप्रकारके भूषण आदि भोग्य पदार्थोंसे यथोचित सत्कार पाकर कल्कि भगवान्का दर्शन करनेको उस सभा में आकर बैठे, कमलदलनयन कल्कि भगवान् उस सभामें बैठे हुए अत्यन्त शोभा पानेलगे ॥३१ ॥ ३२ ॥ जिसप्रकार तारागणोंमें पूर्णमासीका चन्द्रमा शोभा पाता है तिसीप्रकार राजाओंके स्वामी कल्कि भगवान् सम्पूर्ण प्राणियोंको मोहित करते हुए उस शोभाको प्राप्त हुए ॥३३॥ राजा शशिध्वज भी कमलदलनयन कल्कि भगवानको सभामें बैठा हुआ देख कर भक्तियुक्त हृदयसे उनको अपना जामाता जानकर उस सभामें बैठगया ॥ ३४ ॥ दशम अध्याय समाप्त ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं, कि-हे ऋषियो ! पहले महर्षियोंने जहाँ

मुनिभिः कथिताशेषभक्तिव्यासक्तविग्रहम् ॥ १ ॥ सुशान्तांश्च कृतेनापि धर्मेण विधिवद् युताम् ॥ २ ॥ राजान ऊचुः । युवां नारायणस्यास्य कल्केः श्वशुरतां गतौ । वयं नृपा इमे लोका ऋषयो ब्राह्मणाश्च ये ॥ ३ ॥ प्रेक्ष्य भक्तिवितानं वा हरौ विस्मितमानसाः । पृच्छामस्त्वामियं भक्तिः क्व लब्धा ? परमात्मनः । कस्यवा शिक्षिता राजन् किम्वा नैसर्गिकी तव । श्रोतुमिच्छामहे राजन् ! त्रिजगज्जनपावनीम् ॥ ५ ॥ कथां भागवतीं त्वत्तः संसाराश्रमनाशिनीम् ॥ ६ ॥ शशि-

---

तक भक्तिकी अवधि वर्णन करी है उस सम्पूर्ण भक्तिसे युक्त है देह जिसको ऐसे विष्णु भगवान्के परमभक्त राजा शशिध्वजको और सत्ययुग तथा धर्मके सहित रानी सुशांता को देखकर आये हुए राजे और ब्राह्मण कहनेलगे॥१॥२॥ राजे बोले, कि–हे राजन् ! इस समय तुम साक्षात् नारायण कल्कि भगवान्के श्वसुर हुए, यह बड़े आनन्दकी बात है, परन्तु हम सब राजे ये सम्पूर्ण ऋषि, सम्पूर्ण ब्राह्मण और वैश्य आदि ये सर्वसाधारण पुरुष भी श्रीहरिमें आपकी भक्तिकी इतनी अधिकता देखकर अत्यन्त ही आश्चर्यमें होरहे हैं और हम सबको यह जाननेकी इच्छा है, कि–तुम को यह परमात्माकी भक्ति किसप्रकार कहाँसे प्राप्त हुई है ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे राजन् ! क्या यह भक्ति आपने किसीसे सीखी है ? अथवा यह आपकी भक्ति स्वाभाविक है ? हे राजन् ! हमारी इच्छा है, कि–आपसे इस भगवान्की भक्तिका कारण सुनें, इसके श्रवण करनेमात्रसे भी त्रिलोकीके प्राणी पवित्र होजायँगे और इस भक्तिके

ध्वज उवाच। स्त्रीपुंसोरावयोस्तत्तच्छृणुतामोघविक्रमाः ! । वृत्तं यज्जन्मकर्मादि स्मृति तद्भक्तिलक्षणम् ॥ ७ ॥ पुरा युगसहस्रान्ते गृध्रोऽहं पूतिमांसभुक्। गृध्रीयं मे प्रियारण्ये कृतनीडौ वनस्पतौ ॥ ८ ॥ चचार कामं सर्वत्र वनोपवनसङ्कुले। मतानां पूतिमांसौघैः प्राणिनां वृत्तिकल्पकौ ॥ ९ ॥ एकदा लुब्धकः क्रूरो लुब्धोम पिशिताशिनौ। आवां वीक्ष्य गृहे पुष्टं गृध्रं तत्राप्ययोजयत् ॥ १० ॥ तं वीक्ष्य जातविश्रंभौ क्षुधया परिपीड़ितौ। स्त्रीपुंसौ पतितौ तत्र मांसलोभित-

---

प्रभावसे ही प्राणी संसारबन्धनसे छूटजायँगे ॥ ५ ॥ ६ ॥ यह सुनकर राजा शशिध्वज बोला, कि-हे राजाओं! हम दोनों स्त्रीपुरुषोंके जिसप्रकार जन्म कर्मादि हुए हैं और जिसप्रकार भक्ति तथा स्मृतिकी प्राप्ति हुई है सो सब कहता हूँ सुनो ।७। हजार युग बीत गये, उससे पहले मैं दुर्गन्धियुक्त मांसको खानेवाला गिज्ज था, और मेरी सुशान्ता गिज्जनी थी, हम वनमें एक बड़े वृक्ष पर घोंसला बनाकर उसमें रहते थे ॥ ८ ॥ और वन वाटिका आदि अनेकों स्थानोंमें अपनी इच्छानुसार विचरते थे और हम दोनों मरेहुए जीवोंके दुर्गन्धयुक्त मांसको खाकर जीवनका निर्वाह करते थे ॥ ९ ॥ एक समय एक कठोरहृदय व्याधेने हम दोनोंको देखकर पकडना चाहा और हमें जालमें फाँसनेके लिये अपने घरके पलाऊ गृध्र छोड़े ॥ १० ॥ उस समय हम दोनों भूंखके कारण अत्यन्त व्याकुल होगये थे, इसकारण हम उन गृध्रोंको देखकर हृदयमें किसीप्रकारका सन्देह न कर माँसके लोभसे उन उडतेहुये पलाऊ गृध्रोंके साथ उस

चेतसौ ॥ ११ ॥ बद्धावावां वीक्ष्य तदा हर्षादागत्य लुब्धकः। जग्राह कण्ठे तरसा चञ्चग्राघातपीडितः ॥ १२ ॥ आवां गृहीत्वा गण्डक्याः शिलायां सलिलान्तिके। मस्तिष्कं चूर्णयामास लुब्धकः पिशिताशनः ॥ १३ ॥ चक्राङ्कितशिलागङ्गामरणादपि तत्क्षणात्। ज्योतिर्मयविमानेन सद्यो भूत्वा चतुर्भुजौ ॥ १४ ॥ प्राप्तौ वैकुण्ठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतम्। तत्र स्थित्वा युगशतं ब्रह्मणो लोकमागतौ ॥ १५ ॥ ब्रह्मलोके पञ्चशतं युगानामुपभुज्य वै। देवलोके कालवशाद्ग गतं युगचतुःशतम् ॥ १६ ॥ ततो भुवि नृपास्तावद् वद्धसूनुरहं

जाल फैलेहुए स्थानपर गिरे ॥ ११ ॥ तब वह व्याधा हमें जालमें फँसा हुआ देखकर हृदयमें प्रसन्न होता हुआ तहाँ आया और शीघ्रही हमारी गरदनें पकड़लीं, हम भी उस समय अपनी चोंचोंके प्रहारसे उस व्याधेको पीडा देनेलगे १२ परन्तु किसीप्रकार छूट नहीं सके, फिर वह माँसका लोभी व्याधा हम दोनोंको पकडकर गङ्गाजलके समीप लेगया, तहाँ गंडकीकी शिला पर रखकर उस व्याधेने हम दोनोंके शिरको कुचला ॥ १३ ॥ गङ्गाजलके समीप गण्डकीकी शिला पर मरण होनेसे हम दोनों तत्काल चतुर्भुज मूर्त्ति धारण कर प्रकाशवान् विमान पर चढ़ सब लोकोंके पूजनीय वैकुण्ठधामको गए, तहाँ सौ युग पर्यन्त निवास करके ब्रह्मलोकको गए ॥ १४ ॥ १५ ॥ ब्रह्मलोकमें पाँच सौ युग पर्यन्त सुख भोग कर कालके वशीभूत हो चार सौ युग पर्यन्त देवलोकमें स्वर्गसुख भोगा ॥ १६ ॥ हे राजाओं! तदनन्तर हम दोनोंने इस मृत्युलोकमें जन्म धारण किया

स्मरन् । हरेरनुग्रहं लोके शालग्रामशिलाश्रमम् ॥ १७ ॥ जातिस्मरत्वं गण्डक्याः किं तस्याः कथयाम्यहम् । यज्जल-स्पर्शमात्रेण माहात्म्यं महदद्भुतम् ॥ १८ ॥ चक्राङ्कितशिला-स्पर्शमरणस्येदृशं फलम् । न जाने वासुदेवस्य सेवया किं भविष्यति ॥ १९ ॥ इत्यावां हरिपूजासु हर्षविह्वलचेतसौ । नृत्यन्तावनुगायन्तौ विलुण्ठन्तौ स्थिताविह ॥ २० ॥ कल्के-र्नारायणांशस्य अवतारः कलिक्षयः । पुरा विदितवीर्यस्य पृष्टो ब्रह्ममुखाच्छ्रुतः ॥ २१ ॥ इति राजसभायां सः श्रावयित्वा

है. परन्तु गण्डकीकी शिला (शालग्राम) शिलापर मरण होनेसे और श्रीहरिकी कृपासे यह सब वृत्तान्त मुझे स्मरण रहा ॥ १७ ॥ गण्डकीकी शिला पर मरण होनेसे जैसा पूर्वजन्मकी जाति आदिका स्मरण रहता है उसका और क्या वर्णन करूँ ? जिस गण्डकीके जलका स्पर्शमात्र होने से एक अद्भुत फल मिलता है ॥१८॥ जब शालिग्राम शिला के स्पर्शमात्रसे मृत्यु होने पर ऐसा मिलता है, फिर भगवान् वासुदेवकी सेवा करने पर कितना अधिक फल मिलेगा, उस का मैं वर्णन नहीं करसकता ॥१९॥ हम ऐसा विचार कर श्रीहरिकी पूजा करनेमें सदा अपने चित्तको लगातेहुए कभी नृत्य करते हैं, कभी श्रीहरिके गुणोंका गान करते हैं, इसप्रकार यहां हम अपने समयको व्यतीत करते हैं ॥२०॥ श्रीनारा-यणके अंश कल्कि भगवान्ने जो कलियुगका नाश करनेको अवतार धारण किया है, यह मैं पहले ही ब्रह्माजीके मुखसे सुन चुका हूँ, मैं इन कल्कि भगवान्की वीरताको पूर्णरीति से जानता हूँ ॥ २१ ॥ राजा शशिध्वजने इसप्रकार सभामें

निजाः कथाः । ददौ गजानामयुतमश्वानां लक्षमादरात् २२ रथानां षट्सहस्रन्तु ददौ पूर्णस्य भक्तिनः । दासीनां युवतीनाञ्च रमानाथाय षट्शतम् ॥ २३ ॥ रत्नानि च महार्घाणि दत्त्वा राजा शशिध्वजः । मेने कृतार्थमात्मानं स्वजनैर्बान्धवैः सह ॥ २४ ॥ सभासद इति श्रुत्वा पूर्वजन्मोदिताः कथाः । विस्मयाविष्टमनसः पूर्णं तं मेनिरे नृपम् ॥ २५ ॥ कल्कि स्तुवन्तो ध्यायन्तो प्रशंसन्तो जगज्जनाः । पुनस्तमाहू राजानं लक्षणं भक्तिभक्तयोः ॥ २६ ॥ नृपा ऊचुः । भक्तिकाऽस्याद् भगवतः को वा ? भक्तो विधानवित् । किं करोति किमश्नाति क्व वा वसति वक्ति किम् ? ॥ २७ ॥ एतान् वर्णय

अपना वृत्तान्त वर्णन करके रमानाथ कल्कि भगवानको भक्तिपूर्वक हृदयसे आदरपूर्वक दशहजार हाथी एक लाख घोड़े, छः हजार रथ, सो तरुण अवस्थाकी दासियें और बहुतसे बहुमूल्य रत्न देकर बान्धवों सहित अपनेको कृतार्थ माना ॥ २२–२४ ॥ सभामें बैठेहुए पुरुष इसप्रकार राजा शशिध्वजके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनकर हृदयमें अचंभा मानने लगे और उस राजाको पूर्ण भक्तिमान् समझा ॥ २५ ॥ फिर वहां सभामें बैठेहुए सब पुरुष कल्कि भगवान्की स्तुति करतेहुए ध्यान करनेलगे, फिर वे सब सभाके पुरुष राजा शशिध्वजसे भक्ति और भक्तोंका लक्षण पूछनेलगे ॥२६॥ राजा बोले कि–भगवद्भक्ति किसको कहते हैं ? और विधिका जाननेवाला भक्त किसको कहते हैं ? भक्तपुरुष क्या कार्य करता है ? क्या भोजन करता है ? कहां निवास करता है ? और कैसी बातें करता है ? ॥२७॥ हे राजेन्द्र!

राजेन्द्र ! सर्वं त्वं वेत्सि सादरात् । जातिस्मरत्वात् कृष्णस्य जगतां पावनेच्छया ॥ २८ ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा प्रफुल्लवदनो नृपः । साधुवादैः समामन्त्र्य तानाह ब्रह्मणोदितम् २९ शशिध्वज उवाच । पुरा ब्रह्मसभामध्ये महर्षिगणसंकुले । सनको नारदं प्राह भवद्भिर्यास्त्विहोदिताः ॥ ३० ॥ तेषामनुग्रहेणाहं तत्रोषित्वा श्रुताः कथाः । यास्ताः संकथयामीह शृणुध्वं पापनाशनाः ॥ ३१ ॥ सनक उवाच । का भक्तिः ? संसृतिहरा हरौ लोकनमस्कृता । तामादौ वर्णय मुने ! नार-

---

शशिध्वज ! आपको सब मालूम है, इसकारण आप इन सब प्रश्नोंका ठीक २ उत्तर दीजिये? राजाओंके ऐसे कहने को सुनकर शशिध्वजका मुखकमल प्रसन्न होगया और उन सबको धन्यवाद देकर सन्तुष्ट करनेके लिये पूर्वजातिके स्मरणका हेतु जो श्रीकृष्णनाम उसका वर्णन करके जगत्के पवित्र करनेकी इच्छासे, जोकुछ पहिले ब्रह्माजीसे सुना था सो सब कहनेलगा ॥ २८ ॥ २९ ॥ राजा शशिध्वज बोला कि-पहिले एक समय ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीकी सभामें महर्षियोंके समूह बैठेहुए थे, उस समय जो प्रश्न तुमने मुझसे किया है, यही प्रश्न सनकऋषिने नारदजीसे किया था ३० मैं भी उस समय तहाँ ही बैठा था. सो मैंने उनके अनुग्रहसे वह सब वार्त्तालाप सुना, हे राजाओं ! मैंने जो २ बातें वहां सुनी थीं, वह सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला वृत्तान्त तुम्हें सुनाता हूँ, सुनो ॥ ३१ ॥ हे राजाओं! सनकऋषिने नारदजीसे बूझा, कि-हे महर्षि नारद ! किसप्रकार श्रीहरिकी भक्ति करने पर पुरुष फिर संसारमें जन्म धारण नहीं करता?

दावहिता वयम् ॥ ३२ ॥ नारद उवाच । मनःषष्ठानीन्द्रियाणि संयम्य परया धिया । गुरावपि न्यसेद्देहं लोकतन्त्रविचक्षणः ॥ ३३ ॥ गुरौ प्रसन्ने भगवान् प्रसीदति हरिः स्वयम् । प्रणवाग्निप्रियामध्ये मवर्णं तन्निदेशतः ॥ ३४ ॥ स्मरेदनन्यया बुध्या देशिकः सुसमाहितः । पाद्यार्घाचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ॥ ३५ ॥ पूजयित्वा वासुदेवपादपद्मं समाहितः । सर्वाङ्गसुन्दरं रम्यं स्मरेत् हृत्पद्ममध्यगम् ॥ ३६॥ एवं ध्यात्वा वाक्यमनोबुद्धीन्द्रियगणैः सह । आत्मानमर्पयेद्व विद्वान् हरावेकान्तभाववित् ॥ ३७ ॥ अङ्गानि देवास्त्वेषान्तु

किसप्रकारकी भक्ति सर्वोत्तम है ? यह आप पहिले कहिये, हम सुननेको सावधान बैठे हैं ॥ ३२ ॥ यह सुन नारदजी बोले, कि-लोकशास्त्रप्रवीण साधकपुरुष, उत्तम बुद्धिके द्वारा नेत्र, कर्ण, नासिका, जिव्हा; त्वचा इन पांचों ज्ञानेन्द्रिय और मनको वशमें करके गुरुके चरणोंमें देहको समर्पण करे ॥ ३३ ॥ गुरुके प्रसन्न होने पर भगवान् श्रीहरि स्वयं प्रसन्न होजाते है, गुरुकी आज्ञासे ओङ्कार और अग्निप्रिया स्वाहाके मध्यमें नमः इन अक्षरोंका अर्थात् " ओंनमः स्वाहा " इस मन्त्रका चित्त लगाकर स्मरण करें, फिर वह शिष्य सावधान चित्तसे पाद्य, अर्घ और आचमनीय आदि सामग्री तथा स्नानीय, वस्त्र, भूषण आदिसे. चित्त लगाकर उत्तमरीतिसे श्रीवासुदेव भगवान्के चरणकमलोंका पूजन करे फिर अपने हृदयरूप कमलमें स्थित परमरमणीय सर्वाङ्गसुन्दर वासुदेव भगवान्का ध्यान करे ॥ ३४-३६ ॥ अनन्य भक्तिको जाननेवाला ज्ञानी पुरुष वाणी मन, बुद्धि और

नामानि विदितान्युत। विष्णोः कल्केरनन्तस्य तान्येवान्यन्न विद्यते ॥३८॥ सेव्यः कृष्णः सेवकोऽहमन्ये तस्यात्ममूर्त्तयः । अविद्योपाधयो ज्ञानाद्द वदन्ति प्रभवादयः ॥ ३९ ॥ भक्तस्यापि हरौ द्वैतं सेव्यसेवकवत् तदा । नान्यद् विना तमित्येव क्व च ? किञ्च न विद्यते ॥ ४० ॥ भक्तः स्मरति तं विष्णु तन्नामानि च गायति । तत् कर्माणि करोत्येव तदानन्दसुखादयः ॥ ४१ ॥ नृत्यत्युद्धतवद्रौति हसति प्रैति तन्मनाः। विलुण्ठत्यात्मविस्मृत्या न वेत्ति कियदन्तरम् ॥ ४२ ॥ एवं-

इन्द्रियों सहित आत्माको श्रीहरिके समर्पण करे ॥ ३७ ॥ और देवताओंकी मूर्त्तियें, कल्किस्वरूप अनन्त विष्णु भगवान्की अङ्गरूप हैं, उन सब नामोंको आप जानते ही हैं, वे सब नाम कल्किरूप विष्णुभगवान्के ही हैं, उनसे भिन्न और कुछ नहीं है ॥ ३८ ॥ श्रीकृष्ण सेव्य (सेवन करने योग्य) हैं, मैं सेवक हूँ, सम्पूर्ण जीव उन श्रीकृष्णचन्द्रके आत्मस्वरूप हैं; ज्ञानी पुरुष कहते हैं, कि-इन सम्पूर्ण जीवों की उत्पत्ति अविद्यारूप उपाधिके कारणसे होती है ॥३९॥ जो भक्त पुरुष हैं उनमें भी अविद्यारूप उपाधिके कारण सेव्य-सेवकभावरूप द्वैतभाव रहता है, वास्तवमें श्रीहरिसे अन्य कहीं कोई भी वस्तु नहीं है ॥ ४० ॥ भक्तपुरुष उन श्रीहरिका स्मरण करें, श्रीहरिके नामका गान करें, जो कुछ कार्य करें,श्रीहरिके समर्पण करके करें,ऐसा करनेसे भक्त पुरुष को आनंद और सुखकी प्राप्ति होती है, भक्त पुरुष विक्षिप्तपुरुष की समान नृत्य करें, रोदन करे,हँसे, श्रीहरिका ध्यान करता हुआ विचरे,आत्माका विस्मरण होनेके कारण पश्चात्ताप करे,

विधा भगवतो भक्तिरव्यभिचारिणी । पुनाति सहसा लोकान् सदेवासुरमानुषान् ॥ ४३ ॥ भक्तिः सा प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मसम्पत्प्रकाशिता । शिवविष्णुब्रह्मरूपा वेदाद्यानां वरापि वा ॥ ४४ ॥ भक्ताः सत्त्वगुणाध्यासात् रजसेन्द्रियलालसाः । तमसा घोरसंकल्पा भजन्ति द्वैतदृग्जनाः ॥ ४५ ॥ सत्त्वान्निर्गुणतामेति रजसा विषयस्पृहाम् । तमसा नरकं यान्ति संसाराद्द्वैतधर्मिणि ॥ ४६ ॥ उच्छिष्टमवशिष्टं वा पथ्यं पूतमभीप्सितम् । भक्तानां भोजनं विष्णोर्नैवेद्यं सात्विकं मतम्॥४७

कहीं भी किसी प्रकारकी भेददृष्टि न रक्खे ॥ ४२ ॥ इस प्रकार निरन्तर कीहुई भगवद्भक्ति देवताओंको दैत्योंको और मनुष्योंको तत्काल पवित्र करदेती है ॥ ४३ ॥ जो नित्य प्रकृति है और जो ब्रह्मसम्पत्ति है; वही भक्तिरूपसे प्रकाशित है, वह भक्ति ही वेदादिमें श्रेष्ठ कही है, भक्ति ही ब्रह्मा विष्णु और शिवरूप है ॥ ४४ ॥ संसारमें जिन पुरुषों को द्वैतज्ञान है, उनमेंसे जिनको सत्त्वगुणका अध्यास है, वे भक्त हैं, जिनको रजोगुणका अध्यास है, वे इन्द्रियोंके व्यापार। में लोलुप होरहे हैं और जिन पुरुषोंको तमोगुणका अध्यास है वे घोर कार्य करनेमें आसक्त रहते हैं ॥ ४५ ॥ संसारमें जिन पुरुषोंको द्वैतज्ञान होरहा है; उनमें जिनको सत्त्वगुण का आविर्भाव है, वे निर्गुणताको पाते हैं, जिनको रजोगुण की प्राप्ति होती है, उनकी विषयभोगमें अभिलाषा होती है और जिन पुरुषोंमें तमोगुणकी अधिकता है, वे नरकको प्राप्त होंगे ॥ ४६ ॥ भोग लगे हुए, सुपथ्य, इच्छित और पवित्र विष्णुभगवान्के नैवेद्यको जो भक्त खाते हैं, वे ही

इन्द्रियप्रीतिजननं शुक्रशोणितवर्द्धनम् । भोजनं राजसं शुद्ध-मायुरारोग्यवर्द्धनम् ॥४८॥ अतःपरं तामसानां कट्वम्लोष्ण-विदाहिकम् । पूतिपर्युषितं ज्ञेयं भोजनं तामसप्रियम् ॥ ४९ ॥ सात्त्विकानां वने वासो ग्रामे वासस्तु राजसः । तामसं द्यूत-मद्यादिसदनं परिकीर्त्तितम् ॥ ५० ॥ न दाता स हरिः किञ्चित् सेवकस्तु न याचकः । तथापि परमा प्रीतिस्तयोः किमिति शाश्वती ॥ ५१ ॥ इत्येतत् भगवत ईश्वरस्य विष्णो-र्गुणकथनं सनको विशुद्ध भक्त्या । सविनयवचनैः

सात्त्विक भोजन है ॥ ४७ ॥ जो इन्द्रियोंको प्रसन्न करता है, जिससे वीर्य और रुधिरकी वृद्धि होती है,जिससे आयुकी वृद्धि होती है और जिससे शरीर नीरोग रहता है, उस भोजनको राजस भोजन कहते हैं ॥४८॥ अब तामस भोजन का वर्णन करते हैं, कटु, खट्टा, गरम, जलेहुए और वासी भोजनको तामस भोजन कहते हैं और यह तामसी पुरुषों को प्रिय होता है ॥ ४९ ॥ वनमें रहना सात्त्विक है, ग्रामका निवास राजस है और तामस पुरुष जुएके स्थानमें अथवा मद्यके स्थानमें रहते हैं ॥ ५० ॥ न तो श्रीहरि किसी भक्त को कुछ देते हैं और न वह भक्त कुछ याचना करता है, परन्तु तो भी श्रीहरि और भक्तपुरुषकी सदा परस्पर परम-प्रीति मालूम होती है, यह थोड़े आश्चर्यकी बात नहीं है५१ पवित्रहृदय सनक देवर्षि, इसप्रकार विष्णुभगवान्के गुणोंको ...नकर परमप्रसन्न हुए और नम्रताके वचनोंसे स्तुति करके

सुरभिर्वृतं परिस्तुत्येन्द्रपुरं जगाम शुद्धः ॥ ५२ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे
नृगकलशशिध्वजसंवादे जातिस्मरत्वकथनं
नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

शशिध्वज उवाच । एतद् वः कथितं भूपाः ! कथनीयोरुकर्मणः । कथा भक्तस्य भक्तेश्च किमन्यत् कथयाम्यहम् ॥१॥ भूपा ऊचुः । त्वं राजन् ! वैष्णवश्रेष्ठः सर्वसत्त्वहिते रतः । तवावेशः कथं युद्धरङ्गे हिंसादिकर्मणि ॥ २॥ प्रायशः साधवो लोके जीवानां हितकारिणः । प्राणबुद्धिधनैर्वाग्भिः सर्वेषां विषयात्मनाम् ॥ ३ ॥ शशिध्वज उवाच । द्वैतप्रकाशिनी या तु प्रकृतिः कामरूपिणी । सा सूते त्रिजगत् कृत्स्नं वेदांश्च

इन्द्रपुरीको चलेगये ॥ ५२ ॥ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥

राजा शशिध्वज बोला, कि—हे राजाओं ! जिनके आश्चर्यके कर्म वर्णन करने योग्य हैं, ऐसे भक्तोंका और भक्तिका माहात्म्य मैंने तुमसे कहा, कहिये अब क्या वर्णन करूँ ॥१॥ यह सुन राजे बोले, कि-हे राजन् ! तुम विष्णु भगवान्‌के परमभक्त हो और सदा सब प्राणियोंका कल्याण करनेके उद्योगमें लगे रहते हो, अहिंसा आपका परमधर्म्म है, फिर आप हिंसादि दोष करनेमें क्यों प्रवृत्त हुए यह कहिये ? ॥ २ ॥ हमने देखा है, कि—प्रायः साधुपुरुष प्राणोंसे, बुद्धिसे, धनसे और वाक्यसे, विषयोंमें लिप्तहुए जीवोंका हित करते हैं ॥ ३ ॥ यह सुनकर राजा शशिध्वज बोला, कि–सत्त्व–रज–तमोरूप जो त्रिगुणात्मिका प्रकृति है, उससे ही द्वैतभावकी प्रतीति होती है,यह प्रकृति ही काम-

त्रिगुणात्मिका ॥ ४ ॥ ते वेदास्त्रिजगद्धर्मशासना धर्म-
नाशनाः । भक्तिप्रवर्त्तका लोके कामिनां विषयैपिणाम् ५
वात्स्यायनादिमुनयो मनवो वेदपारगाः । वहन्ति बलिमीशस्य
वेदवाक्यानुशासिनाः ॥ ६ ॥ वयं तदनुगाः कर्मधर्मनिष्ठा
रणप्रियाः । जिघांसन्तं जिघांसामो वेदार्थकृतनिश्चयाः ॥७॥
अवध्यस्य वधे यावांस्तावान् वध्यस्य रक्षणे । इत्याह भगवान्
व्यासः सर्ववेदार्थतत्परः ॥ ८॥ प्रायश्चित्तं न तत्रास्ति तत्रा-
धर्मः प्रवर्त्तते । अतोऽत्र वाहिनीं हत्वा भवतां युधि दुर्जयाम् ९

रूपिणी अर्थात् संकल्पविकल्परूप है, इस प्रकृतिसे ही
चारों वेद और तीनों लोक उत्पन्न हुए हैं ॥ ४ ॥ जो
विषयों की अभिलाषा करनेवाले कामी पुरुष हैं उनके
लिये वेदने त्रिलोकीके धर्म नियत करके अधर्मका नाश
करनेको भक्ति उत्पन्न करदी है ॥ ५ ॥ वेदके पारङ्गत
वात्स्यायन आदि ऋषि और मनुष्य वेदकी आज्ञाके अनु-
सार उन सर्वेश्वर विष्णु भगवान्के अर्थ यज्ञादि करते
हैं ॥ ६ ॥ मैंने भी उस वेदकी आज्ञाके अनुसार धर्म्म कर्म
करनेमें तत्पर होकर युद्ध किया अर्थात् मैंने वेदके तात्पर्यके
अनुसार आततायी (मारनेको आते हुए) शत्रुके साथ
युद्ध किया ॥ ७ ॥ सब वेदोंके तात्पर्य्यको जाननेवाले परम
चतुर वेदव्यासजी महाराजने कहा है, कि-अवध्य (मारनेके
अयोग्य) पुरुषका वध करनेमें जैसा पाप है, वध्य (मारने
योग्य) पुरुषकी रक्षा करनेमें भी वैसा ही पाप होता है ८
ऐसा करने पर इतना अधर्म्म होता है,कि-जिसका प्रायश्चित्त
नहीं होसकता, इस कारण संग्राममें आपकी दुर्जय सेनाको

धर्मं कृतञ्च कल्किन्तु समानीयागता वयम् । एषा भक्तिर्मम मता तत्राभिप्रेतमीरय ॥ १० ॥ अहं तदनुवक्ष्यामि देववाक्यानुसारतः । यदि विष्णुः स सर्वत्र तदा किं हन्ति को हतः ११ हन्ता विष्णुर्हतो विष्णुर्वधः कस्यास्ति तत्र चेत् । युद्धयज्ञादिषु वधे न वधो वेदशासनात् ॥ १२ ॥ इति गायन्ति मुनयो मनवश्च चतुर्दश । इत्थं युद्धैश्च यज्ञैश्च भजामो विष्णुमीश्वरम् ॥ १३ ॥ अतो भागवतीं मायामाश्रित्य विधिना यजन् । सेव्यसेवकभावेन सुखी भवति नान्यथा ॥१४॥ भूपा ऊचुः।

संहार करके धर्म्म, सत्ययुग और कल्किजीको लेकर चला आया, मेरे विचारमें यह भक्ति ही सर्वोत्तम है, इस विषयमें आपका क्या विचार है ? सो कहो ? ॥ ९ ॥ १० ॥ तब मैं वेदकी आज्ञाके अनुसार उत्तर दूंगा सब जगह विष्णुभगवान् ही हैं, यह सिद्धान्त यदि ठीक है तो कौन किसका नाश करता है ? अर्थात् कोई किसीका नाश नहीं करता है और न कोई नष्ट होता है ॥ ११ ॥ मारनेवाला भी विष्णुरूप है और जो माराजाता है वह भी विष्णुरूप है, इसकारण न किसीने मारा और न किसीका वध हुआ, वेदकी आज्ञा है कि-युद्धमें और यज्ञमें वध करना हिंसामें नहीं गिना जाता ॥ १२ ॥ महर्षियोंने और चौदह मनुओंने ऐसा ही वर्णन किया है, मैंने भी इसीप्रकार युद्धके द्वारा और यज्ञके द्वारा विष्णु भगवान्का पूजन किया है ॥ १३ ॥ इसप्रकार भगवती मायाका अवलम्बन कर सेव्यसेवकभावसे पूजन करके भक्त पुरुष सुखी होता है और किसी प्रकारसे सुख की प्राप्ति नहीं होसक्ती है ॥ १४ ॥ यह सुन राजे बोले,

निमेर्यस्य भूपाल ! गुरोः शापात् मृतस्य च। तादृशे भोगायतने विरागः कथमुच्यताम् ॥ १५ ॥ शिष्यशापात् वशिष्ठस्य देहात्राशिर्मृतस्य च। श्रूयते किल मुक्तानां जन्म भक्तविमुक्तता ॥ १६ ॥ अतो भागवती माया दुर्बोध्या विजितात्मनाम्। विमोहयति संसारे नानात्वादिन्द्रजालवत् १७ इति तेषां वचो भूयः श्रुत्वा राजा शशिध्वजः। प्रोवाच वदतां श्रेष्ठो भक्तिप्रवणया धिया ॥ १८ ॥ शशिध्वज उवाच। बहूनां जन्मनामन्ते तीर्थक्षेत्रादियोगतः। दैवाद्भ भवेत् साधु-

कि-हे राजन् शशिध्वज ! निमि राजाने गुरु वशिष्ठके शापसे देहत्याग किया था, परन्तु उस, कर्म्मोंके भोगनेके स्थानरूप शरीरमें उस राजा निमिको किस कारण वैराग्य हुआ ? अर्थात् यज्ञके अन्तमें देवताओंने प्रसन्न होकर उनको शापसे छुटा दिया था और देहमें प्रवेश करनेकी आज्ञा दी थी, फिर किसकारण राजा निमिने त्यागेहुए देहमें प्रवेश करना स्वीकार न किया ? ॥ १५ ॥ और सुननेमें आया है, कि-महर्षि वशिष्ठजी ने अपने शिष्य निमि राजाके शापसे देहको त्याग दिया और फिर ग्रहण करलिया, हे राजन् ! भक्तपुरुष मुक्त होजाता है, उस मुक्तपुरुषका फिर जन्म कैसे होसक्ता है ॥ १६ ॥ इस विषयमें भगवान्की मायाको जानना ज्ञानी पुरुषोंको भी अतिकठिन है, यह माया अनेकों प्रकारके इन्द्रजालके समान संसारको सदा मोहमें डाले रखती है ॥ १७ ॥ उत्तर देनेमें परमचतुर राजा शशिध्वज उनका यह वाक्य सुनकर भक्तिसे भरेहुए हृदयमें प्रसन्न होकर बोला ॥ १८ ॥ शशिध्वज बोला,

सङ्गस्तस्मादीश्वरदर्शनम् ॥ १९ ॥ ततः सालोक्यताम्प्राप्य भजन्त्यादृतचेतसः । भुक्त्वा भोगाननुपमान् भक्तो भवति संसृतौ ॥ २० ॥ रजोजुषः कर्मपरा हरिपूजापराः सदा । तन्नामानि प्रगायन्ति तद्रूपस्मरणोत्सुकाः ॥ २१ ॥ अवतारानुकरणपर्वव्रतमहोत्सवाः । भगवद्भक्तिपूजाढ्याः परमानन्दसंसुताः ॥ २२ ॥ अतो मोक्षं न वाञ्छन्ति दृष्टमुक्तिफलोदयाः । मुक्त्वा लभन्ते जन्मानि हरिभावप्रकाशकाः ॥ २३ ॥ हरिरूपाः क्षेत्रतीर्थपावना धर्मतत्पराः । सारासारविदः सेव्य-

---

कि-तीर्थ क्षेत्रादिके दर्शनके फलसे अनेकों जन्मोंके अनन्तर दैवके अनुग्रहसे जीवको साधु-पुरुषोंका सङ्ग मिलता है साधुपुरुषोंका सङ्ग होनेसे ही ईश्वरका साक्षात् दर्शन होता है ॥१९॥ फिर वह भक्तपुरुष विष्णुलोकमें जाकर आदर युक्त चित्तसे भगवान्का भजन करता है, इस प्रकार जीव अनुपम वस्तुओंका भोग करके संसारमें भक्त होता है २० जो पुरुष रजोगुणी होते हैं वे नियमसे कर्म्मानुष्ठान करके सदा श्रीहरिका पूजन करते हैं और सदा हरिनामका गान करते हैं तथा सदाही श्रीहरिके रूपका स्मरण करते रहते हैं२१ भगवान्के अवतारोंकी लीला करते हैं, एकादशी आदि हर एक पर्वमें व्रतधारण करते हैं उत्सव करते हैं भगवान्की भक्ति और पूजन करनेके कार्यमें ही सदा आनन्दित रहते हैं ॥ २२ ॥ ऐसे भक्तपुरुष इसप्रकारके शुभकर्मोंके फल प्रत्यक्ष भोगते हुए मुक्तिकी भी इच्छा नहीं करते, भक्त पुरुष स्वर्गके भोगोंको भी भोगकर फिर जन्म ग्रहण करके श्रीहरिकी भक्ति करते हैं ॥ २३ ॥ भक्तपुरुष भी श्रीहरिके

सेवका द्वैतविग्रहाः ॥ २४ ॥ यथावतारः कृष्णस्य तथा तत्से-विनामिह । एवं निमेर्निमिषता लीला भक्तस्य लोचने २५ मुक्तस्यापि वशिष्ठस्य शरीरभजनादरः । एतद् वः कथितं भूपा ! माहात्म्यं भक्तिभक्तयोः ॥ २६ ॥ सद्यः पापहरं पुसां हरिभक्तिविवर्द्धनम् । सर्वेन्द्रियस्थदेवानामानन्दसुखसञ्च-यम् । कामरागादिदोषघ्नं महामोहनिवारणम् ॥ २७ ॥ नानाशास्त्रपुराणवेदविमलव्याख्यामृताम्भोनिधिं, संमथ्या-तिचिरं त्रिलोकमुनयो व्यासादयो भावुकाः । कृष्णे भावम-

---

दूसरे रूप होते हैं, सम्पूर्ण क्षेत्र और तीर्थोंको भी पवित्र करते हैं, सदा धर्मकार्य करनेमें तत्पर रहते हैं, सार असार पदार्थको भलीप्रकार जानते हैं और उनकी ही सेव्य-सेवक रूप दो मूर्त्ति हैं ॥ २४ ॥ जिसप्रकार भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रजीका अवतार हुआ था, तिसीप्रकार उनके भक्त भी समय समय पर अवतार धारण करते हैं, इसप्रकार वह श्रीकृष्ण भगवान् जो भक्तोंके नेत्रोंमें निमेषरूपसे स्थित रहते हैं,यह उनकी लीलामात्र है २५वशिष्ठजीने जो मुक्त होकर भी शरीर धारण किया उसका भी कारण यही है,,हे राजाओं! यह भक्ति और भक्तोंका माहात्म्य मैंने तुमसे कहा ॥२६॥ इसको सुनकर तत्काल मनुष्यके सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं और श्रीहरिमें भक्ति बढ़ती है, इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ देव-ताओंको सुख और आनन्दकी वृद्धि होती है, राग द्वेष आदि सब दोष दूर होते हैं और माया-मोह आदिका नाश होता है ॥ २७ ॥ त्रिलोकीके निवासी वेदव्यास आदि भक्तिमान् मुनिगण वेद, पुराण और अनेकों शास्त्रोंकी

न्यमेवममलं हैयङ्गवीनं नवं, लब्ध्वा संसृतिनाशनं त्रिभुवने श्रीकृष्णतुल्यायते ॥ २८ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे भक्तिभक्तमाहात्म्यं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सूत उवाच। इति भूपः सभार्यां सः कथयित्वा निजाः कथाः । शशिध्वजः प्रीतमनाः प्राह कल्किं कृताञ्जलिः ॥१॥ शशिध्वज उवाच । त्वं हि नाथ ! त्रिलोकेश ! एते भूपास्त्वदाश्रयाः । मां तथा विद्धि राजानं त्वन्निदेशकरं हरे ॥ २ ॥ तपस्तप्तुं यामि कामं हरिद्वारं मुनिप्रियम् । एते मत्पुत्रपौत्राश्च पालनीयास्त्वदाश्रयाः ॥ ३ ॥ ममापि कामं जानासि पुरा

निर्मल व्याख्यारूप अमृतके समुद्रको मथकर उसमेंसे निकले हुए संसारबन्धनसे छुटानेवाले अनन्य भक्तिरूप ताजे और स्वच्छ मक्खनको प्राप्त होकर त्रिलोकीमें श्रीकृष्ण भगवान् की समान होगये ॥ २८ ॥ बारहवां अध्याय समाप्त ।१२।

सूतजी कहते हैं, कि-हे ऋषियो ! प्रसन्न चित्त राजा शशिध्वज सभामें स्थित पुरुषोंके समीप इसप्रकार अपना वृत्तान्त वर्णन करके हाथ जोडकर कल्कि भगवान्से कहने लगा ॥१॥ राजा शशिध्वज बोला, कि हे हरे ! तुम त्रिलोकी के नाथ हो, ये सब राजे आपके आश्रित हैं और इन राजाओंको तथा मुझे आप अपना आज्ञाकारी समझिये २ मैं अब मुनियोंके प्रिय श्रीहरिद्वारमें तपस्या करनेजाता हूँ, यह सब मेरे पुत्र पौत्रादि आपके ही आश्रित हैं, आप ही इनका प्रतिपाल करेंगे ॥ ३ ॥ हे देवदेव ! मेरी जो इच्छा है वह आप जानते ही हैं, पहिले

जाम्बवतो यथा। निधनं द्विविदस्यापि तदा सर्व्वं सुरेश्वर ! ४ इत्युक्त्वा गन्तुमुद्युक्तं भार्य्यया सहितं नृपम् । लज्जयाधोमुखं कल्किं प्राहुर्भूपाः किमित्युत ॥ ५ ॥ हे नाथ ! किमनेनोक्तं यच्छ्रुत्वा त्वमधोमुखः । कथं ? तद्ब्रूहि कामं नः किं वा नः शाधि संशयात् ॥ ६ ॥ कल्किरुवाच । अमु पृच्छत वो भूपा युष्माकं संशयच्छिदम् । शशिध्वजं महाप्राज्ञं मद्भक्तिकृतनिश्चयम् ॥ ७ ॥ इति कल्केर्वचः श्रुत्वा ते भूपाः प्रोक्तकारिणः ! राजानं तं पुनः प्राहुः संशयापन्नमानसाः ॥८ ॥ नृपा ऊचुः। किं त्वया कथितं राजन् ! शशिध्वज ! महामते।

अवतारमें आपने जाम्बवान् और द्विविद वानरोंका वधकिया था. वह भी आपको स्मरण ही है ॥ ४ ॥ जब राजा शशिध्वज यह कथा कहकर स्त्रीसहित जानेको उद्यत हुआ, उस समय कल्कि भगवान्ने लज्जाके कारण मुख नीचेको कर लिया, उस समय राजे लोग इसका कारण जाननेकी इच्छा में कहनेलगे; कि-॥५॥ हे नाथ ! राजा शशिध्वजने यह क्या बात कही ? और आपने उसको सुनकर मुख नीचेको क्यों करलिया ? यह हमसे कहकर आप हमारे सन्देहको दूर करिये ॥ ६ ॥ यह सुनकर कल्किजी बोले, कि-हे राजाओं आप इस शशिध्वज राजासे इसका कारण बूझो, यह ही तुम्हारा सन्देह दूर करेगा, क्योंकि--यह परमज्ञानी और और मेरा परमभक्त है ॥ ७ ॥ राजे लोग, कल्किजीकी यह बात सुनकर उनकी आज्ञाके अनुसार सन्दिग्धचित्त हो राजा शशिध्वजसे फिर कहनेलगे ॥ ८ ॥ राजे बोले, कि-हे शशिध्वज ! आप परमबुद्धिमान् और राजा हो, तुमने

कथं कल्किस्तद्वदिदं श्रुत्वैवाभूदधोमुखः ॥ ९ ॥ शशिध्वज उवाच। पुरा रामावतारेण लक्ष्मणादिन्द्रजिद्वधम्। मोक्तं चालक्ष्य द्विविदो राक्षसत्वात् स दारुणात् १० अग्न्यागारे ब्रह्मवीरवधेनैकाह्निको ज्वरः। लक्ष्मणस्य शरीरेण प्रविष्टो मोहकारकः ॥ ११ ॥ तं व्याकुलमभिप्रेक्ष्य द्विविदो भिषजां वरः। अश्विवंशेन सञ्जातः स्वापयामास लक्ष्मणम्। १२। लिखित्वा रामभद्रस्य संज्ञापत्रीमतन्द्रितः। लक्ष्मणं दर्शयामास ऊर्ध्वस्तिष्ठन् महाभुजः ॥ १३ ॥ लक्ष्मणो वीक्ष्य तां पत्रीं विज्वरो बलवानभूत्। स ततो द्विविदं प्राह वरं वरय वानर! ॥१४॥

इस समय क्या बात कही और तुम्हारी बातको सुनकर कल्किजीने मुख नीचेको क्यों कर लिया ? यह सुन राजा शशिध्वज बोला, कि–पहले जिस समय रामावतार हुआ था, तब लक्ष्मणजीने मेघनादको मारा था वह लक्ष्मणजी के हाथसे मरनेके कारण दारुण राक्षसयोनिसे छूटगया१० अग्निशालामें ब्राह्मण (मेघनाद) का वध करनेके कारण लक्ष्मणजीके शरीरमें ऐकाहिक ज्वर प्रवेश करगया उससे लक्ष्मणजीको मूर्च्छा आदि होनेलगी ॥ ११ ॥ अश्विनीकुमारके वंशमें उत्पन्न हुए वैद्यवर द्विविद नामक वानरने लक्ष्मणजीको अतिव्याकुल देखकर एक मन्त्र सुनाया १२ और उस मन्त्रको लिखकर तत्काल श्रीरामचन्द्रजीके सामने ऊपरके स्थानमें स्थित होकर लक्ष्मणजीको दिखाया ।१३। लक्ष्मणजी उस मन्त्र लिखेहुए पत्रको देखकर ज्वररहित और बलयुक्त हुए, फिर लक्ष्मणजीने उस द्विविद नामक वानरसे कहा, कि–हे द्विविद ! तुम वर माँगो ॥ १४ ॥ यह

द्विविदस्तद्वचः श्रुत्वा लक्ष्मणं प्राह हृष्टवत् । त्वत्तो मे मरणं प्रार्थ्यं वानरत्वाच्च मोचनम् ॥ १५ ॥ पुनस्तं लक्ष्मणः प्राह मम जन्मान्तरे तव । मोचनं भविता कीश ! बलरामशरीरिणः ॥१६॥ समुद्रस्योत्तरे तीरे द्विविदो नाम वानरः । ऐकाहिकं ज्वरं हन्ति लिखनं यस्तु पश्यति१७ इति मन्त्राक्षरं द्वारि लिखित्वा तालपत्रके । यस्तु पश्यति तस्यापि नश्यत्यैकाहिकज्वरः ॥ १८ ॥ इति तस्य वरं लब्ध्वा चिरायुः सुस्थवानरः । बलरामास्त्रभिन्नात्मा मोक्षमापाकुतोभयम् ॥ १९ ॥ तथा क्षेत्रे सूतपुत्रो निहतो लोमहर्षणः ।

बात सुनकर द्विविद हृदयमें अत्यन्त प्रसन्न हुआ और कहनेलगा, कि-मैं यह वर माँगता हूँ, कि-आपके हाथसे मेरा मरण हो और इस वानरयोनिसे छूटजाऊँ ॥ १५ ॥ यह सुनकर लक्ष्मणजी बोले, कि-मैं दूसरे जन्ममें बलराम रूपसे अवतार लूँगा, उस समय मेरे हाथसे तेरी वानरयोनि छूटजायगी ॥ १६ ॥ "समुद्रस्योत्तरे तीरे द्विविदो नाम वानरः" अर्थात् समुद्रके उत्तर तटपर द्विविद नाम वानर है, इसप्रकार लिखेहुए मन्त्रको जो पुरुष देखेगा, उसका ऐकाहिक (प्रतिदिन आनेवाला) ज्वर दूर होजायगा ॥ १७ ॥ जो पुरुष इस मन्त्रको ताड़के पत्र पर लिखकर अपने घरके दरवाजे पर लगावेगा और जो उसे देखेगा, उसका ऐकाहिक ज्वर दूर होजायगा ॥१८॥ द्विविद वानर लक्ष्मणजीसे यह वरदान पाकर नीरोगतापूर्वक बहुत समयपर्यन्त जीवन धारण करता रहा, फिर बहुतकालके अनन्तर बलरामजीके शस्त्रसे मरकर वानरयोनिसे छूटगया ॥ १९ ॥

बलरामास्त्रयुक्तात्मा नैमिषेऽभून् स्ववाञ्छया ॥ २० ॥ जांववांश्च पुरा भूपा वामनत्वं गते हरौ । तस्याप्यूर्ध्वगतं पादं तत्र चक्रे प्रदक्षिणम् ॥ २१ ॥ मनोजवं तं निरीक्ष्य वामनः प्राह विस्मितः । मत्तो वृणु वरं काममृक्षाधीश ! महाबल ! ॥२२॥ इति तं हृष्टवदनो ब्रह्मांशो जाम्बुवान् मुदा । प्राह भो ! चक्रदहनात् मम मृत्युर्भविष्यति ॥ २३ ॥ इत्युक्ते वामनः प्राह कृष्णजन्मनि मे तव । मोक्षश्चक्रेण संभिन्नशिरसः संभविष्यति ॥ २४ ॥ मम कृष्णावतारे तु सूर्यभक्तस्य भूपतेः ।

इसीप्रकार अपनी इच्छाके अनुसार सूतजीके पुत्र लोमहर्षण नैमिषारण्यमें बलरामजीके अस्त्रसे मरणको प्राप्तहुए ॥२०॥ हे राजाओं ! पहले जिससमय विष्णुभगवान्ने वामन अवतार धारण किया था, उस समय जब उन्होंने अपने तीन चरणोंसे सम्पूर्ण त्रिलोकीको नापलिया था, तब जाम्बवान् ने उनके ऊपरको उठे हुए चरणकी परिक्रमा की थी ॥२१॥ वामन भगवानने मनको समान उसका वेग देखकर हृदयमें विस्मय मानकर कहा था कि-हे ऋक्षपते ! तुम बड़े बलवान् हो मुझसे वरदान माँगो ॥ २२ ॥ ब्रह्माजीके अंशसे उत्पन्न हुआ जाम्बवान् यह बात सुनकर प्रसन्न हुआ और बोला कि-मुझे यह वरदान दो, कि-आपके चक्रसे मेरा मरण हो ॥ २३ ॥ वामन भगवान् जाम्बवान्के इस कहनेको सुन कर कहनेलगे, कि-मैं जिस समय कृष्णावतार धारण करूँगा तब मेरे चक्रसे तुम्हारा मस्तक कटेगा, तब तुम मुक्ति पाओगे ॥ २४ ॥ अतः जब श्रीकृष्णावतार हुआ तब मैं सत्राजित् नामक राजा हुआ, मैं सूर्यकी आराधना किया

सत्राजितस्तु मण्यर्थे दुर्वादः समजायत ॥ २५ ॥ प्रसेनस्य तत्र भ्रातुर्वधस्तु मणिहेतुकः । सिंहात् तस्यापि मण्यर्थे वधो जाम्बवता कृतः ॥ २६ ॥ दुर्वादभयभीतस्य कृष्णस्यामितवेजसः । मण्यन्वेषणचित्तस्थ ऋक्षेणाभूद्रणो बिले ॥ २७ ॥ स निजेशं परिज्ञाय तच्चक्रग्रस्तबन्धनम् । हृष्टो बभूव सहसा कृष्णं पश्यन् सलक्ष्मणम् ॥ २८ ॥ नवदूर्वादलश्यामं दृष्ट्वा प्रादात् निजात्मजाम् । तदा जाम्बवतीं कन्यां प्रगृह्य मणिना सह ॥ २९ ॥ द्वारकां पुरमागत्य सभागां मामुपाह्वयत् । आहूय मह्यं प्रददौ मणिं मुनिगणार्चितम् ॥ ३० ॥ सोऽहं

करता था, उस समय मुझने मणिके कारण श्रीकृष्णचन्द्रको कलङ्क लगगया ॥ २५ ॥ मेरे छोटे भ्राताका नाम प्रसेन था, एक सिंहने मणिके कारण मेरे छोटे भ्राताको मारडाला वह सिंह भी मणिके कारण जाम्बवान्से मारागया ॥२६॥ परमतेजस्वी श्रीकृष्ण भगवान् कलङ्कसे भयभीत होकर मणि की खोज करनेलगे, फिर एक गुफामें जाम्बवान्के साथ उनका संग्राम हुआ ॥ २७ ॥ उस समय जाम्बवान्ने अपने प्रभुको पहचान लिया और श्रीकृष्ण भगवान्के चक्रसे उस का मस्तक कटा, जाम्बवान् लक्ष्मणके सहित श्रीकृष्णचन्द्र का दर्शन करते २ प्राणोंको त्यागकर मुक्तिको प्राप्त होगया ॥ २८ ॥ परन्तु उस ऋक्षराज जाम्बवान्ने श्रीकृष्णचन्द्रकी नवदूर्वादलश्याम मूर्तिका दर्शन करके उनको मणि और साथमें अपनी जाम्बवती नामक कन्या दी ॥ २९ ॥ श्रीकृष्णने जाम्बवतीको लियेहुए द्वारकामें आकर मुझे सभामें बुलाया, और उन्होंने महर्षियोंको दुर्लभ वह मणि मुझे दे दी ॥३०॥ उस समय मैंने अत्यन्त लज्जित होकर

तां लज्जया तेन मणिना कन्यकां स्वकाम् । विवाहेन ददावस्मै लावण्याज्जगृहे मणिम् ॥ ३१ ॥ तां सत्यभामामादाय मणिं मय्यर्प्य स प्रभुः । द्वारकामागत्य पुनर्गजाह्वयमगाद्विभुः ॥३२॥ गते कृष्णे मां निहत्य शतधन्वाऽग्रहीन्मणिम् । अतोऽहमिह जानामि पूर्वजन्मनि यत् कृतम् ॥ ३३ ॥ मिथ्याभिशापात् कृष्णस्य नवाभून्मोचनं मम । अतोऽहं कल्किरूपाय कृष्णाय परमात्मने । दत्त्वा रमां सत्यभामारूपिणीं यामि सद्गतिम् ॥ ३४ ॥ सुदर्शनास्त्रघातेन मरणं मम कांक्षितम् । मरणेऽभूदिति ज्ञात्वा रणे वाञ्छामि मोचनम् ॥ ३५ ॥

वह मणि और सत्यभामा नामक अपनी कन्या श्रीकृष्णचन्द्रको अर्पण की, श्रीकृष्णचन्द्रने भी दोनोंकी अतिसुन्दरता देखकर ग्रहण करलिया ॥३१ ॥ कुछ दिनोंके अनन्तर प्रभु श्रीकृष्ण मेरे पास मणि रखकर सत्यभामा को साथमें लियेहुए हस्तिनापुरको गए ॥ ३२ ॥ जब श्रीकृष्णचन्द्र हस्तिनापुरको चलेगये तब शतधन्वा नामक राजाने मेरा वध करके मणि लेली, इसकारण ही भगवान्ने पहले अवतारमें जो २ चरित्र किये थे वे मुझे सब मालूम हैं ॥ ३३ ॥ मैंने श्रीकृष्णचन्द्रको मिथ्या कलङ्क लगाया था, इसकारण उस जन्ममें मेरी मुक्ति नहीं हुई, इसकारण मैं इस जन्ममें कल्किरूप परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रको सत्यभामारूप अपनी रमानामक कन्या देकर श्रेष्ठगतिको प्राप्त होऊँगा ॥ ३४ ॥ मैंने भी इच्छा की थी, कि-सुदर्शनचक्रके मेरी मृत्यु हो, सो कल्कि भगवान्के साथ संग्राममें मृत्यु होनेसे मुक्ति होजायगी, ऐसा जानकर मैं युद्ध करनेमें प्रवृत्त

इत्यसौ जगतामीशः कल्किः श्वशुरघातनम् । श्रुत्वैवाधोमुखस्तस्थौ ह्रिया धर्मभिया प्रभुः ॥ ३६ ॥ अत्याश्चर्यमपूर्वमुत्तममिदं श्रुत्वा नृपा विस्मिता लोकाः संसदि हर्षिता मुनिगणाः कल्केर्गुणाकर्षिताः । आख्यानं परमादरेण सुखदं धन्यं यशस्यं परं श्रीमद्भूपशशिध्वजेरितवचो मोक्षप्रदं चाऽभवत् ॥३७॥
इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे शशिध्वजेरितचक्रमरणाख्यानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

सूत उवाच । ततः कल्किर्महातेजाः श्वशुरं तं शशिध्वजम् । समामन्त्र्य वचश्चित्रैः सह भूपैर्ययौ हरिः ॥ १ ॥ शशिध्वजो वरं लब्ध्वा यथाकामं महेश्वरीम् । स्तुत्वा मायां त्यक्तमायः

हुआ था ॥ ३५ ॥ जगत्पति प्रभु कल्कि भगवान इसप्रकार श्वसुरका वध सुनकर धर्मके भयसे और लज्जासे नीचेको मुख करके बैठगये ॥ ३६ ॥ अति आश्चर्यकारक,अपूर्व परमरमणीय इस उपाख्यानको सुनकर सभामें बैठेहुए राजे लोग अचम्भेमें होगये और परमआनन्दको प्राप्तहुए, महर्षिगण कल्कि भगवान्के गुणोंसे आकृष्टचित्त होगये, श्रीमान् राजा शशिध्वजके कहेहुए इस उपाख्यानको जो कोई श्रवण करेगा, वह सुखी, धनवान्, परमयशस्वी और मोक्षका पात्र होगा ॥ २७ ॥ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥

सूतजी कहते हैं, कि-हे ऋषियों ! तदनन्तर महातेजस्वी कल्कि भगवान् अनेकों प्रकारकी वार्त्ताओंसे श्वशुर शशिध्वजको प्रसन्न करके राजाओंसहित चलेगये ॥ १ ॥ राजा शशिध्वज भी कल्कि भगवान्से यथेष्ट वर पाकर माहेश्वरी महामायाकी स्तुति करके मायारूपी फाँसीसे छूट अपनी

सप्रियः प्रययौ वनम् ॥ २ ॥ कल्किः सेनागणैः सार्द्धं प्रययौ काञ्चनां पुरीम् । गिरिदुर्गावृतां गुप्तां भोगिभिर्विषवर्षिभिः ३ विदार्य दुर्गं सगणः कल्किः परपुरञ्जयः । छित्त्वा विषायुधान् बाणैस्तां पुरीं ददृशेऽच्युतः ॥ ४ ॥ मणिकाञ्चनचित्राढ्यां नागकन्यागणावृताम् । हरिचन्दनवृक्षाढ्यां मनुजैः परिवर्जिताम् ॥ ५ ॥ विलोक्य कल्किः प्रहसन् प्राह भूपान् किमित्यहो ! । सर्पस्येयं पुरी रम्या नराणां भयदायिनी । नागनारीगणाकीर्णा किं यास्यामो वदन्त्विह ॥ ६ ॥ इति कर्ण-

---

प्रियतमा स्त्रीसहित वनको चलागया ॥ २॥ तदनन्तर कल्कि भगवान् अपनी सेनाओंके समूहोंसहित काञ्चनी नामक नगरीमें गये, वह नगरी पर्वत और किलोंसे घिरीहुई तथा विषकी वर्षा करनेवाले सर्पोंसे रक्षित थी ॥ ३ ॥ अपनी राजाओंको जीतनेवाले विष्णुरूप कल्कि भगवान् अपनी सेनाओंसहित, उस कठिन किलेको तोडकर बाणोंके द्वारा विषकी वर्षा करनेवाले सर्पोंका संहार करके उस नगरीमें घुसगए ॥ ४ ॥ और देखा, कि—वह पुरी अनेकों प्रकारकी मणि और सुवर्णकी डोरियोंकी समान शोभायमान थी,उस नगरीके हरएक स्थानमें नागकन्या रहती थीं बीच २ में कल्पवृक्ष शोभा पारहे थे, परन्तु तहाँ मनुष्य एक भी नहीं था ॥ ५ ॥ कल्कि भगवान् यह सम्पूर्ण अद्भुत वृत्तान्त देखकर हँसते हुए राजाओंसे कहनेलगे, कि—देखो यह सर्पोंकी पुरी है और कैसी रमणीय है, यह स्थान मनुष्योंको भयदायक है, इसमें केवल नागकन्या रहती हैं, कहो इस नगरीमें आगेको चलें या नहीं ? ॥ ६ ॥ लक्ष्मीपति प्रभु श्रीहरि

च्युताव्यग्रं रमानाथं हरिं प्रभुम् । भूपांस्तदनुरूपांश्च खे वागाहाशरीरिणी ॥ ७ ॥ विलोक्य नेमां सेनाभिः प्रवेष्टुं भोस्त्वमर्हसि । त्वां विनान्ये मरिष्यन्ति विषकन्यादृशादपि ८ आकाशवाणीमाकर्ण्य कल्किः शुकसहायकृत् । ययावेकः खड्गधरस्तुरगेण त्वरान्वितः ॥ ९ ॥ गत्वा तां ददृशे वीरां धीराणां धैर्यनाशिनीम् । रूपेणालक्ष्य लक्ष्मीशं प्राह प्रहसिताननाः ॥ १० ॥ विषकन्योवाच । संसारेऽस्मिन् मम नयनयोर्वीक्षणक्षीणदेहा लोका भूपाः कति कति गता मृत्युमत्युग्र-

और राजाओंने सम्मति की,परन्तु इस विषयमें क्या करना चाहिये, सो निश्चय नहीं करसके, तब तो चिन्ता करनेलगे उस समय आकाशवाणी हुई कि-॥७॥ इस नगरीमें सेना सहित प्रवेश करना उचित नहीं है, क्योंकि-इसके भीतर रहनेवाली विषकन्याकी दृष्टि पड़ते ही एक आपको छोड़कर सबका प्राणान्त होजायगा ॥ ८ ॥ कल्कि भगवान् ऐसी आकाशवाणी सुनकर शीघ्र ही हाथमें तलवार ले घोड़े पर सवार होगये और शुकको साथमें लेकर इकले ही चलदिये ॥ ९ ॥ कुछ दूर जाकर वीर कल्कि भगवान्ने एक अपूर्व कन्या देखी, जिसको देखकर धैर्यवान् ज्ञानियोंका भी धैर्य जाता रहे, वह परमरूपवती कन्या रमानाथ कल्कि भगवान्को देखकर कहनेलगी ॥ १० ॥ विषकन्या बोली, कि-- इस जगत्में बड़े २ पराक्रमी सैंकड़ों राजे तथा और भी अनेकों मनुष्य मेरे दृष्टिपातसे क्षीणशरीर होकर कालके गालमें चलेगये, इसकारण ही मैं अत्यन्त दुःखित हूँ, क्योंकि-- मुझे देवता, दैत्य, मनुष्य आदि किसीके भी साथ अपना

वीर्याः । साहं दीनासुरसुरनरप्रेक्षणप्रेमहीना ते नेत्राब्जद्वय-रससुधासाविता त्वां नमामि ॥ ११ ॥ क्वाहं विषेक्षणा दीना क्वामृतेक्षणसङ्गमः । भवेऽस्मिन् भाग्यहीनायाः केनाहोतपसा कृतः ॥ १२ ॥ कल्किरुवाच । कासि कन्यासि सुश्रोणि ! कस्मादेषा गतिस्तव । ब्रूहि मां कर्मणा केन विषनेत्रं तवाभवत् ॥ १३ ॥ विषकन्योवाच । चित्रग्रीवस्य भार्याहं गन्धर्वस्य महामते ! । सुलोचनेति विख्याता पत्युरत्यन्त-कामदा ॥ १४ ॥ एकदाहं विमानेन पत्या पीठेन सङ्गता । गन्धमादनकुञ्जेषु रेमे कामकलाकुला ॥ १५ ॥ तत्र यक्षमुनिं दृष्ट्वा विकृताकारमातुरम् । रूपयौवनगर्वेण कटाक्षेणाऽहसं

प्रेम होनेकी आशा नहीं है, इस समय मैं आपके दृष्टिपात-रूप अमृतसे सीचीहुईसी हुई हूँ, मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥ ११ ॥ इस संसारमें मैं विषदृष्टि दीना और अत्यन्त दुर्भाग्यवती हूँ, आपकी दृष्टि अमृतकी समान है, मैंने ऐसी कौन तपस्या की थी, जिससे आपके साथ समागम हुआ १२ यह सुन कल्कि भगवान् बोले, कि-हे सुश्रोणि! तू कौन है? किसकी कन्या है? तेरी ऐसी दशा किस कारणसे है ? तूने ऐसा कौन कर्म किया था, जिससे तेरी दृष्टि विष वर्षानेवाली होगई ? ॥ १३ ॥ यह सुन विषकन्या बोली, कि-हे महामते! मैं चित्रग्रीव नामक गन्धर्वकी स्त्री हूँ, मेरा नाम सुलोचना है मै अपने पतिके चित्तको परम प्रसन्न रखती थी ।१४ । एक समय मैं अपने पतिके साथ विमानमें बैठकर गन्धमादनकी कुञ्जोंमें गई और एक पत्थर की शिलापर बैठकर विहार आदि करनेलगी ॥ १५ ॥ उस समय मैंने तहाँ यक्ष मुनिको विकृत

मदात् ॥ १६ ॥ सोपालम्भं मुनिः श्रुत्वा वचनञ्च ममाप्रियम् । शशाप मां क्रुधा तत्र तेनाहं विषदर्शना ॥ १७ ॥ निक्षिप्ताहं सर्पपुरे काञ्चन्यां नागिनीगणे । पतिहीना दैवहीना चरामि विषवर्षिणी ॥ १८ ॥ न जाने केन तपसा भवद्दृष्टिपथं गता । त्यक्तशापामृताक्षाहं पतिलोकं व्रजाम्यतः ॥ १९ ॥ अहो ! तेषामस्तु शापः प्रसादो मा सतामिह । पत्युः शापाद्विमोक्षात् तत्र पादाब्जदर्शनम् ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा सा ययौ स्वर्गं विमानेनार्कवर्चसा । कल्किस्तु तत्पुराधीशं नृपं चक्रे महा-

और आतुर देखकर रूप यौवनके गर्वसे कटाक्षपात करके उपहास्य किया ।१६। महर्षि यक्ष मुनिने मेरे मुखसे उन तिरस्कार युक्त अप्रिय उपहास्यके वाक्योंको सुनकर क्रोधित हो मुझे शाप देदिया, उस शापसे ही मैं विषदृष्टि होगई हूँ १७ तदनन्तर मुझे सर्पोंसे रक्षा की हुई इस काञ्चनी नामक नगरीकी नागनियोंमें डाल दिया, अत्यन्त भाग्यहीन मैं पतिसे हीन होकर दृष्टिसे विष वर्षाती हुई यहाँ अकेली ही रहती हूँ १८ मैं नहीं जान सकती, कि मैंने ऐसी कौनसी तपस्या की थी, जो मुझे आपका दर्शन हुआ, आपके दर्शनसे अब मैं शापसे छूटगई और इससमय मेरी दृष्टि भी अमृतवर्षिणी होगई, अब पतिके पास जाती हूँ ॥ १९ ॥ देखो! कैसा आश्चर्य है ! साधुपुरुषोंकी प्रसन्नताकी अपेक्षा शाप अधिक कल्याण करता है, क्योंकि ऋषिका शाप होनेके कारण शापसे छूटते समय मुझे आपके चरणकमलोंका दर्शन हुआ ॥२०॥ वह विषकन्या इसप्रकार बातें करके सूर्यकी समान तेजोयुक्त विमानमें बैठकर स्वर्गलोकको

मतिम् ॥२१॥ अमर्षस्तत्सुतो धीमान् सहस्रो नाम तत्सुतः । सहस्रतः सुतश्चासीद्राजा विश्रुतवानसिः ॥२२॥ बृहन्नलानां भूपानां संभूता यस्य वंशजाः । तं मनुं भूपशार्दूलं नानामुनिगणैर्वृतः ॥ २३ ॥ अयोध्यायां चाभिषिच्य मथुरामागमद्धरिः । तस्यां भूपं सूर्यकेतुमभिषिच्य महाप्रभम् ॥ २४ ॥ भूपं चक्रे ततो गत्वा देवापिं वारणावते । अरिस्थलं वृकस्थलं माकन्दञ्च गजाह्वयम् ॥ २५ ॥ पञ्चदेशेश्वरं कृत्वा हरिः शम्भलमाययौ । शौम्भं पौण्ड्रं पुलिन्दञ्च सुराष्ट्रं मगधं तथा । कविप्राज्ञसुमन्त्रेभ्यः प्रददौ भ्रातृवत्सलः ॥ २६ ॥ कीकटं मध्यकर्णाटमन्ध्रमोड्रं कलिङ्गकम् । अङ्गं वङ्गं स्वगो-

---

चलीगई, और कल्कि भगवानने महामति नामक राजाको उस काञ्चनपुरीका स्वामी बनादिया ॥ २१ ॥ महामतिका पुत्र अमर्ष हुआ, अमर्षका पुत्र धीमान् सहस्र नामक हुआ, उसका पुत्र परमप्रसिद्ध असि नामक हुआ ॥२२॥ जिसके वंशमें बृहन्नल नामवाले राजाओंकी उत्पत्ति हुई, उस राजसिंह मरुको अयोध्यापुरीका राजतिलक देकर श्रीहरि मुनियोंको साथमें लिये हुए मथुरापुरीमें गए और उन महाप्रभुने राजा सूर्यकेतुको उस मथुरापुरीके राज्यमें अभिषिक्त करदिया ॥ २३ ॥ २४ ॥ फिर वारणावतमें गए, तहां देवापिको राजा बनाकर उसको अरिस्थल, वृकस्थल, माकन्द, हस्तिनापुर और वारणावत इन पांच देशोंका स्वामी बना श्रीहरि सम्भलको चले आये, फिर भ्रातृवत्सल श्रीहरिने कविको शौम्भ, प्राज्ञको पौण्ड्र और सुमन्तको पुलिन्द तथा मगध देश देदिया ॥ २५ ॥ २६ ॥ तदनन्तर जगदीश्वर

त्रेभ्यः प्रददौ जगदीश्वरः॥२७॥ स्वयं सम्भलमध्यस्थकङ्ककेन कलापकान्। देशं विशाखयूपाय प्रादात्कल्किः प्रतापवान्२८ चोलबर्बरकर्वाख्यान्द्वारकादेशमध्यगान् । पुत्रेभ्यः प्रददौ कल्किः कृतवर्म्मपुरस्कृतान् ॥ २९ ॥ पित्रे धनानि रत्नानि ददौ परमभक्तितः । प्रजाः समाश्वास्य हरिः शम्भलग्रामवासिनः ॥ ३० ॥ पद्मया रमया कल्किर्गृहस्थो मुमुदे भृशम् । धर्मश्चतुष्पादभवत् कृतपूर्णं जगत्त्रयम् ॥ ३१ ॥ देवा यथोक्तफलदाश्चरंति भुवि सर्वतः । सर्वशस्या वसुमती हृष्टपुष्टजनावृता । शाठ्यचौर्य्यानृतैर्हीना आधिव्याधिविवर्जिता ३२

कल्कि भगवान्ने अपने गोत्रके पुरुषोंको कीकट,मध्यकर्णाटक अन्ध्र और ओण्ड्र सब देश देदिये ॥ २७ ॥ फिर परम प्रतापी कल्कि भगवान्ने अपने आप सम्भलग्राममें निवास करके विशाखयूपको कङ्कदेश और कपालदेश देदिया २८ फिर उन कल्कि भगवान्ने द्वारिकाके अन्तर्गत चोल, बर्बर और कर्वदेश कृतवर्म्मा आदि पुत्रोंको देदिये ॥ २९ ॥ और परमभक्तिपूर्वक पिताको धन और रत्न दिये, फिर उस सम्भल ग्रामके रहनेवाले प्रजाके पुरुषोंको सर्वप्रकारसे आनन्द देतेहुए गृहस्थाश्रममें रहकर रमा और पद्माके साथ आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करनेलगे, त्रिलोकीमें सत्ययुग छागया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ देवता लोग शास्त्रमें कहीहुई विधि के अनुसार प्राणियोंको फल देते हुए सर्वत्र विचरने लगे, पृथ्वी सब प्रकारके अन्नोंसे युक्त हुई, सबके सब लोग हृष्टपुष्ट होगए, शठपना,चोरी, असत्य बोलना,झूंठा व्यवहार, आधि और व्याधि ये सब भूमण्डलसे नष्ट होगए ॥ ३२ ॥

विप्रा वेदविदः सुमङ्गलयुता नार्यस्तु चार्या व्रतैः, पूजाहोमपराः पतिव्रतपरा यागोद्यताः क्षत्रियाः । वैश्या वस्तुषु धर्मतो विनिमयैः श्रीविष्णुपूजापराः, शूद्रास्तु द्विजसेवनाद्धरिकथालापाः सपर्यापराः ॥ ३३ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे विषकन्यामोक्षकृतधर्मप्रवृत्तिकथनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

शौनक उवाच । शशिध्वजो महाराजः स्तुत्वा मायां गतः कुतः । का वा ? मायास्तुतिः सूत वद तत्त्वविदां वर ! । यात्कथा विष्णुकथा वक्तव्या सा विशुद्धये ॥ १ ॥ सूत उवाच

ब्राह्मण लोग वेदपाठ करनेमें तत्पर होगए, स्त्रियें माङ्गलिक कार्य करनेवालीं, सदाचरणपरायण, व्रतधारण करनेवालीं पूजा हवन आदिक करनेमें तत्पर और पतिव्रतापन धारण करनेवालीं होगईं, क्षत्रिय लोग यज्ञआदि करनेलगे, वैश्य लोग विष्णु भगवान्की पूजा करनेमें तत्पर होकर धर्मके अनुसार धनका व्यवहार करके जीविकाका निर्वाह करने लगे और शूद्र लोग द्विजोंकी सेवा करनेमें तत्पर होकर तथा श्रीहरिकी कथाका श्रवण वर्णन तथा श्रीहरिका पूजन करके कालयापन करनेलगे॥३३॥ चौदहवाँ अध्याय॥१४॥

शौनक बोले, कि—हे सूतजी महाराज ! राजा शशिध्वज मायाकी स्तुति करके कहाँ चलेगये ? हे सूतजी ! आप तत्त्वको जानने वाले हो, इसकारण मायाकी स्तुति किसप्रकार की ? यह वर्णन करिये, मायाकी कथा और विष्णुभगवान्की कथा भिन्न नहीं है, इसकारण पापोंको दूर करनेके निमित्त आप उस मायाकी स्तुतिका वर्णन करिये ॥ १ ॥ यह सुन

शृणुध्वं मुनयः! सर्वे! मार्कण्डेयाय पृच्छते। शुकः प्राह विशुद्धात्मा मायास्तवमनुत्तमम् ॥ २॥ तच्छृणुष्व प्रवक्ष्यामि यथाधीतं यथाश्रुतम्। सर्वकामप्रदं नृणां पापतापविनाशनम् ॥ ३ ॥ शुक उवाच। भल्लाटनगरं त्यक्त्वा विष्णुभक्तः शशिध्वजः। आत्मसंसारमोक्षाय मायास्तवमलं जगौ ॥४॥ शशिध्वज उवाच। ओं ह्रींकारां सत्त्वसारां विशुद्धां ब्रह्मादीनां मातरं वेदबोध्याम्। तन्वीं स्वाहां भूततन्मात्रकक्षां वन्दे

सूतजी बोले, कि–हे मुनियों! महर्षि मार्कण्डेयजीके प्रश्न करने पर, पवित्र अन्तःकरणवाले शुकदेवजीने अतिउत्तम मायाकी स्तुति उनको सुनायी थी, मैं इस समय वही माया की स्तुति वर्णन करता हूँ सुनिये ॥ २ ॥ मैंने जिसको पढ़ा और सुना है और जिसको श्रवण करनेसे मनुष्यकी सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण होजाती हैं, जिसके श्रवण पठन आदिसे सम्पूर्ण पाप और ताप दूर होजाते हैं वह मायाकी स्तुति मैं वर्णन करता हूँ सुनो ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजीके प्रश्न करने पर श्रीशुकदेवजी कहने लगे, कि विष्णुभगवानका परमभक्त राजा शशिध्वज अपने भल्लाटनगरको त्यागकर संसारबन्धनसे छूटनेके निमित्त मायाकी स्तुति करनेलगा ॥४॥ राजा शशिध्वज बोला, कि–जो 'ह्रीं" बीजरूप है, जो शुद्ध सत्त्वगुणरूप है, जो विशुद्धस्वरूप है, जिससे ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी आदि की उत्पत्ति हुई है, जिसका चारों वेद वर्णन करते हैं, जो सूक्ष्म और स्वाहारूप है, जिसकी कक्षामें पञ्चभूत और पञ्चतन्मात्रा रहते हैं, देवता, गन्धर्व और सिद्धगण जिसका पूजन करते हैं, उस भगवती (माया) को

बन्द्यां देवगन्धर्वसिद्धैः ॥ ५ ॥ लोकातीतां द्वैतभूतां समीडे भूतैर्भव्यां व्याससामासिकाद्यैः। विद्वद्गीतां कालकल्लोललोलां लीलापाङ्गक्षिप्तसंसारदुर्गाम् ॥ ६ ॥ पूर्णां प्राप्यामद्वैतलभ्यां शरण्यामाद्ये शेषे मध्यतो या विभाति । नानारूपैर्देवतिर्यङ्-मनुष्यैस्तामाधारां ब्रह्मरूपां नमामि ॥ ७ ॥ यस्या भासा त्रिजगद्भाति भूतैर्न भात्येतत्तदभावे विधातुः । कालो दैवं कर्म चोपाधयो ये तस्यां भासा तां विशिष्टां नमामि ॥ ८ ॥ भूमौ गन्धो रसताप्सु प्रतिष्ठा रूपं तेजस्येव वायौ स्पृशत्वम् ।

मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५ ॥ जो लोकसे पर है, जिससे द्वैत-भावका आरोपण कियाजाता है, व्यास शातातप आदि महर्षि जिसको प्रणाम करते हैं, ज्ञानी पुरुष जिसकी स्तुति करते हैं, जो कालकी कल्लोलमें लोलायमान रहती है,जिस के कटाक्षकी लीलासे जीव संसारसमुद्रमें पड़जाते हैं, उस भगवतीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ६ ॥ जो पूर्णभावसे प्राप्त होती है, जो अद्वैतभावसे प्राप्त होती है, जो शरणागतों का पालन करती है; जो सृष्टिके आदि मध्य और अन्तमें अर्थात् सब कालमें विद्यमान रहती है, जो देवता मनुष्य, पक्षी आदि नानारूपसे प्रकाशित होरही है, जो सबकी आधाररूप और ब्रह्मरूप है; उस भगवतीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ७ ॥ जिसके आभासमें त्रिलोकी पञ्चभूतके द्वारा प्रकाशवान् होरही है, जिसके आभासके बिना काल दैव, कर्म आदि कुछ भी प्रकाशित नहीं होता है, उस सर्व-श्रेष्ठा सर्वाधारिणी भगवतीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ८ ॥ जिसके चिदाभाससे पृथ्वीमें गन्ध, जलमें रस, तेजमें रूप,

खे शब्दो वा यच्चिवदाभासि नाना तामभ्येतां विश्वरूपां नमामि ॥ ९ ॥ सावित्री त्वं ब्रह्मरूपा भवानी, भूतेशस्य श्रीपतेः श्रीस्वरूपाः। शची शक्रस्यापि नाकेश्वरस्य,पत्नी श्रेष्ठा भासि माये! जगत्सु ॥ १० ॥ बाल्ये बाला युवती यौवने त्वं वार्द्धक्ये या स्थविरा कालकल्पा। नानाकारैर्यागयोगै-रुपास्या ज्ञानातीता कामरूपा विभासि ॥ ११ ॥ वरेण्या त्वं वरदा लोकसिद्ध्या साध्वी धन्या लोकमान्या सुकन्या। चण्डी दुर्गा कालिका कालिकाख्या नानादेशे रूपवेशैर्वि-

---

वायुमें स्पर्श, आकाशमें शब्द आदि नाना प्रकारकी विचित्रता प्रकाशित होरही है, उस विश्वव्यापिनी विश्वरूपा भगवतीको नमस्कार करता हूँ ॥ ९ ॥ तुम ब्रह्माकी अङ्गस्वरूप सरस्वती हो, तुम रुद्रकी रुद्राणी हो, श्रीनारायणकी लक्ष्मी हो, और स्वर्गनाथ इन्द्रकी श्रेष्ठ स्त्री इन्द्राणी हो, हे माये! तुम विश्वरूपसे प्रकाशवान् होरही हो, ॥१०॥ तुम बाल्यावस्थामें बालिकारूप हो, तुम यौवन अवस्थामें युवतिरूप हो, तुम स्त्रियोंकी वृद्धावस्थामें वृद्धारूप हो, (स्त्रीमात्र तुम्हारा ही प्रकाश है) तुम कालस्वरूप हो, तुम कामरूप हो, मुनिगण नानाप्रकारके यज्ञ और योगोंके द्वारा तुम्हारी उपासना करते हैं, तुम ज्ञानसे पर होकर शोभाको प्राप्त हो जाती हो ॥ ११ ॥ भक्त पुरुष तुमसे वरदान माँगते हैं, तुम भक्तोंको वरदान देती हो, तुम लोकोंको सिद्धि देती हो,तुम पतिव्रता, धन्या, लोकमान्या,सुकन्या,चण्डी,दुर्गा, कालिका आदि नानाप्रकारके रूप, नानाप्रकारके देश और नानाप्रकारके वेशोंसे प्रकाशवान् होरही हो ॥ १२ ॥ हे जगत्की

भासि ॥ १२ ॥ तव चरणसरोजं देवि ! देवादिवन्द्यं यदि हृदयसरोजे भावयन्तीह भक्त्या । श्रुतियुगकुहरे वा संश्रुतं धर्मसम्पज्जनयति जगदाद्ये ! सर्वसिद्धिञ्च तेषाम् ॥ १३ ॥ मायास्तवमिदं पुण्यं शुकदेवेन भाषितम् । मार्कण्डेयादवाप्यापि सिद्धिं लेभे शशिध्वजः ॥१४॥ कोकामुखे तपस्तप्त्वा हरिं ध्यात्वा वनान्तरे । सुदर्शनेन निहतो वैकुण्ठं शरणं ययौ १५

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे मायास्तवो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

सूत उवाच । एतद् वः कथितं विप्राः ! शशिध्वजविमोचणम् । कल्केः कथामप्रतिमां शृण्वन्तु विप्रर्षभाः ! ॥ १ ॥

आदिरूप ! हे देवि ! यदि कोई पुरुष अपने हृदयकमलमें देवताओंसे प्रणाम कियेहुए तुम्हारे चरणकमलोंका भक्तिपूर्वक ध्यान करता है अथवा यदि कोई अपने कानोंसे तुम्हारे पवित्र नामोंको श्रवण करता है तो उसको धर्मसम्पदाकी प्राप्ति होती है और वह सब प्रकारकी सिद्धिको पाजाता है श्री शुकदेवजीने यह पवित्र मायाका स्तोत्र कहा है, राजा शशिध्वज महर्षि मार्कण्डेयजीसे यह मायाका स्तोत्र पाकर सिद्धिको पागया ॥१४॥ फिर राजा शशिध्वज वनमें कोकामुख नामक स्थानमें तपस्या करके श्रीहरिका ध्यान करता हुआ सुदर्शनचक्रसे प्राणहीन होकर वैकुण्ठधामको चला गया ॥ १५ ॥ पन्द्रहवां अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥

सूतजी कहते है, कि-हे ब्राह्मणों ! मैंने तुमसे यह राजा शशिध्वजकी मुक्तिका वृत्तान्त कहा; हे ऋषियों ! अब मैं फिर कल्कि भगवान्का अद्भुत उपाख्यान तुमसे कहता हूँ,

वेदा धर्मः कृतयुगं देवा लोकाश्चराचराः । हृष्टाः पुष्टाः सुसन्तुष्टाः कल्कौ राजनि चाभवन् ॥ २ ॥ नानादेवादिलिङ्गेषु भूषणैर्भूषितेषु च । इन्द्रजालिकवद्वृत्तिकल्पकाः पूजका जनाः ॥ ३ ॥ न सन्ति मायामोहाढ्याः पाषण्डाः साधुवञ्चकाः । तिलकार्चितसर्वाङ्गाः कल्कौ राजनि कुत्रचित् ४ शम्भले वसतस्तस्य पद्मया रमया सह । प्राह विष्णुयशाः पुत्रं देवान् यष्टुं जगद्धितान् ॥ ५ ॥ तच्छ्रुत्वा प्राह पितरं कल्किः परमहर्षितः । विनयावनतो भूत्वा धर्मकामार्थसिद्धये६ राजसूयैर्वाजपेयैरश्वमेधैर्महामखैः । नानायागैः कर्मतन्त्रैरीजे

सुनो ॥ १ ॥ कल्किजीके राजसिंहासन पर बैठने पर वेद, धर्म, सत्ययुग, देवता और स्थावर, जङ्गम सम्पूर्ण जीव हृष्ट पुष्ट और परमसन्तुष्ट हुए ॥ २ ॥ कलियुगके पुजारी ब्राह्मण नानाप्रकारके आभूषणोंसे भूषित करीहुई देवताओं की मूर्तियोंमें बाजीगरोंकी समान व्यवहार करते थे अर्थात् झूठी बातोंसे धोखा देते थे,वे इस समय निष्कपट व्यवहार करनेलगे, इस समय कहीं भी मायामोहयुक्त साधुओंको धोखा देनेवाले पाखण्डी नहीं रहे, कल्किजीके राजा होनेपर सब ही सब अङ्गोंमें तिलक धारण करनेलगे ॥ ३ ॥ ४ ॥ इसप्रकार कल्किजी पद्मा और रमाके साथ सम्भल ग्राममें निवास करनेलगे एक समय उनके पिताने उनसे कहा, कि देवता जगत्का हित करते हैं, इसकारण देवताओंके निमित्त तुम यज्ञ करो ॥५॥ कल्किजी पिताकी बात सुनकर चित्तमें परमप्रसन्न हुए और नम्रतापूर्वक कहनेलगे कि-मैं धर्म, काम और अर्थकी सिद्धिके निमित्त कर्मकाण्डमें वर्णन किये

क्रतुपतिं हरिम् ॥७॥ कृपरामवशिष्ठाद्यैर्व्यासधौम्याकृतव्रणैः। अश्वत्थाममधुच्छन्दोमन्दपालैर्महात्मनः ॥ ८ ॥ गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्नात्वावभृथमादरात् । दक्षिणाभिः समभ्यर्च्य ब्राह्मणान् वेदपारगान् ॥ चर्व्यैश्चोष्यैश्च पेयैश्च पूगशष्कुलिपायकैः । मधुमांसैर्मूलफलैरन्यैश्च विविधैर्द्विजान् ॥१०॥ भोजयामास विधिवत् सर्वकर्मसमृद्धिभिः । यत्र वन्हिर्हूतः पाके वरुणो जलदो मरुत् ॥ ११ ॥ परिवेष्टा द्विजान् कामैः सदन्नाद्यैरतोषयत् । वाद्यैर्नृत्यैश्च गीतैश्च पितृयज्ञमहोत्सवैः ॥ १२ ॥ कल्किः कमलपत्राक्षः सहर्षः प्रददौ वसु । स्त्रीबालस्थविरादिभ्यः सर्वेभ्यश्च यथोचितम् ॥ १३ ॥

हुए राजसूय, अश्वमेध तथा और अनेकों प्रकारके बड़े बड़े यज्ञोंके द्वारा यज्ञपति श्रीहरिकी उपासना करूँगा ॥ ६॥७॥ तदनन्तर कल्कि भगवान्ने कृप, राम, व्यास, वशिष्ठ, धौम्य अकृतव्रण, अश्वत्थामा, मधुच्छन्द, मन्दपाल आदि महर्षियों की और वेदके पारगामी महात्मा ब्राह्मणोंकी पूजा करके गङ्गा यमुनाके बीचमें यज्ञकी दीक्षा लेकर और यज्ञान्तस्नान करके दक्षिणा दी ॥ ८ ॥ ९ ॥ फिर उन कल्कि भगवान् ने अनेकों प्रकारके चर्व्य (चावने योग्य), चोष्य (चूसने योग्य), लेह्य (चाटने योग्य), पेय (पीने योग्य) पुए, पूरी हलुआ, आसव, फल मूल तथा और अनेकों प्रकारके पदार्थोंसे ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक भोजन कराया, यह सब यज्ञ सर्वाङ्गपूर्ण हुआ इस यज्ञमें अग्नि पाक करनेवाला, वरुण जल देनेवाला, और वायु परोसनेवाला हुआ. कमलदलनयन कल्कि भगवान्ने इच्छानुसार उत्तम अन्न आदि

रम्भा तालधरा नन्दी हूहूर्गायति नृत्यति । दत्त्वा दानानि पात्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः स ईश्वरः ॥१४॥ उवास तीरे गङ्गायाः पितृवाक्यानुमोदितः । सभायां विष्णुयशसः पूर्वराजकथाः प्रियाः ॥ १५ ॥ कथयन्तो हसन्तश्च हर्षयन्तो द्विजा बुधाः । तत्रागतस्तुम्बुरुणा नारदः सुरपूजितः ॥ १६ ॥ तं पूजयामास मुदा पित्रा सह यथाविधि । तौ सम्पूज्य विष्णुयशाः प्रोवाच विनयान्वितः ।नारदं वैष्णवं प्रीत्या वीणापाणिं महामुनिम् १७

के द्वारा,नृत्य गान और बाजोंके द्वारा इसप्रकार हरएक यज्ञमें कियेहुए अनेकों प्रकारके.उत्सवोंके द्वारा सबको परम आनंद दिया और उन कल्किजीने बालक वृद्ध और स्त्री आदि सबही का यथोचित धन देकर सत्कार किया१०-१४ रम्भा नामक अप्सरा नृत्य करनेलगी, नन्दी बाजा बजा कर ताल देनेलगा, हूहूनामक गन्धर्व गान करनेलगा, उन त्रिलोकीनाथ कल्कि भगवान्ने ब्राह्मण आदि सत्पात्रोंको विशेष धन दिया ॥ १४ ॥ फिर पिताकी आज्ञा लेकर कल्किजी गङ्गाके तटपर निवास करनेलगे, इधर विष्णुयश की सभामें ब्राह्मण और पण्डित लोग प्राचीन राजाओंका सुननेमें अति मनोहर चरित्र कहके सबको प्रसन्न करतेहुए और हास्य करतेहुए सभाको शोभायमान कररहे थे, उसी समय जिनका देवता पूजन करते हैं ऐसे महर्षि नारदजी और तुम्बुरु तहाँ आए ॥१५ ॥ १६॥ परमयशस्वी विष्णुयशने हृदयमें प्रसन्न होकर उन दोनों महर्षियोंका विधि-पूर्वक पूजन किया और उत्तमरूपसे पूजन करनेके अनन्तर नम्रतायुक्त हृदयसे विष्णुभक्त वीणापाणि महामुनि नारद

विष्णुयशा उवाच । अहो ! भाग्यमहो ! भाग्यं मम जन्मशतार्जितम् । भवद्विधानां पूर्णानां यन्मे मोक्षाय दर्शनम् १८ अद्याग्नयश्च सुहुतास्तृप्ताश्च पितरः परम् । देवाश्च परिसन्तुष्टास्तवावेक्षणपूजनात् ॥ १९ ॥ यत्पूजायां भवेत् पूज्यो विष्णुर्यन्मम दर्शनम् । पापसंघं स्पर्शनाच्च किमहो ! साधुसङ्गमः ॥ २० ॥ साधूनां हृदयं धर्मो वाचो देवाः सनातनाः। कर्मक्षयाणि कर्माणि यतः साधुर्हरिः स्वयम् ॥ २१ ॥ मन्ये न भौतिको देहो वैष्णवस्य जगत्त्रये । यथावतारे कृष्णस्य

जीसे प्रसन्नतापूर्वक कहनेलगे ॥ १७ ॥ विष्णुयश बोले, मेरा कैसा सौभाग्य है ? मेरा सैकड़ों जन्मोंमें इकट्टा किया हुआ भाग्य कैसा अद्भुत है ? आप पूर्णरूप हैं, हमारी मुक्तिके कारण ही आपका दर्शन हुआ ॥ १८ ॥ आज आपका दर्शन और पूजन करनेसे मेरे पितर तृप्त होगए, मैंने जो अग्निमें आहुति दी थीं,वे आज सफल होगईं,आज हमारे देवता भी प्रसन्न होगए ॥ १९ ॥ जिनका पूजन करनेसे विष्णु भगवान् पूजित होते हैं जिनका दर्शन करने से संसारमें फिर जन्म नहीं होता है, जिनका स्पर्श करनेसे पापसमूहोंका नाश होता है, ऐसे साधुओंका समागम कैसा अद्भुत है ? ॥ २० ॥ साधुपुरुषोंका हृदय ही धर्म है, साधु पुरुषोंके वाक्य ही सनातन देवता है, साधुपुरुषोंके कर्म ही कर्मके नाशका कारण हैं इसकारण साधुपुरुष साक्षात् श्रीहरिकी मूर्त्ति ही हैं ॥ २१ ॥ दुष्टोंका नाश करनेके लिये होनेवाले कृष्णावतारमें श्रीकृष्ण भगवान्का नित्यशरीर जिसप्रकार पाञ्चभौतिक नहीं है इसीप्रकार प्रतीत होता है

सतो दुष्टविनिग्रहे ॥ २२ ॥ पृच्छामि त्वामतो ब्रह्मन् ! माया संसारवारिधौ । नौकायां विष्णुभक्त्या च कर्णधारोऽसि पारकृत् ॥ २३ ॥ केनाहं यातनागारात् निर्वाणपदमुत्तमम् । लप्स्यामीह जगद्बन्धो ! कर्मणा शर्म तद्वद ॥ २४ ॥ नारद उवाच । अहो ! बलवती माया सर्वाश्चर्यमयी शुभा । पितरं मातरं विष्णुर्नैव मुञ्चति कर्हिचित् ॥२५॥ पूर्णो नारायणो यस्य सुतः कल्किर्जगत्पतिः । तं विहाय विष्णुयशा मत्तो मुक्तिमभीप्सति ॥ २६ ॥ विविच्येत्थं ब्रह्मसुतः प्राह ब्रह्मयशःसुतम् । विविक्ते विष्णुयशसं ब्रह्मसम्पद्विवर्द्धनम् २७

कि—इस त्रिलोकीमें वैष्णवोंका शरीर भी पाञ्चभौतिक नहीं है ॥ २२॥ हे ब्रह्मन् ! मायामय संसारसमुद्रमें आप विष्णु-भगवान्रूप नौकाके द्वारा पार करनेवाले मल्लाह हो, इस कारण मैं आपसे बूझता हूँ, कि—हे जगद्बन्धो ! मैं किस कर्मके द्वारा इस संसाररूप दुःखके समुद्रसे छूटकर कल्याण-कारक उत्तम मोक्षपदको प्राप्त होसकूँगा, यह कहिये? ।२३। ॥२४॥ यह सुनकर नारदजी बोले, कि—माया कैसी शोभना है ? कैसी बलवती है ? कैसी सबको विस्मित करती है ? कैसे आश्चर्यकी बात है ? विष्णुरूप कल्किजीके पिता माता को भी यह माया नहीं छोड़ती है ॥ २५ ॥ पूर्ण नारायण जगत्पति, कल्कि भगवान् जिनके पुत्र हैं, ऐसे विष्णुयश, पुत्रको छोडकर मुझसे मुक्ति प्राप्त होनेकी प्रार्थना करते हैं ॥ २६ ॥ ब्रह्मपुत्र नारदजी ऐसा विचारकर ब्रह्मयश के पुत्र विष्णुयशको एकान्तमें ब्रह्मज्ञान देनेके निमित्त इस प्रकार कहनेलगे॥२७॥नारदजी बोले, कि—देहका नाश होने

नारद उवाच। देहावसाने जीवं सा दृष्ट्वा देहावलम्बनम्।
मायाह कर्तुमिच्छन्तं यन्मे तच्छृणु मोक्षदम् ॥ २८ ॥
विन्ध्यादौ रमणी भूत्वा मायोवाच यथेच्छया ॥ २९ ॥
मायोवाच! अहं माया मया त्यक्तः कथं जीवितुमिच्छसि।
जीव उवाच। नाहं जीवम्यहं माये! कायेऽस्मिन् जीवनाश्रये।
अहमित्यन्यथाबुद्धिर्विनादेहं कथं भवेद् ॥ ३० ॥ मायोवाच।
देहबन्धे यथा श्लेषात् तथा बुद्धिः कथं तव। मायाधीनां
विना चेष्टां विशिष्टां ते कुतो वद ॥ ३१ ॥ जीव उवाच। मां
विना माज्ञता माये प्रकाशविषयस्पृहा ॥ ३२ ॥ मायोवाच।

पर जीव फिर देह धारण करनेकी इच्छा करता है, ऐसा देखकर मायाने जो कहा वह मैं वर्णन करता हूँ, सुनो इस को सुनकर मुक्तिकी प्राप्ति होती है ॥ २८ ॥ विंध्याचल पर माया अपनी इच्छाके अनुसार स्त्रीका रूप धारण करके कहने लगी---माया बोली कि मैं माया हूँ और मैंने तुझे त्याग दिया है फिर तू क्यों जीनेकी इच्छा करता है २९ यह सुनकर जीव बोला, कि-हे माये! मैं जीवन धारण नहीं करता हूँ क्योंकि-शरीर ही जीवनका आश्रय है और "अहम्" इस अभिमानके द्वारा भेदज्ञान हुए बिना देहधारण किस प्रकार होसकता है ॥ ३० ॥ यह सुनकर माया बोली कि-देह धारण करने पर देहके संसर्गसे जिसप्रकार भेदज्ञान होता है, तिसीप्रकारकी बुद्धि इस समय तुम्हारी क्यों कर हो रही है? चेष्टा मायाके आधीन है इस समय मायाके विना तुम्हारी चेष्टा किसप्रकार होरही है? ॥ ३१ ॥ यह सुनकर जीव बोला, कि-हे माये! मेरे विना तुम्हारी प्राज्ञता, प्रकाश

मायया जीवति नरश्चेष्टते हतचेतनः । निःसारः सारवद्भाति गजभुक्तकपित्थवत् ॥ ३३ ॥ जीव उवाच । मम संसर्गजाता त्वं नानानामस्वरूपिणी । मां विनिन्दसि किं मूढे ! स्वैरिणी स्वामिनं यथा ॥ ३४ ॥ ममाभावे तवाभावः मोघस्सूर्ये तमो यथा । मामावर्य विभासि त्वं रविं नवघनो यथा ३५ लीलाबीजकुशूलासि मम माये ! जगन्मये ! । नाद्यन्ते मध्यतो भासि नानात्वादिन्द्रजालवत् ॥ ३६ ॥ एवं निर्विषयं नित्यं मनोव्यापारवर्जितम् । अभौतिकमजीवञ्च शरीरं वीक्ष्य

और विषयकी इच्छा कदापि नहीं होसकती ॥ ३२ ॥ यह सुनकर माया बोली, कि-जीव मायाके द्वारा मन्त्रकी समान कार्य और चेष्टा करता है, मायाके द्वारा ही जीवन धारण करना है और हाथीके खाये हुए कैथकी समान निस्सार होकर भी सारवान् प्रतीत होता है ॥ ३३ ॥ यह सुनकर जीव बोला, कि-अरी ! मूढ़े ! मेरे संसर्गसे उत्पन्न होकर तूने अनेकों प्रकारके नाम रूप धारण किये हैं, अरी ! जिस प्रकार व्यभिचारिणी स्त्री अपने पतिकी निन्दा करती है, उसी प्रकार तू मेरी निन्दा क्यों करती है ॥ ३४ ॥ जिसप्रकार सूर्यका उदय होने पर अन्धकार नहीं रहता है, तिसीप्रकार मेरे न होने पर तेरा अभाव होजाता है, जिसप्रकार नवीन मेघमंडल सूर्यको ढककर प्रकाशवान् होता है, इसीप्रकार तू मेरा आवरण करके शोभाको प्राप्त होती है ॥३५॥ हे माये! तू लीलारूप वृक्षोंकी छालरूप है, अनेकों प्रकारकी होनेके कारण तू इस जगत्के आदि अन्त और मध्यमें इंद्रजालकी समान शोभा पाती है ॥ ३६ ॥ इसप्रकार विषयों के व्यापारसे शून्य नित्य मानसिक व्यापाररहित अभौ-

साऽत्यजत् ॥ ३७ ॥ त्यक्त्वा मां सा ददौ शापमिति लोके तवाप्रिय ! । न स्थितिर्भविता काष्ठकुड्योपम ! कथञ्चन ३८ सा माया तत्र पुत्रस्य कल्केर्विश्वात्मनः प्रभोः । तां विज्ञाय यथाकामं चर मां हरिभावनः ॥ ३९ ॥ निराशो निर्ममः शान्तः सर्वभोगेषु निस्पृहः । विष्णौ जगदिदं ज्ञात्वा विष्णुर्जगति वासकृत् । आत्मनात्मानमावेश्य सर्वतो विरतो भव ॥ ४० ॥ एवं तं विष्णुयशसमामन्त्र्य च मुनीश्वरौ । कल्किं प्रदक्षिणीकृत्य जग्मतुः कपिलाश्रमम् ॥४१॥ नारदेरितमाकर्ण्य कल्किं सुतमनुत्तमम् । नारायणं जगन्नाथं वनं

तिक जीवनशून्य शरीर देखकर मायाने उसे त्यागदिया ३७ मायाने मुझे त्यागकर इसप्रकार शाप दिया, कि—अरे अप्रिय! इस लोकमें काष्ठ और दीवारकी समान तेरी स्थिति होगी अर्थात् प्रत्यक्ष प्राप्ति कदापि नहीं होगी ॥ ३८ ॥ हे विष्णुयश ! तुम्हारे पुत्र जगद्रूप इन प्रभु कल्कि भगवान्की ही वह माया है,उस मायाको जानकर श्रीहरिके विषैं आत्मसमर्पण करके इच्छानुसार विचरो ॥ ३९ ॥ तुम फलप्राप्ति की इच्छासे रहित, ममताशून्य, शान्त और सब प्रकारके भोगोंकी इच्छासे रहित होजाओगे, यह जगत् विष्णु भगवान्में स्थित है, विष्णु भगवान् भी इस जगतमें व्याप रहे हैं, ऐसा ज्ञान तुमको प्राप्त होजायगा, फिर जीवात्माको उन परमात्माके विषैं स्थित करके सम्पूर्ण कर्मोंके बन्धनसे छूटजाओगे ॥ ४० ॥ दोनों ऋषि इसप्रकार विष्णुयशके साथ बातें करके और कल्कि भगवान्की प्रदक्षिणा करके कपिलाश्रमको चले गये ॥ ४१ ॥ और विष्णुयशने जिस समय नारदजीके मुखसे सुना, कि-मेरे पुत्र कल्कि साक्षात्

विष्णुयशा ययौ ॥ ४२ ॥ गत्वा बदरिकारण्यं तपस्तप्त्वा सुदारुणम् । जीवं बृहति संयोज्य पूर्णस्तत्याज भौतिकम् ४३ मृतं स्वामिनमालिङ्गय सुमतिः स्नेहविक्लवा । विवेश दहनं साध्वी सर्वेशैर्दिवि संस्तुता ॥ ४४ ॥ कल्किः श्रुत्वा मुनिमुखात् पित्रोर्निर्याणमीश्वरः । सवाष्पनयनं स्नेहात् तयोः समकरोत् क्रियाम् ॥ ४५ ॥ पद्मया रमया कल्किः शम्भले सुरवाञ्छिते । चकार राज्यं धर्मात्मा लोकवेदपुरस्कृतः ४६ महेन्द्रशिखराद्रामस्तीर्थपर्यटनादृतः । प्रायात् कल्केर्दर्शनार्थं शम्भलं तीर्थतीर्थकृत् ॥ ४७ ॥ तं दृष्ट्वा सहोसत्थाय पद्मया त्रिलोकीनाथ नारायण हैं, उसी समय संसार-आश्रमको त्यागकर वनको चलेगये ॥ ४२ ॥ और बदरिकाश्रममें जाय परम तपस्या करके आत्माको परब्रह्ममें मिलादिया तथा पूर्णस्वरूप होकर पाञ्चभौतिक शरीरको त्यागदिया ४३ पतिसे परमप्रेम करनेवाली पतिव्रता सुमति भी मृतकपतिको हृदयसे लगाकर अग्निमें प्रवेश करगई, उस समय स्वर्गलोक में देवता उसकी स्तुति करनेलगे ॥ ४४ ॥ कल्कि भगवान् मुनियोंके मुखसे पिता माताके स्वर्ग जानेका वृत्तान्त सुन कर स्नेहके वशीभूत हो नेत्रोंमें जल भरलाए और विधि पूर्वक श्राद्धादि क्रिया की ॥ ४५ ॥ लौकिकाचार और वैदिकाचारपरायण धर्मात्मा कल्कि भगवान् देवताओंकी प्रार्थनासे सम्भलग्राममें रहकर रमा और पद्माासहित राज्य का पालन करनेलगे ॥ ४६ ॥ जिन्होंने तीर्थोंको भी पवित्र करदिया ऐसे परशुरामजी तीर्थोंमें विचरनेकी इच्छासे महेंद्र पर्वतके शिखरसे उतरकर कल्कि भगवान्का दर्शन करनेको सम्भलग्राममें आये ॥ ४७ ॥ विधिके जाननेवाले

रमया सह। कल्किः प्रहृष्टो विधिवत् पूजाञ्चक्रे विधानवित् ४८
नानारसैर्गुणमयैर्भोजयित्वा विचित्रिते। पर्यंकेऽनर्घवस्त्राढ्ये शाययित्वा मुदं ययौ ॥ ४६ ॥ तं भुक्तवन्तं विश्रान्तं पादसंवाहनैर्गुरुम्। सन्तोष्य विनयापन्नः कल्किर्मधुरमब्रवीत् ५०
तव प्रसादात् सिद्धं मे गुरो! त्रैवर्गिकञ्च यत्। शशिध्वजसुतायास्तु शृणु राम! निवेदितम् ॥ ५१ ॥ इति पतिवचनं निशम्य रामा, निजहृदयेप्सितपुत्रलाभमिष्टम्। व्रतजपनियमैर्यमैश्च कैर्वा मम भवतीह मुदाह जामदग्न्यम् ॥ ५२ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे विष्णुयशसो मोक्षो रामदर्शनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

कल्कि भगवान् परशुरामजीको देखते ही आनन्दके साथ पद्मा और रमासहित सिंहासनसे उठखड़े हुए और विधिपूर्वक परशुरामजीका पूजन किया ॥ ४८॥ और उत्तम गुणकारी नानारसोंके द्रव्योंसे परशुरामजीको भोजन कराकर जिसपर बहुमूल्य बिछौना बिछरहा था, ऐसे विचित्र पलँग पर शयन कराया ॥ ४६ ॥ गुरु परशुरामजी भोजन करके विश्राम कररहे थे, उस समय कल्कि भगवान्ने पैर दाबकर उनको प्रसन्न किया और नम्रतापूर्वक मधुरवाणीसे कहा ॥ ५० ॥ कि—हे गुरो! आपके अनुग्रहसे मेरा धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्ग सिद्ध होगया, इस समय राजा शशिध्वजकी पुत्रीकी एक प्रार्थना है, उसको सुन लीजिये ५१ राजा शशिध्वजकी पुत्री पतिकी यह बात सुनकर, प्रसन्नहृदयसे परशुरामजीसे बूझनेलगी, कि—हे ऋषे! किसप्रकार यम, नियम, जप और व्रत करनेपर हमारे चित्तके अनुकूल पुत्र मिलेगा? ॥ ५२ ॥ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

सूत उवाच। जामदग्न्यः समाकर्ण्य रमां तां पुत्रगृद्धिनीम्। कल्केरभिमतं बुद्ध्वाकारयद्रुक्मिणीव्रतम्॥१॥ व्रतेन तेन च रमा पुत्राढ्या सुभगा सती। सर्वभोगेन संयुक्ता बभूव स्थिरयौवना॥२॥ शौनक उवाच। विधानं ब्रूहि मे सूत! व्रतस्यास्य च यत् फलम्। पुरा केन कृतं धर्म्यं रुक्मिणीव्रतमुत्तमम्॥३॥ सूत उवाच। शृणु ब्रह्मन्! राजपुत्री शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी। अवगाह्य सरोनीरं सोमं हरमपश्यत॥४॥ सा सखीभिः परिवृता देवयान्या च सङ्गता। शम्भुभीत्या समुत्थाय पर्यधाद्वसनं द्रुतम्॥५॥ तत्र शुक्रस्य कन्याया वस्त्रव्यत्ययमा-

सूतजी कहते हैं, कि-हे ऋषियो! परशुरामजीने शशिध्वजकी पुत्री रमाको पुत्रकी इच्छावाली देखकर कल्कि भगवान्की सम्मतिसे रुक्मणीव्रत कराया॥१॥ पतिव्रता रमा उस व्रतके प्रभावसे पुत्रवती, सौभाग्यवती, सर्वभोगसम्पन्न और स्थिरयौवना हुई॥२॥ यह सुन शौनकादि ऋषि बोले, कि-हे सूतजी! इस रुक्मणीव्रतकी क्या विधि है? क्या फल है? और इस परम उत्तम धर्मयुक्त व्रतको पहिले किसने किया था? यह सुनाइये॥३॥ यह सुन सूतजी बोले, कि-हे ब्राह्मणो! मैं सब वृत्तान्त कहता हूँ, सुनो एक वृषपर्वा दैत्यकी पुत्री शर्म्मिष्ठा सरोवरके जलमें स्नान कररही थी, उसने उस समय सोमेश्वर महादेवजीकोदेखा ४ शर्म्मिष्ठा सखियोंके मण्डल और देवयानीसहित जलक्रीड़ा कर रही थी, उसने शिवजीका दर्शन करते ही भयभीत हो जलमेंसे निकलकर तत्काल वस्त्र पहिनलिये॥५॥ तहाँ दैत्यगुरु शुक्राचार्य्यकी पुत्री देवयानीके वस्त्र रक्खे थे, सो भूलसे देवयानीने शर्म्मिष्ठाके वस्त्र पहिनलिये, तब तो वस्त्र

न्मनः। संलक्ष्य कुपिता प्राह वसनं त्यज भिक्षुकि ! ॥६॥ इति दानवकन्या सा दासीभिः परिवारिता। तां तस्या वाससा बद्ध्वा कूपे क्षिप्त्वा गता गृहम् ॥७॥तां मग्नां रुदतीं कूपे जलार्थी नहुषात्मजः। करे स्पृष्ट्वा समुद्धृत्य प्राह का ? त्वं वरानने ! ॥ ८ ॥ सा शुक्रपुत्री वसनं परिधाय ह्रिया भिया। शर्मिष्ठायाः कृतं सर्वं प्राह राजानमीक्षती ॥ ९ ॥ ययातिस्तदभिप्रायं ज्ञात्वाऽनुव्रज्य शोभनम्। आश्वास्य तां ययौ गेहं तस्याः परिणयादृतः ॥ १० ॥ सा गत्वा भवनं शुक्रं प्राह शर्मिष्ठया कृतम्। तच्छ्रुत्वा कुपितं विप्रं वृषपर्वाह सान्त्वयन् ॥ ११ ॥ दण्ड्यं मां दण्डय विभो ! कोपो

बदल जानेसे शर्मिष्ठा कोपमें भर कहनेलगी, कि-अरी भिक्षुकि! मेरे वस्त्र उतारदे ॥ ६ ॥ फिर दासियों सहित दानवकी पुत्री शर्मिष्ठाने देवयानीको वस्त्रसे बाँधकर कुएमें डाल-दिया और घरको चलीआई ॥७॥ देवयानी कुएमें पड़ीहुई रोनेलगी, उसी समय नहुषका पुत्र राजा ययाति जल पीनेके लिये उस कुएपर आया और देवयानीको निकालकर हाथ पकड़कर कहने लगा, कि-हे सुन्दरमुखि ! तू कौन है ? ८ शुक्राचार्यजीकी पुत्री देवयानी लज्जा और भयसे वस्त्र धारणकरके राजाकी ओर देखती हुई शर्मिष्ठाका सम्पूर्ण वृत्तान्त कहने लगी ॥९॥ देवयानीका सब अभिप्राय जान कर राजाने उसके साथ विवाह करनेकी अभिलाषाकी और कुछ दूर तक उसके साथ जा उत्तम रूपसे धीर बँधाया तथा अपने राजमन्दिरको चला गया ॥ १० ॥ फिर देवयानीने भी घर जाकर पिता शुक्राचार्यजीसे शर्म्मिष्ठाका सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा,उस वृत्तान्तको सुनते ही शुक्राचार्यजी क्रोधमें,

यद्यस्ति ते मयि । शर्मिष्ठां-वाप्यपकृतां कुरु यन्मनसेप्सितम् १२ राजानं प्रणतं पादे पितुर्दृष्ट्वा रुषाऽब्रवीत् । देवयानी त्वियं कन्या मम दासी भवत्विति ॥ १३ ॥ समानीय तदा राजा दास्ये तां विनियुज्य सः । ययौ निजगृहं ज्ञानी दैवं परमकं स्मरन् ॥ १४ ॥ ततः शुक्रस्त्वानीय ययातिं प्रतिलोमकम् । तस्मै ददौ तां विधिवत् देवयानीं तया सह ॥ १५ ॥ दत्त्वा प्राह नृपं विप्रोऽप्येनां राजसुतां यदि । शयने ह्वयसे सद्यो जरा त्वामुपभोक्ष्यति ॥ १६ ॥ शुक्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा राजा तां वरवर्णिनीम् । अदृश्यां स्थापयामास देवयान्यनुगां

भरगए, यह सुन दैत्यराज वृषपर्वाने उनको शान्त किया ११ और कहा, कि-हे प्रभो ! यदि मेरे ऊपर आपका क्रोध है और यदि मैं दण्डके योग्य हूँ, अथवा अपराधिनी शर्मिष्ठाके ऊपर आपका क्रोध है तो आपकी जो इच्छा हो सो दण्ड दीजिये ॥ १२ ॥ तदनन्तर देवयानी दैत्यराज वृषपर्वाको पिताके चरणोंमें पड़ा हुआ देखकर क्रोधमें भरकर कहने लगी, कि-तुम्हारी यह कन्या (शर्मिष्ठा) मेरी दासी बने १३ ज्ञानवान् राजाने दैवके परमबलवान्पनेको स्मरण करके कन्याको बुलाया और देवयानीकी दासी बनाकर अपने स्थानको चलागया ॥ १४ ॥ फिर शुक्राचार्यजीने ययातिको बुलाकर प्रतिलोम विवाहकी रीतिसे विधिपूर्वक देवयानी दे दी, और देवयानीके साथमें उसकी दासी शर्मिष्ठा भी देदी १५ शुक्राचायजी राजपुत्री शर्मिष्ठाको समर्पण करके राजा ययाति से कहनेलगे, कि-यदि तुम इस राजपुत्रीको पलँग पर बुलाओगे तो तुम तत्काल वृद्ध होजाओगे॥१६॥राजा ययोतिने गुरु शुक्राचार्यजीका यह वाक्य सुनकर भयके मारे देवयानीकी

भिया ॥ १७ ॥ सा शर्मिष्ठा राजपुत्री दुःखशोकभयाकुला । नित्यं दासीशताकीर्णा देवयानीन्तु सेवते ॥१८॥ एकदा सा वनगता रुदती जान्हवीतटे । विश्वामित्रं मुनिं सा तं ददर्श स्त्रीभिरावृतम् ॥ १९ ॥ व्रतिनं पुण्यगन्धाभिः सुरूपाभिः सुवासितम् । कारयन्तं व्रत माल्यधूपदीपोपहारकैः२० निर्मायाष्टदलं पद्मं वेदिकायां सुचिन्हितम् । रम्भापोतैश्चतुर्भिस्तु चतुष्कोणं विराजितम् ॥ २१ ॥ वासता निर्मितगृहे स्वर्णपट्टैर्विचित्रिते । निर्मितं श्रीवासुदेवं नानारत्नविघट्टितम् ॥ २२ ॥ पौरुषेण च सूक्तेन नानागन्धोदकैः शुभैः । पश्चामृतपञ्चगव्यै-

---

सखी परमरूपवती शर्मिष्ठाको ऐसे स्थानपर रक्खा जहाँ हर समय अपने नेत्रोंके सामने न रहे १७तदनंतर दुःखित,शोकसे व्याकुल, भयभीत, राजकुमारी शर्मिष्ठा,प्रतिदिन सौ दासियों के साथमें देवयानीकी सेवा शुश्रूषा करनेलगी १८एक समय शर्मिष्ठा जङ्गलमें गङ्गाके तटपर बैठीहुई रो रही थी, उसी समय क्या देखा, कि–महर्षि विश्वामित्र स्त्रियोंसे घिरेहुए बैठे हैं १९ और स्वयं व्रत धारणकरके सुगंधयुक्त द्रव्योंसे शोभायमान हो रहे हैं, पुण्यगंधा परमरूपवती स्त्रियें उनके चारों ओर बैठी हैं और वह विश्वामित्रजी धूप दीप, पुष्पमाला और अनेकों प्रकारकी सामग्रियोंसे उन स्त्रियोंको पूजन कररहे हैं ॥२०॥ महर्षि विश्वामित्रजीने वेदीके बीचमें उत्तम चिन्होंसे अष्टदल कमल बनाया था.वेदीके चारों कोनोंपर चार केलेके वृक्ष खड़े थे,एक डेरेमें सुवर्णका सिंहासन शोभायमान होरहा था,उसके ऊपर अतिसुन्दर नानाप्रकारके रत्नोंसे शोभायमान वासुदेव भगवान्‌की मूर्त्ति विराजमान होरही थी२१॥२२सूतजी कहते हैं,कि–हे शौनकादि ऋषियों ! जिसप्रकार विश्वामित्र ऋषिने

र्यथामन्त्रैर्द्विजेरितैः ॥ २३ ॥ स्नापयित्वा भद्रपीठे कर्णिकायां प्रपूजयेत् । पञ्चभिर्दशभिर्वापि षोडशैरुपचारकैः ॥ २४ ॥ पाद्यमर्घ्यंश्रमहरं शीतलं सुमनोहरम् । परमानन्दजनकं गृहाण परमेश्वर ! ॥ २५ ॥ दूर्वाचन्दनगन्धाढ्यमर्घ्यं युक्तं प्रयत्नतः । गृहाण रुक्मिणीनाथ ! प्रसन्नस्य मम प्रभो ! ॥ २६ ॥ नानातीर्थोद्भवं वारि सुगन्धि सुमनोहरम् । गृहाणाचमनीयं त्वं श्रीनिवास श्रिया सह॥२७॥ नानाकुसुमगन्धाढ्यं सूत्रग्रथित मुत्तमम् । वक्षःशोभाकरं चारु माल्यं नय सुरेश्वर॥२८॥ तन्तु

उन स्त्रियोंको पूजन कराया था, उसकी विधि यह है, कि-पुरुषसूक्तका पाठ करके अनेकों प्रकारके सुन्दर गंधयुक्त जलसे पंचामृतसे और पंचगव्यसे ब्राह्मणोंके उच्चारण कियेहुए मंत्रोंसे वासुदेव भगवान्को स्नानकराकर सुन्दर सिंहासनमें कमलदल पर स्थापन करे और षोडश उपचारोंके द्वारा, पंद्रह उपचारोंके द्वारा अथवा दश उपचारोंके द्वारा पूजन करे २३॥ २४ और इसप्रकार ईश्वरकी प्रार्थना करे, कि-हे परमेश्वर! यह पाद्य परिश्रमको दूर करनेवाला, सुशीतल, मनोहर और परमआनंद देने वाला है, इसकारण आप इसको ग्रहण करिये २५ हे प्रभो! हे रुक्मिणीनाथ! यह अर्घ, दूर्वा, चंदन तथा और सुगंधित पदार्थों का समूह मैंने बड़े परिश्रमसे इकट्ठा किया है, आप प्रसन्न होकर इसको ग्रहण करिये २६ हे श्रीनिवास! यह जल अनेकों तीर्थों से इकट्ठा कियाहुआ, सुगंधियुक्त और अतिमनोहर है, आप लक्ष्मीसहित इस आचमनको ग्रहण करिये २७ हे देवाधिदेव! ये मालायें अनेकों प्रकारके सुगंधित पुष्पोंसे शोभायमान हो रही हैं, सूत्रमें गुथीहुई और अतिउत्तम हैं, ये हृदयको शोभा देनेवाली और अतिसुन्दर हैं, आप इनको ग्रहण करिये ।२८।

सन्तानसंधानरचितं वन्धनं हरे । गृहाणावरणशुद्धं निरावरण ! सप्रिय ! ॥ २९ ॥ यज्ञसूत्रमिदं देव ! प्रजापतिविनिर्मितम् । गृहाण वासुदेव ! त्वं रुक्मिण्या रमया सह ॥ ३० ॥ नानारत्नसमायुक्तं स्वर्णमुक्ताविचित्रितम् । प्रियया सह देवेश! गृहाणाभरणं मम ॥ ३१ ॥ दधिक्षीरगुडान्नादिपूपलड्डुकखण्डकान् । गृहाण रुक्मिणीनाथ ! सनाथं कुरु मां प्रभो ! ३२ कर्पूरागुरुगन्धाढ्य परमानन्ददायकम् । धूपं गृहाण वरद ! वैदर्भ्या प्रियया सह ॥ ३३ ॥ भक्तानां गेहशक्तानां संसारध्वान्तनाशनम् । दीपमालोकय विभो ! जगदालोकनादर ! ३४ श्यामसुन्दर ! पद्माक्ष ! पीताम्बर ! चतुर्भुज ! । प्रपन्नं पाहि

हे हरे!तुम आवरण रहित हो तथापि तंतुओंके संयोगसे जिसके जोड़ मिलेहुए हैं, ऐसे इसविशुद्ध वस्त्रको आप अपनी परमप्रिया लक्ष्मीसहित ग्रहण करिये २९ हे देव ! हे वासुदेव ! यह यज्ञसूत्र (यज्ञोपवीत) ब्रह्माजीका रचाहुआ है, आप रमा और रुक्मिणीसहित इस यज्ञोपवीतको ग्रहण करिये ३० हे देवदेव ! अनेकों प्रकारके रत्नोंसे युक्त और सुवर्ण तथा मोतियों का बनाहुआ यह आभूषण आप अपनी प्रिया रुक्मिणीसहित ग्रहणकरिये ३१ हे रुक्मिणीनाथ ! दधि, दूध,गुड़ अन्न पुए लड्डू बरफी आदि ग्रहण करिये,हे प्रभो!हमें सनाथ करिये ३२ हे वरदान देनेवाले प्रभो ! प्रिया रुक्मिणीसहित परम आनन्ददायक कपूर और अगरकी सुगंधयुक्त इस धूपको ग्रहण करिये ३३ हे प्रभो! तुम संसारमें आसक्त भक्त पुरुषोंके संसाररूप अंधकारके समूहको दूर करनेवाले हो, तुम जगत्के देखने के निमित्त इस दीपकको स्वीकार करो ३४ हे कमलदलनयन! हे पीतांबरधर ! हे श्यामसुन्दर ! हे चतुर्भुज ! हे देवेश !

देवेश ! रुक्मिण्या सहिताच्युत ! ॥ ३५ ॥ इति तासां व्रतं दृष्ट्वा मुनिं नत्वा सुदुःखिता । शर्मिष्ठा मिष्टवचना कृताञ्जलिरुवाच ताः ॥ ३६ ॥ शर्मिष्ठोवाच । राजपुत्रीं दुर्भगां मां स्वामिना परिवर्जिताम् । त्रातुमर्हथ हे देव्यो व्रतेनानेन कर्मणा ३७ श्रुत्वा तु ता वचस्तस्याः कारुण्याच्च किंयत् कियत् । पूजोपकरणं दत्त्वा कारयामासुरादरात् ॥ ३८ ॥ व्रतं कृत्वा तु शर्मिष्ठा लब्ध्वा स्वामिनमीश्वरम् । सूत्वा पुत्रान् सुसन्तुष्टा सम्भूत् स्थिरयौवना ॥ ३९ ॥ सीता चाशोकवनिकामध्ये सरमया सह । व्रतं कृत्वा पतिं लेभे रामं राक्षसनाशनम् ॥ ४० ॥ बृहदश्वप्रसादेन कृत्वेमं द्रौपदी व्रतम् । पतियुक्ता दुःखमुक्ता बभूव स्थिरयौवना ॥४१॥ तथा रमा सिते पक्षे वैशाखे द्वादशीदिने ।

हे अच्युत ! हे मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ, रुक्मिणी और आप हमारी रक्षा करिये ३५ इस विधिसे पूजन करती हुई स्त्रियोंको देखकर दुःखिता शर्मिष्ठा उनके समीप गई और महर्षि विश्वामित्रजीको प्रणाम करके हाथ जोड़ेहुए मधुर वचनोंसे कहने लगी ३६ शर्मिष्ठा बोली, कि-हे, देवियो ! मैं दुर्भाग्या राजकन्या हूँ, मैं पतिके सङ्गकी दुःखिनी हूँ. तुम इस व्रतका उपदेश देकर मेरा रक्षा करो ३७ वे स्त्रियें शर्मिष्ठाकी यह बात सुनकर दया से आर्द्र होगई, और उन्होंने पूजाकी कुछ २ सामग्री अपने पाससे देकर आदरके साथ उस शर्मिष्ठाको व्रत कराया ३८ इसप्रकार व्रत करनेके अनन्तर शर्मिष्ठाने राजा ययातिरूप पति को प्राप्त होकर प्रसन्नहृदयसे पुत्र उत्पन्न किया और स्थिरयौवना हुई ३९ अशोकवाटिकामें सीता सरमाके साथ इस व्रतको करके राक्षसोंके नाशक श्रीरामचन्द्रजीको प्राप्त हुई ४० बृहदश्वके अनुग्रहसे द्रौपदी इस व्रतको करके पतियुक्त, दुःख-

जामदग्न्याद् व्रतं चक्रे पूर्णं वर्षचतुष्टयम् ॥ ४२ ॥ पट्टसूत्रं करे बद्ध्वा भोजयित्वा द्विजान् बहून् । भुक्त्वा हविष्यं क्षीराक्तं सुमृष्टं स्वामिना सह ॥ ४३ ॥ बुभुजे पृथिवीं सर्वामपूर्वां स्वजनैर्वृता । सा पुत्रौ सुषुवे साध्वी मेघमालबलाहकौ ॥ ४४ ॥ देवानामुपकर्त्तारौ यज्ञदानतपोव्रतैः । महोत्साहौ महावीर्यौ सुभगौ कल्किसम्मतौ ॥ ४५ ॥ व्रतवरमिति कृत्वा सर्वसम्पत्समृद्ध्या, भवति विदिततत्त्वा पूजिता पूर्णकामा । हरिचरणसरोजद्वन्द्वभक्त्यैकताना, व्रजति गतिमपूर्वां ब्रह्मविद्भिरगम्याम्॥

श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

हीन और स्थिरयौवना हुई ४१ इसप्रकार ही रमाने वैशाख मासके शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिनसे चार वर्ष पर्यन्त यह रुक्मिणीव्रत धारण किया था ॥४२॥ रमाने हाथमें पट्टसूत्र (वरणाका सूत्र) बाँधकर अनेकों ब्राह्मणोंको भोजन कराया, फिर अपनेआप पतिके साथ उत्तम,शुभ, दुग्धयुक्त हविष्यान्नका भोजन किया ॥ ४३ ॥ कुटुम्बियोंके साथ कल्किजी अखंड भूमंडलको भोगनेलगे, तदनन्तर पतिव्रता रमाके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न हुए, उनमेंसे एकका नाम मेघमाल और दूसरेका नाम बलाहक रक्खा४४ये दोनों पुत्र कल्कि भगवान्के प्रिय, सौभाग्यशाली, महाबली और परम उत्साही हुए, ये दोनों भी यज्ञ, दान, तप, और व्रतोंके द्वारा देवताओंको प्रसन्न करने लगे ॥४५॥ जो इस व्रतको करेंगे वे सब प्रकारकी सम्पत्तियोंको पावेंगे, उनको तत्त्वज्ञान प्राप्त होगा, वे इस लोकमें पूजनीय और पूर्णमनोरथ होंगे, विशेष कर इस व्रतके द्वारा श्रीहरिके चरणकमलोंमें अनन्यभक्ति होनेसे ब्राह्मणोंको अपूर्व और दुर्लभ गतिकी प्राप्ति होगी४६

सूत उवाच । एतद्वः कथितं विप्रा व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम् । अतःपरं कल्किकृतं कर्म यच्छृणुत द्विजाः ॥ १ ॥ सम्भले वसतस्तस्य सहस्रपरिवत्सराः । व्यतीता भ्रातृपुत्रस्वज्ञातिसम्बन्धिभिः सह ॥२॥ शम्भले शुशुभे श्रेणी सभापणकचत्वरैः । पताकाध्वजचित्राढ्यै र्यथेन्द्रस्यामरावती ॥ ३ ॥ यत्राष्टषष्टितीर्थानां सम्भवः शम्भलेऽभवत् । मृत्योर्मोक्षः क्षितौ कल्केरकल्कस्य पदाश्रयात् ॥ ४ ॥ वनोपवनसन्ताननानाकुसुमसंकुलैः । शोभितं शम्भलं ग्रामं मन्ये मोक्षपदं भुवि ॥ ५ ॥ तत्र कल्किः पुरस्त्रीणां नयनानन्दवर्द्धनः । पद्मया रमया कामं रराम जगतीपतिः ॥ ६ ॥ सुराधिपप्रदत्तेन कामगेन रथेन वै ।

श्रीसूतजी कहते हैं, कि–हे ऋषियों ! मैंने तुमसे त्रिलोकी में प्रसिद्ध यह रुक्मिणीव्रत कहा, इसके उपरान्त कल्कि भगवान्ने जो जो कर्म किये उनको कहता हूँ, सुनो ॥१॥ इसप्रकार कल्कि भगवान्ने भ्राता, पुत्र, जाति, सम्बन्धी और कुटुम्बियोंसहित सम्भलग्राममें एक हजार वर्षपर्यन्त निवास किया ॥२॥ अमरावतीकी समान बाजार और वेदी आदिसे सम्भलग्राममें कल्किजीकी सभा परमशोभित हुई ॥३॥ उस सम्भलग्राममें अड़सठ तीर्थोंका निवास हुआ, जहाँ मरण होनेपर कल्कि भगवान्के चरणकमलोंका आश्रय होनेसे संपूर्ण पापोंका नाश और मोक्षपदकी प्राप्ति होती है ॥४॥ नाना प्रकारके पुष्पोंसे भरा वनवाटिकाओंसे शोभायमान वह संभल ग्राम संपूर्ण पृथ्वीपर मोक्षका देनेवाला है ॥ ५ ॥ नगरकी स्त्रियाके नेत्रोंको आनंद देनेवाले त्रिलोकीनाथ कल्कि भगवान् उस संभलग्राममें पद्मा और रमासहित यथेष्ट क्रीड़ा करनेलगे ॥६॥ वह कल्कि भगवान् देवराज इन्द्रके दियेहुए

नदीपर्वतकुञ्जेषु द्वीपेषु परया मुदा ॥ ७ ॥ रममाणो विशन्पद्मारमाद्याभी रमापतिः । दिवानिशं न बुबुधे स्त्रैणश्च कामलम्पटः ॥ ८ ॥ पद्मामुखामोदसरोजशीधुवासोपभोगी सुविलासवासः । प्रभूरनीलेन्द्रमणिप्रकाशे गुहाविशेषे प्रविवेश कल्किः ॥ ९ ॥ पद्मा तु पद्माशतरूपरूपा रमा च पीयूषकलाविलासा । पतिं प्रविष्टं गिरिगह्वरे ते नारीसहस्राकुलिते स्वगाताम् ॥१०॥ पद्मा पतिं प्रेक्ष्य गुहानिविष्टं रन्तुं मनोज्ञा प्रविवेश पश्चात् । रमाबलायूथसमन्विता तत्पश्चाद्गता कल्किमहोग्रकामा ॥ ११ ॥ तत्रेन्द्रनीलोत्पलगह्वरान्ते कान्ताभिरात्मप्रतिमाभिरीशम् । कल्किञ्च दृष्ट्वा नवनीरदाभं ततः स्थितं प्रस्त-

---

यथेच्छ विचरनेवाले रथसे हृदयमें परमप्रसन्न होतेहुए नदी पर्वत, कुञ्ज और अनेकों द्वीपोंमें जाकर रमा और पद्मा आदि स्त्रियोंके सहित विहार करनेलगे, उन अपनी स्त्रियोंमें प्रेम करनेवाले कल्कि भगवान्को दिनरात बीततेहुए नहीं मालूमहुए ७॥८तदनन्तर एक समय पद्मा के मुखकी सुगन्धिरूप कमलकी मधुगन्धको भोगनेवाले परमविलासी कल्कि भगवान् बहुतसी इन्द्रनील मणियोंसे शोभायमान किसी पर्वतकी गुफामें घुसे ॥९॥ कमलनेत्रा,सुवर्णवर्णा पद्मा और अमृतकी पात्ररूप रमा पतिको पर्वतकी गुहामें घुसतेहुए देखकर हजारों स्त्रियोंको साथमें लिये आप भी तहाँगई ॥१०॥ मनोहारिणी पद्मा पतिको गुफाके भीतर घुसतेहुए देखकर विहार करनेकी इच्छासे पीछे २ चलीगई, कल्किजीके साथ विहार करनेकी अत्यन्त अभिलाषावाली रमा भी स्त्रियोंकी मण्डलीको साथमें लिए उसके पीछे २ चलीगई ११ तदनन्तर गुहाके भीतर जाकर पद्माने देखा, कि—उस इन्द्रनील

रथन्मुमोह ॥ १२ ॥ रमा सखीभिः प्रमदाभिरार्त्ता विलोक यन्ती दिशमाकुलाक्षी । पद्मापि पद्माशतशोभमानां विषण्णचित्ता न बभौ स्म चार्त्ता ॥१३॥ भूमौ लिखन्ती निजकज्जलेन कल्किं शुकं तं कुचकुंकुमेन । कस्तूरिकाभिस्तु तदग्रमग्रे निर्म्माय चालिङ्ग्य ननाम भावात् ॥ १४ ॥ रमा कलालापपरा स्तुवन्ती कामार्दिता तं हृदये निधाये । ध्यात्वा निजालङ्करणैः प्रपूज्य तस्थौ विषण्णा करुणावसन्ना ॥ १५ ॥ क्षणात्समुत्थाय रुरोद रामा कलापिनः कण्ठनिभं स्वनाथम्। हृदापगूढं न पुनः प्रलभ्य कामार्दितेत्याह हरे प्रसीद ॥१६॥

मणियोंकी गुहामें नवीन मेघमंडलकी समान कांतिमान् ईश्वर कल्कि भगवान् अपने योग्य रूपवती स्त्रियोंके सहित बैठे हैं यह देख पद्मा मोहित हो पत्थरकी समान अचेत होकर गिर पड़ी ॥१२॥ रमा भी अपने साथकी स्त्रियोंके सहित दुःखत होकर व्याकुल नेत्रोंसे चारों ओरको देखनेलगी, सैकड़ों पद्माओंकी समान शोभायुक्त पद्मा भी हृदयमें खिन्न और कातर होकर एकसाथ तेजोहीन हो गिरपड़ी ॥१३॥ पद्माके नेत्रोंके कज्जलसे पृथ्वी काली होगई. वह कुचोंके कुंकुमसे कल्कि भगवान् और शुकको तथा कस्तूरीसे समीपकी भूमि को रँगकर उसके ऊपर गिरपड़ी ॥१४॥ मधुर बोलनेवाली और कामदेवके वेगसे पीडित रमा, कल्कि भगवान्का ध्यान करके,तथा हृदयमें कल्कि भगवान्को स्थापनकर अपने अंतःकरण रूप फूलसे उनका पूजन कर अत्यन्त दुःखित और खिन्न हो पृथ्वीपर गिरपडी ॥१५॥फिर क्षणभरके बाद उठकर मोरकी समान ऊँचेस्वरसे रोनेलगी,वह अपने हृदय के स्वामी कल्कि भगवान्का आलिङ्गन न पाकर कामदेवके

पद्मापि निर्मुच्य निजाङ्गभूषाश्चकार धूलीपटले विलासम् । कण्ठञ्च कस्तूरिकयापि नीलं कामं निहन्तुं शिवतामुपेत्य१७ कलावतीनां कलयाकलय्य क्षीणं क्षणानां हरिरार्त्तबन्धुः । कामप्रपूराय ससार मध्ये कल्किः प्रियाणां सुरतोत्सवाय१८ ताः सादरेणात्मपतिं मनोज्ञाः । करेणवः यूथपतिं यथेयुःसानन्दभावा विशदालुब्धा वनेषु रामाः परिपूर्णकामाः ॥१६॥ वैभ्राजके चैत्ररथे सुपुष्पे सुनन्दने मन्दरकन्दरान्ते । रेमे स रामाभिरुदारतेजा रथेन भास्वत्खगमेन कल्किः ॥ २० ॥ पद्मामुखाब्जामृतपानमत्तो रमासमालिङ्गनवासरङ्गी । वराङ्ग-

वशमें हो कहनेलगी, कि-हे हरे ! प्रसन्न हूजिये १६ पद्मा भी शरारके आभूषणोंको उतारकर धूलिमें लोटनेलगी, उसका शरीर धूलिसे धूसर और कंठ कस्तूरीसे नीला होनेके कारण ऐसा प्रतीत होता था, मानों इसने कामदेवका नाश करनेको शिवका रूप धारण किया है ॥ १७ ॥ आर्त्तबन्धु (दुःखितोंके दुःखोंको दूर करनेवाले) श्रीहरि कल्कि भगवान् व्याकुलचित्त प्रार्थना करतीहुई कामिनियोंकी विहार-वासना जानकर उनका मनोरथ पूर्ण करनेको और सुरत सुख साधनेको उनके बीचमें पहुंचे१८जिसप्रकार हथिनियोंका समूह यूथपतिसे मिलता है, तिसीप्रकार वह मनोहारिणी स्त्रियें आनन्दयुक्त निर्मलहृदयसे उस वनमें आदरपूर्वक अपने पतिसे मिलकर पूर्णमनोरथ हुई१६ फिर परमतेजस्वी कल्कि भगवान् रमणियोंके समूहसहित आकाशगामी प्रकाशवान् रथमें बैठकर सुन्दर पुष्पोंसे शोभायमान वैभ्राजक नामकवनमें, कुबेरके बगीचेमें और मन्दराचलकी गुहामें क्रीड़ा करनेलगे॥ २० ॥ पद्माके मुखकमलके मधुपानसे

नानां कुचकुंकुमाक्तो रतिप्रसंगे विपरीतयुक्तः। मुखे विदष्टा रसनाविशिष्टामोदः स कल्किर्न हि वेद देहम् २१ रमाः समानाः पुरुषोत्तमं तं वक्षोजमध्ये विनिधाय धीराः। परस्पराश्लेषण-जातहासा रेमुर्मुकुन्दं विलसच्छरीराः २२ ततः सरोवरं त्वरा स्त्रियो ययुः क्लमज्वराः। प्रियेण तेन कल्किना वनान्तरं विहारिणा ॥ सरः प्रविश्य पद्मया विमोहरूपया तया। जलं ददुर्वराङ्गनाः करेणवो यथा गजम् २३ इति ह युवतिलीला लोकनाथः स कल्किः, प्रिययुवतिपरीतः पद्मया रामयाद्यः। निजरमणविनोदैः शिक्षयँल्लोकवर्गान्, जयति विबुधभर्त्ता शंभले

मत्त रमाके आलिङ्गनसे उत्पन्न हुई सुगन्धिके लोभी और रमणियोंके कुचोंके कुंकुमसेसे रँगेहुए कल्किजी विपरीत रति प्रसङ्ग करनेलगे, स्त्रियें उनके मुखका चुम्बन करनेलगीं. वह स्त्रियोंके मुखरूप अमृतका पान करनेमें ऐसे आसक्त होगये कि-उनको अपने शरीरकी भी सुध नहीं रही २१ समान रूप-वती धीर स्त्रियें पुरुषोत्तम मुकुन्दको कुचोंपर धारण करके क्रीड़ा करनेलगीं, उनके पुलकित शरीरोंमें परस्पर आलिङ्गन देख सब सखियें उपहास करनेलगीं २२ फिर श्रमसे घबड़ाई हुई स्त्रियें, वनमें विहार करनेवाले प्रियपति कल्किजीके साथ शीघ्रतासे एक सरोवर पर गईं;जिसप्रकार हथिनियें यूथपति के ऊपर जल छिड़कती हैं तिसीप्रकार वे सब स्त्रियें पद्माके साथ उस सरोवरमें स्नान करके कल्किजीके शरीरपर जल छिड़कनेलगीं २३ रमणियोंके साथ लीला करनेमें आनंद पाने वाले देवताओंके स्वामी वासुदेव आदिनाथ त्रिलोकीपति कल्कि भगवान् जलसे भीगगए.उन्होंने संभलग्राममें अपनी प्रिया रमाके साथ और प्रियतमा अन्य कामिनियोंके साथ

वासुदेवः ॥ २४ ॥ ये शृण्वन्ति वदन्ति भावचतुरा ध्यायन्ति सन्तः सदा कल्केः श्रीपुरुषोत्तमस्य चरितं कर्णामृतं सादराः। तेषां नो सुखयन्त्ययं सुररिपोर्दास्याभिलापं विना संसारः परिमोचनञ्च परमानन्दामृताम्भोनिधेः ॥ २५ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कल्कि-
वर्णनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

सूत उवाच । ततो देवगणाः सर्वे ब्रह्मणा सहिता रथैः । स्वैः स्वैर्गणैः परिवृताः कल्किं द्रष्टुमुपाययुः ॥ १ ॥ महर्षयः सगन्धर्वाः किन्नराश्चाप्सरोगणाः । समाजग्मुः प्रमुदिताः शम्भलं सुरपूजितम् ॥२॥ तत्र गत्वा सभामध्ये कल्किं कमललोचनम् । तेजोनिधिं प्रपन्नानां जनानामभयप्रदम् ॥ ३ ॥

विहारादि करके सब प्राणियोंको उपदेश दिया २४ जो पुरुष आदरपूर्वक कानोंको अमृतरूप श्रीपुरुषोत्तम कल्किभगवान्के चरित्रको सुनेंगे, कहेंगे अथवा चिंतवन करेंगे, उनको सुरहरि श्रीभगवान्के दासभावके सिवाय इस परम आनन्दरूपअमृतके समुद्ररूप संसारसे मुक्त होना सुखदायक नहीं प्रतीत होगा२५ अठारहवां अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं, कि-हे शौनकादि ऋषियो! तदनन्तर देवता और ब्राह्मणोंके मंडल, अपने२सेवकोंसहित रथपर चढ़कर कल्कि भगवान्का दर्शन करनेको आनेलगे१ महर्षिमंडल गंधर्वोंके झुंड, किन्नरोंके समूह और अप्सराओंके समूह हृदयमें प्रसन्न होतेहुए देवताओंके भी पूजनीय सम्भलग्राम में आए२ और उन कल्कि भगवान्की सभामें आकर देखा, कि-तेजके पुञ्जरूप कमलदलनयन कल्कि भगवान् शरणागत पुरुषोंको अभयदान दे रहे हैं॥३॥उन कल्किभगवान्की कांति

नीलजीमूतसंकाशं दीर्घपीवरबाहुकम् । किरीटेनार्कवर्णेन स्थिरविद्युन्निभेन तम् ॥ ४ ॥ शोभमानं द्युमणिना कुण्डलेनाभिशोभिना । सहर्षालापविकसद्वदनं स्मितशोभितम् ॥ ५ ॥ कृपाकटाक्षविक्षेपपरिनिष्टविपक्षकम् । तारहारोल्लसद्वक्षश्चन्द्रकान्तमणिश्रिया ॥ ६ ॥ कुमुद्वतीमोदवहं स्फुरच्छक्रायुधाम्बरम् । सर्वदानन्दसन्दोहरसोल्लसितविग्रहम् ॥७॥ नानामणिगणोद्योतदीपितं रूपमद्भुतम् । ददृशुर्देवगन्धर्वा ये चान्ये समुपागताः ॥ ८ ॥ भक्त्या परया युक्ताः परमानन्दविग्रहम् । कल्किं कमलपत्राक्षं तुष्टुवुः परमादरात् ॥ ९ ॥ देवा ऊचुः । जयाशेषसंक्लेशकक्ष प्रकीर्णानलोद्दा-

श्याममेघकी समान हैं, उनके मस्तकपर स्थिर बिजलीकी समान और सूर्यकी तुल्य तेजपुञ्जयुक्त किरीट शोभित होरहा है४ मुखमंडल सूर्यमंडलकी समान प्रकाशवान् कुंडलोंसे विराज रहा है विशेषकर उनका मुखकमल हर्षयुक्त बोलचालसे खिल रहा है और कुछ हास्यसे शोभा भी पारहा है ॥५॥ उनके कृपाकटाक्षोंसे शत्रुओंकी भी रक्षा होरही है, उनके वक्षःस्थलपर स्थितहारमें पुईहुई चंद्रकांतमणिकी कांतिसे कुमोदिनीको परम-आनंद प्राप्त होरहा है, उनके वस्त्र इंद्रधनुषकी समान शोभा पारहे हैं, उनका शरीर सदा परमानन्द रससे प्रसन्न होरहा है ६॥७ अनेकों प्रकारकी मणियोंकी किरणोंसे उनका सर्वोत्तमरूप प्रकाशवान् होरहा है, देवता, गन्धर्व तथा सभामें आये हुए और २ प्राणियोंने भी कल्कि भगवान्का ऐसा रूप देखा ८ वे सब परमभक्ति और आदरसे परमानन्दरूप कमलदल-नयन कल्कि भगवान्की स्तुति करनेलगे ९ देवता बोले, कि-हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे भूतनाथ! हे अनन्त ! सम्पूर्ण

असंकीर्णहीश देवेश विश्वेश भूतेश भावः । तत्रानन्त चान्तः-
स्थिताऽङ्गास्त्ररत्न प्रभाभातपदाजितानन्तशक्ते ॥ १० ॥
प्रकाशीकृताशेषलोकत्रयात्र वक्षः स्थले भास्वत्कौस्तुभश्याम।
मेघौघराजच्छरीरद्विजाधीश पुञ्जानन त्राहि विष्णो सदाराः
वयं त्वां प्रसन्ना सशेषः ॥ ११ ॥ यद्यस्त्यनुग्रहोऽस्माकं व्रज
वैकुंठमीश्वर ! त्यक्त्वा शासितभूखण्डं सत्यधर्माविरोधतः १२
कल्किस्तेषामिति वचः श्रुत्वा परमहर्षितः । पात्रमित्रैः
परिवृतश्चकार गमने मतिम् ॥ १३ ॥ पुत्रानाहूय चतुरो
महाबलपराक्रमान् । राज्ये निक्षिप्य सहसा धर्मिष्ठान्प्रकृति-

भावपदार्थ आपके शरीरमें स्थित हैं, तुम्हारे शरीरमें धारण
कियेहुए रत्नों की कांतिके सङ्गसे शोभायमान तुम्हारे चरणों
से शेषजीकी शक्ति तिरस्कारको प्राप्त होरही है, हे ईश्वर !
तुम सम्पूर्ण क्लेशरूप तृणोंके ढेरमें लगेहुए प्रचण्ड अग्निकी
समान हो, तुम्हारी जय हो १० तुमसे ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड
प्रकाशित होता है, तुम श्यामवर्ण हो, तुम्हारे वक्षःस्थल पर
कौस्तुभमणि शोभा पारही है इससे ऐसा प्रतीत होता है, कि-
मानो श्यामवर्ण मेघमंडलके बीचमें चंद्रमा शोभित होरहा है,
हम स्त्री और सेवकोंसहित आपकी शरणागत हैं, हे भगवन् !
आप हमारी रक्षा करिये, हे ईश्वर ! यदि हमारे ऊपर आपकी
कृपा है तो सत्य तथा धर्मसे रक्षा कियेहुए इस भूतलको त्याग
कर अब वैकुण्ठधामकी यात्रा करिये ११॥१२कल्कि भगवान्
देवताओंकी यह प्रार्थना सुनकर परमआनन्दित हुए और
योग्य मित्रोंके साथ वैकुंठधामको जानेका विचारकिया ।१३।
तदनन्तर उन कल्कि भगवान्ने प्रजाओंके परमप्रिय, धर्मात्मा,
महाबली और परमपराक्रमी चारों पुत्रोंको बुलाकर तत्काल

प्रियान् ॥ १४ ॥ ततः प्रजा समाहूय कथयित्वा निजाः कथाः । प्राह तान्निजनिर्याणं देवानामुपरोधतः ॥१५॥ तच्छ्रुत्वा ताः प्रजाः सर्वा रुरुदुर्विस्मयान्विताः।तं प्राहुः प्रणताः पुत्रा यथा पितरमीश्वरम् ॥१६॥ प्रजा ऊचुः—भो नाथ सर्वधर्मज्ञ नास्मान्त्यक्तुमिहार्हसि । यत्र त्वं तत्र तु वयं यामः प्रणतवत्सल ॥१७॥ प्रिया गृहा धनान्यत्र पुत्राः प्राणास्तवानुगाः । परत्रेह विशोकाय ज्ञात्वा त्वां यज्ञपूरुषम् ॥१८॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा सान्त्वयित्वा सदुक्तिभिः। प्रययौ क्लिन्नहृदयः पत्नीभ्यां सहितो वनम् ॥ १९ ॥ हिमालयं मुनिगणैराकीर्णं जाह्नवीजलैः । परिपूर्णं देवगणैः सेवितं मनसःप्रियम् ॥२०॥ गत्वा

राजतिलक करदिया ।।१४।। फिर उन कल्कि भगवानने सब प्रजाको बुलाकर अपना वृत्तान्त सुनाया और कहा, कि—देवताओंके आग्रहसे मुझे अपने वैकुण्ठधामको जानापड़ेगा १५ प्रजाके लोग यह बात सुनते ही आश्चर्यमें होगये और रोनेलगे जिसप्रकार पुत्र पितासे बातें किया करते हैं,तिसीप्रकार नम्रता पूर्वक कल्किजीको प्रणाम करके वे प्रजाके लोग कहनेलगे ।।१६।। प्रजाके लोग बोले कि—हे नाथ! आप सम्पूर्ण धर्म्म को जानते हो,हमें त्यागकर जाना आपको उचित नहीं है,आप भक्तवत्सल हो, आप जहाँ जायंगे तहाँ ही हम भी जायंगे १७ इस संसारमें धन, पुत्र और घर सबको ही प्यारे होते हैं,परन्तु आप यज्ञपुरुष भगवान् हैं, आपसे सम्पूर्ण रोगोंकी शान्ति होती है यह जानकर हमारे प्राण आपके ही पीछे२ जायँगे१८ कल्कि भगवान्ने प्रजाके लोगोंकी यह बात सुनकर अनेकों युक्तियोंसे उनको समझाया और हृदयमें खिन्न हुई दोनोंस्त्रियों को साथमें लेकर वनको चलेगए १९ फिर वह कल्कि भगवान

विष्णुः सुरगणैर्वृतश्चारुचतुर्भुजः । उषित्वा जान्हवीतीरे सस्माराऽऽत्मानमात्मना ॥२१॥ पूर्णज्योतिर्मयः साक्षी परमात्मा पुरातनः । बभौ सूर्यसहस्राणां तेजोराशिसमद्युतिः॥२२॥ शंखचक्रगदापद्मशार्ङ्गाद्यैः समभिष्टुतः । नानालंकरणानाञ्च समलङ्करणाकृतिः ॥ २३ ॥ ववृषुस्तं सुराः पुष्पैः कौस्तुभामुक्तकन्धरम् । सुगन्धिकुसुमासारैर्देवदुन्दुभिनिःस्वनैः २४ तुष्टुवुर्मुमुदुः सर्वे लोकाः सस्थाणुजङ्गमाः । दृष्ट्वा रूपमरूपस्य निर्याणे वैष्णवं पदम् ॥२५॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं पत्युः कल्केर्महात्मनः । रमा पद्मा च दहनं प्रविश्य तमवापतुः ॥ २६ ॥

मुनियोंसे घिरेहुए गङ्गाजलसे परिपूर्ण देवताओंके सेवन किये हुए और अंतःकरणको परम आनंद देनेवाले हिमालय पर्वत परगये और गङ्गाके तटपर देवताओंके बीचमें बैठ चतुर्भुज विष्णुरूप धारण करके अपना स्मरण करनेलगे२०॥२१उस समय उनके तेजका पुञ्ज हजारों सूर्यकी समान शोभायमान होनेलगा, वह पूर्णज्योतिःस्वरूप साक्षिस्वरूप सनातन परमात्मा परमकांतिको पानेलगे२२उनकी आकृति अनेकोंप्रकार के आभूषणोंका आभूषणरूप होगई, शंख, चक्र, गदा, पद्म, शार्ङ्ग आदि आकर उनकी उपासना करनेलगे॥२३॥ उनका हृदय कौस्तुभमणिसे शोभायमान होनेलगा, देवता उनके ऊपर सुगन्धित पुष्पोंकी वर्षा करनेलगे,चारोंओर देवताओंकी दुन्दुभियं बजनेलगीं ॥ २४॥ जिस समय कल्कि भगवान्ने अपने विष्णुरूपमें प्रवेश किया, उस समय उन अरूप विष्णु भगवान्का परम अद्भुतरूप देखकर सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम मोहित होगए और स्तुति करनेलगे ॥२५॥ रमा और पद्मा अपने पति महात्मा कल्कि भगवान्के उस परम आश्चर्य

धर्मः कृतयुगं कल्केराज्ञया पृथिवीतले। निःसपत्नौ सुसुखिनौ भूलोकं चेरतुश्चिरम् ॥ २७ ॥ देवापिश्च मरुः कामं कल्केरादेशकारिणौ । प्रजाः संपालयन्तौ तु भुवं जुगुपतुः प्रभू२८ विशाखयूपभूपालः कल्केर्निर्याणमीदृशम् । श्रुत्वा स्वपुत्रं विषये नृपं कृत्वा गतो वनम् ॥ २९ ॥ अन्ये नृपतयो ये च कल्केर्विरहकर्षिताः। तं ध्यायन्तो जपन्तश्च विरक्ताः स्युर्नृपासने ॥ ३० ॥ इति कल्केरनन्तस्य कथां भुवनपावनीम् । कथयित्वा शुकः प्रायान्नरनारायणाश्रमम् ॥३१॥ मार्कण्डेयादयो ये च मुनयः प्रशमायनाः । श्रुत्वानुभावं कल्केस्ते तं ध्यायन्तो जगुर्यशः ॥३२॥ यस्यानुशासनाद्भूमौ नाधर्मिष्ठाः प्रजा-

रूपको देखकर अग्निमें प्रवेश करके उनको प्राप्त होगई २६ धर्म्म और सत्ययुग कल्कि भगवान्‌की आज्ञासे भूतल पर शत्रुरहित हो सुखसे चिरकाल पर्यन्त विचरनेलगे ॥ २७ ॥ देवापि और मरु नामक दोनों राजा कल्किभगवान्‌की आज्ञाके अनुसार प्रजाका पालन और भूमण्डलकी रक्षा करनेलगे२८ विशाखयूप नामक राजा कल्कि भगवान्‌का इसप्रकार स्वर्ग लोकको जाना सुनकर अपना राज्य पुत्रको दे वनको चला गया ॥ २९ ॥ और जो २ राजे कल्कि भगवान्‌के विरहसे व्याकुलहुए,वे सब राजा सिंहासनको त्यागकर केवल कल्कि भगवान्‌के नामका जप और कल्कि भगवान्‌की मूर्त्तिका ध्यान करनेलगे ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी, इसप्रकार अनन्त कल्कि भगवान्‌का जगत्‌को पवित्र करनेवाला चरित्र वर्णन करके नरनारायणाश्रमको चलेगये ॥ ३१ ॥ परमशान्तस्वभाव मार्कण्डेय आदि ऋषि, कल्कि भगवान्‌का माहात्म्य सुनकर उन कल्कि भगवान्‌का ध्यान और उनके ही यशका गान

जनाः । नाल्पायुषो दरिद्राश्च न पाखण्डा न हैतुकाः ३३ नाधयो व्याधयः क्लेशा देवभूमात्मसम्भवाः । निर्मत्सराः सदानन्दा बभूवुर्जीवजातयः ॥३४॥ इत्येतत्कथितं कल्केरवतारं महोदयम् । धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं परम् ३५ शोकसन्तापपापघ्नं कलिव्याकुलनाशनम् । सुखदं मोक्षदं लोके वांछितार्थफलप्रदम् ॥ ३६ ॥ तावच्छास्त्रप्रदीपानां प्रकाशो भुवि रोचते । भाति भानुः पुराणाख्यो यावल्लोकेऽति कामधुक् ॥ ३७॥ श्रुत्वैतद् भृगवंशजो मुनिगणैः सार्कं सहर्षो वशी ज्ञात्वा सूतममेयबोधविदितं श्रीलोमहर्षात्मजम् । श्रीकल्के

करने लगे ॥३२॥ जिन कल्कि भगवान्के राज्यको पालन करते समय भूतलपर कोई भी प्रजाका पुरुष अधर्मी, थोड़ी उमरमें ही मरनेवाला, दरिद्र, पाखण्डी और कपटाचारी देखनेमें नहीं आया ३३ सब ही प्राणी आधिव्याधिरहित क्लेशरहित और ईर्षाभावरहित तथा देवताओंकी समान सदा आनन्दमय रहते थे ॥ ३४ ॥ उन ही महानुभाव कल्कि भगवान्के अवतारकी यह कथा वर्णन की है. इसको सुननेसे धनकी वृद्धि, यशकी वृद्धि, आयुकी वृद्धि और परममङ्गल होता है तथा अन्तमें स्वर्गलोक मिलता है ॥ ३५ ॥ विशेषकर इस कल्कि भगवान्के चरित्रको सुननेसे पाप और शोकसन्ताप दूर होते हैं, कलिकालका दोष दूर होता है सुखकी प्राप्ति, मोक्षकी प्राप्ति और अभीष्टफलकी प्राप्ति होती है ॥ ३६ ॥ जिससमयतक इस लोकमें इच्छित फल देनेवाले कल्किपुराणरूप सूर्यका उदय नहीं था, तबतक ही इस भूतलपर और शास्त्ररूप दीपकोंका प्रकाश था ॥३७॥ भक्तिदायक श्रीहरि कल्कि भगवान्के निर्मल अवताररूप वाक्योंको सुनकर जिते-

रवतारवाक्यममलं भक्तिमदं श्रीहरेः, शुश्रूषुः पुनराह साधु-वचसा गङ्गास्तवं सत्कृतः ॥ ३८ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कल्कि-निर्याणो नाम ऊनत्रिंशतितमोऽध्यायः ॥ १६ ॥

शौनक उवाच । हे सूत ! सर्वधर्मज्ञ यत्त्वया कथितं पुरा। गङ्गां स्तुत्वा समायाता मुनयः कल्किसन्निधिम् ॥ १ ॥ स्तवं तं वद गङ्गायाः सर्वपापप्रणाशनम् । मोहदं शुभदं भक्त्या शृण्वतां पठतामिह ॥ २ ॥ सूत उवाच । शृणुध्वमृषयः सर्वे गङ्गास्तवमनुत्तमम् । शोकमोहहरं पुंसामृषिभिः परिकीर्त्तितम् ॥ ३॥ ऋषय ऊचुः । इयं सुरतरङ्गिणी भवनवारिधेस्ता-

---

न्द्रिय, सर्वत्र सत्कारको पानेवाले भृगुनन्दन शौनक ऋषि आदि सब मुनिगण प्रसन्न हुए और लोमहर्षणके पुत्र सूतजी को परमज्ञानी जाना, फिर श्रीगङ्गाजीको स्तुति सुननेकी इच्छासे कहनेलगे ॥ ३८ ॥ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त १६

शौनकादि ऋषि बोले, कि-हे सूतजी ! तुम सब प्रकारके धर्मको जाननेवाले हो, तुमने पहिले कहा था, कि-मुनिगण गङ्गाजीकी स्तुति करके कल्कि भगवान्के समीप चलेगए १ वह मुनियोंकी कीहुई गङ्गाजीकी स्तुति आप सुनाइये ? उस गङ्गाकी स्तुतिको भक्तिपूर्वक पढ़ने वा सुननेसे कल्याण होता है, और सम्पूर्ण पापोंका नाश होकर अन्तमें मुक्ति मिलती है ॥ २ ॥ यह सुन सूतजी बोले, कि-हे ऋषियों ! शोक मोहको दूर करनेवाली ऋषियोंकी कहीहुई परमसुन्दर गङ्गाकी स्तुतिको कहता हूँ सुनो ॥ ३ ॥ यह सुरनदी गङ्गा सकल प्राणियोंको संसारसमुद्रसे तारदेती है, यह विष्णु भगवान्के

रिणी स्तुता हरिपदाम्बुजादुपगता जगत्संसदः । सुमेरुशिखरामरप्रियजला मलक्षालिनी प्रसन्नवदना शुभा भवभयस्य विद्राविणी ॥ ४ ॥ भगीरथमथानुगा सुरकरींद्रदर्पापहा महेशमुकुटप्रभा गिरिशिरःपताकासिता । सुरासुरनरोरगैरजभवाच्युतैः संस्तुता विमुक्तिफलशालिनी कलुषनाशिनी राजते ५ पितामहकमण्डलुप्रभवमुक्तिबीजालता श्रुतिस्मृतिगणस्तुता द्विजकुलालवालावृता । सुमेरुशिखराभिदा निपतिता त्रिलोकावृता । सुधर्मफलशालिनी सुखपलाशिनी राजते ॥ ६ ॥

चरणकमलसे पृथ्वीतल पर प्रकट हुई है, सब ही इसकी स्तुति करते हैं, इसका जल सुमेरु पर्वत पर निवास करने वाले देवताओंको परमप्रिय है, इसके जलसे पापरूपी कीच धुलजाती है इस कल्याणी देवीके प्रसन्न होने पर संसारके सम्पूर्ण भय भागजाते हैं ॥ ४ ॥ यह गङ्गा राजा भगीरथके पीछे २ आई थी, इसने ऐरावत हाथीके दर्पको दूर किया था, यह गङ्गा शिवजीके मुकुटका प्रभावरूप है, यह हिमालय के शिखरकी स्वेत पताकारूप है, देवता, असुर, दैत्य, मनुष्य, नाग, ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी आदि सब ही इसकी स्तुति करते हैं, यह पापोंके पुञ्जका नाश करती है और अनेकों को मुक्तिरूप फलकी देनेवाली है ॥ ५ ॥ यह भागीरथी ब्रह्माजीके कमण्डलुसे उत्पन्न हुई है और लतास्वरूप है, मुक्ति इसका बीज है, सम्पूर्ण वेद और स्मृति इसकी स्तुति करते हैं ब्राह्मणोंके कुल इसके आलवाल (थंवला) रूप हैं, यह भागीरथीरूप लता सुमेरुके शिखरको भेदकर उत्पन्न हुई है, त्रिलोकीमें फैलरही है श्रेष्ठ धर्म इसका फल है, और

चरद्विहगमालिनी सगरवंशमुक्तिप्रदा मुनीन्द्रवरनन्दिनी दिवि मता च मन्दाकिनी। सदा दुरितनाशिनी विमलवारिसंदर्शन-प्रणामगुणकीर्त्तनादिषु जगत्सु संराजते ॥७॥ महाभिषसुताङ्गना हिमगिरीशकूटस्तनी सफेनजलहासिनी सितमरालसंचारिणी। चलल्लहरिसत्करा वरसरोजमालाधरा रसोल्लसितगामिनी जलधिकामिनी राजते ॥ ८ ॥ क्वचित्कलकलस्वना क्वचिदधीरयादोगणाः क्वचिन्मुनिगणैः स्तुता क्वचिदनन्तसंपूजिता। क्वचिद्रविकरोज्वला क्वचिदुदग्रपाताकुला क्वचिज्जनविगाहिता जयति भीष्ममाता सती॥६॥ स एव कुशलो

सुखरूप पत्तोंसे शोभायमान होरही ॥ ६ ॥ इसके निर्मल जलका दर्शन करनेसे, इसको प्रणाम करनेसे और इसके गुणोंका कीर्त्तन करनेसे संसारके सम्पूर्ण पाप नष्ट होजाते हैं, इसके तटपर और जलमें पक्षी विहार करते हैं,इसके ही प्रभाव से सगरके वंशमें उत्पन्न होनेवाले राजाओंकी मुक्ति हुई थी, यह महर्षि जन्हुकी पुत्री है और यही देवलोकमें मन्दाकिनी नामसे प्रसिद्ध है ॥ ७ ॥ यही राजा शन्तनुकी रानी हुई थी, हिमालय का शिखर इसका स्तनरूप है, झागोंके समूहसे शोभायमान जल इसका हास्यरूप है, स्वेतवर्णके हंस इसका गमनरूप हैं, तरङ्गोंके समूह इसके हाथरूप हैं, खिले हुए कमलोंकी पंक्ति इसकी मालारूप है, यही रंसीली ठवनसे समुद्रकी स्त्रीरूप होकर गमन कर रही है, ॥ ८ ॥ जिसकी किसी स्थल पर मुनिगण स्तुति कररहे हैं कहीं अनन्तदेव पूजा कर रहे हैं, कहीं कलकल शब्द होरहा है, कहीं बड़े २ नाके आदि जलजन्तु विचर रहे हैं, कहीं सूर्यनारायण

जनः प्रणमतीह भागीरथीं,स एव तपसां निधिर्जपति जान्हवीं सादरात् । स एव पुरुषोत्तमः स्मरति साधु मन्दाकिनीं, स एव विजयी प्रभुः सुरतरंगिणीं सेवते ॥१०॥ तवामलजलाचितं खगशृगालमीनक्षतं चलल्लहरिलोलितं रुचिरतीरजम्बालितम् । कदा निजवपुर्मुदा सुरनरोरगैः संस्तुतोऽप्यहं त्रिपथगामिनी ! प्रियमतीव पश्याम्यहो ॥ ११ ॥ त्वत्तीरे वसतिं तवामलजलस्नानं तव प्रेक्षणं त्वन्नामस्मरणं तवोदयकथासंलापनं पावनम् । गङ्गे मे तव सेवनैकनिपुणोऽप्यानन्दितश्चादृतः स्तुत्वा त्वद्गतपातको भुवि कदा शान्तश्चरि-

---

की किरणोंसे उज्ज्वल होरही है कहीं भयङ्कर शब्दके साथ जलकी धारा गिररही है और कहीं मनुष्योंकी मण्डलियें स्नान कर रही हैं, ऐसी सती भीष्ममाता गङ्गाकी जय हो ९ जो इस संसारमें जन्म लेकर श्रीभागीरथीको प्रणाम करता है, वह ही चतुर है, जो आदरपूर्वक श्रीगङ्गाजीके नामका जप करता है, वह ही परमतपस्वी है. जो भगवती मन्दाकिनी का स्मरण करता है वह ही पुरुषोंमें श्रेष्ठ है और जो भगवती भागीरथीकी सेवा करता है वह ही विजयी और प्रभु है १० हे त्रिपथगे ! वह कौनसा दिन होगा, जो मैं तेरे जलसे भीगे हुए पक्षी, शृगाल और मत्स्योंके आधे खाये हुए तथा चंचल तरङ्गोंमें लुढ़कते हुए और तटकी कींचमें सने हुए अपने प्रिय शरीरको देखूंगा और देवता; मनुष्य तथा नाग मेरी स्तुति करेंगे ॥११॥ हे गंगे ! वह समय कब होगा जो मैं तेरे तीर पर वास करूँगा, तेरे नामका स्मरण करूँगा, तेरे पवित्र अवतारकी कथाओंको सनूंगा, केवल तेरी ही सेवा करनेमें तत्पर

ष्याम्यहम् ॥ १२ ॥ इत्येतदृषिभिः प्रोक्तं गङ्गास्तवमनुत्तमम् । स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं पठनाच्छ्रवणादपि ॥ १३ ॥ सर्वपापहरं पुंसां बलमायुर्विवर्द्धनम् । प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने गङ्गासान्निध्यता भवेत् ॥ १४ ॥ इत्येतद्भार्गवाख्यानं शुकदेवान्मया श्रुतम् । पठितं श्रावितं चात्र पुण्यं धन्यं यशस्करम् ॥ १५ ॥ अवतारं महाविष्णोः कल्केः परममद्भुतम् । पठतां शृण्वतां भक्त्या सर्वाशुभविनाशनम् ॥ १६ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे गङ्गास्तवो नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

अत्रापि शुकसम्वादो मार्कण्डेयेन धीमता । अधर्मवंशकथनं कलेर्विवरणं ततः ॥ १ ॥ देवानां ब्रह्मसदनप्रयाणं

होऊँगा और आदरपूर्वक तेरी स्तुति करके पापशून्य होकर आनंद तथा शान्तियुक्त हृदयसे पृथ्वीतल पर विचरूँगा १२ इस ऋषियोंके कहे हुए परमसुन्दर गङ्गास्तोत्रका पाठ तथा श्रवण करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है,सर्वत्र यश फैलता है और आयु बढ़ती है १३ इस स्तोत्रका प्रातःकालमें,मध्यान्हकालमें अथवा सायङ्कालमें पाठ करनेसे तथा श्रवण करनेसे सदा गङ्गा की समीपता मिलती है,संपूर्ण पापोंका नाश होता है और बल तथा आयुकी वृद्धि होती है १४ हे शौनक ! मैंने शुकदेवजीसे यह आख्यान सुना था,इसके पढ़ने तथा सुननेसे पुण्य, धन तथा यशकी प्राप्ति होती है १५ परम अद्भुत विष्णुरूप कल्कि भगवान्के अवतारके चरित्रको पढ़ने और सुननेसे संपूर्ण अमङ्गल दूर होजाते हैं ॥ १६ ॥ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २० ॥

श्रीसूतजी कहते हैं, कि–हे शौनकादि ऋषियों ! इस कल्किपुराणमें पहले परमप्रवीण मार्कण्डेयजीके साथ शुक-

गोभुवा सह । ब्रह्मणो वचनाद्विष्णोर्जन्म विष्णुयशोगृहे २
सुमत्यां स्वांशकैर्भ्रातृचतुर्भिः शम्भले पुरे।पितुः पुत्रेण संवाद-
स्तथोपनयनं हरेः ॥३॥ पुत्रेण सह संवासो वेदाध्ययनमुत्त-
मम् । शस्त्रास्त्राणां परिज्ञानं शिवसंदर्शनं ततः ॥४॥ कल्केः
स्तवं शिवपुरो वरलाभः शुकापनम् । शम्भलागमनं चक्रे
ज्ञातिभ्यो वरकीर्त्तनम् ॥ ५ ॥ विशाखयूपभूपेन निजसर्वात्म-
वर्णनम् । महाभाग्याद्व ब्राह्मणानां शुकस्यागमनं ततः ॥६॥
कल्किना शुकसम्वादः सिंहलाख्यानमुत्तमम् । शिवदत्तवरा

देवजीका संवाद वर्णन किया है,फिर अधर्मके वंशका वर्णन है, फिर कल्कि भगवान्का वृत्तांत कहा है १ फिर गौ का रूप धारण करनेवाली पृथ्वीके साथ देवताओंका ब्रह्मलोक में जाना, तदनंतर ब्रह्माजीको प्रार्थनाके अनुसार विष्णुयश के यहाँ विष्णु भगवान्के जन्मकी कथा है ॥२॥ संभलग्राममें सुमतिके गर्भमें विष्णु भगवान्के अंशसे चार भ्राताओंकी उत्पत्ति, फिर पितापुत्रका संवाद, फिर कल्कि भगवान्के यज्ञोपवीतकी कथा है ३ फिर पिता पुत्रका सहवास, कल्कि भगवान्के वेदादि विद्या पढ़नेकी कथा,फिर कल्कि भगवान् के अस्त्रशस्त्र सीखनेकी कथा तथा शिवजीका दर्शन,कल्किजी की की हुई शिवजीकी स्तुति, शिवजीसे कल्किजीका वरदान पाना,शुकका मिलना,फिर कल्किभगवान्का संभलग्राममें लौट कर जाना फिर शिवजीके दियेहुए वरदानका वृत्तांत जाति के पुरुषोंसे कहना ४॥५ तदनन्तर विशाखयूप राजाके वृत्तांत में कल्किजीका निजस्वरूप वर्णन,ब्राह्मणोंका माहात्म्यकथन तदनन्तर शुकका आगमन ६ फिर कल्किजीके साथ शुक

पद्मा तस्या भूपस्वयंवरे ॥ ७ ॥ दर्शनाद्‌ भूपसंघानां स्त्रीभावपरिकीर्त्तनम् । तस्या विषादः कल्केस्तु विवाहार्थं समुद्यमः ॥८। शुकप्रस्थापनं दौत्ये तया तस्यापि दर्शनम् । शुकपद्मापरिचयः श्रीविष्णोः पूजनादिकम् ॥ ९ ॥ पादादि-देहध्यानञ्च केशान्तं परिवर्णितम् । शुकभूषणदानञ्च पुनः शुकसमागमः ॥ १० ॥ कल्केः पद्माविवाहार्थं गमनं दर्शनं तयोः । जलक्रीडाप्रसङ्गेन विवाहस्तदनन्तरम् ॥११॥पुंस्त्व-प्राप्तिश्च भूपानां कल्केर्दर्शनमात्रतः । अनन्तागमनं राज्ञा संवा-दस्तेन संसदि ॥ १२ ॥ पण्डत्वादात्मनो जन्म कर्म चात्र शिवस्तवः । मते पितरि तद्विष्णोः क्षेत्रे मायाप्रदर्शनम् १३

का वार्त्तालाप.शुकका सिंहलद्वीपका वृत्तांत कहना, शिवजीके वरदानसे स्वयम्वरमें पद्माके देखनेमात्रसे राजाओंके स्त्रीरूप होजानेका वृत्तांत,पद्माके दुःखका वर्णन,विवाहके लिये कल्कि जीका उद्योग७।८ फिर शुकको दूत बनाकर भेजना,पद्माका शुकको देखना,शुक और पद्माकी परस्पर पहिचान फिर विष्णु भगवान्‌की पूजा आदिका वर्णन ९ विष्णु भगवान्‌के केशसे लेकर चरण पर्यन्त ध्यानका वर्णन, फिर पद्माका शुक को आभूषण देना,तदनन्तर कल्किजीके साथ दूसरी बार शुकका आकर मिलना १० पद्माके साथ विवाह करनेके लिये कल्किजीका जाना,जलक्रीड़ाके वहानेसे पद्माके साथ कल्कि भगवान्‌का समागम, फिर विवाह ११ कल्किजीके दर्शनमात्र से राजाओंका पुरुषरूप होना, फिर अनन्त ऋषिका आना सभामें राजाओंके साथ अनन्तऋषिका संवाद १२ अनन्त ऋषिका पंडरूपसे जन्म कहना, शिवजीकी स्तुति, तदनन्तर

अत्राख्यानमनन्तस्य ज्ञानवैराग्यवैभवम् । राज्ञां प्रयाणं कल्केश्च पद्मया सह शम्भले ।। १४ ।। विश्वकर्मविधानञ्च वसतिः पद्मया सह । ज्ञातिभ्रातृसुहृत्पुत्रैः सेनाभिर्बुद्धनिग्रहः ।। १५ ।। कथितश्चात्र तेषाञ्च स्त्रीणां संयोधनाश्रयः । ततोऽत्र बालखिल्यानां मुनीनां स्वनिवेदनम् ।।१६।। सपुत्रायाः कुथोदर्या वधश्चात्र प्रकीर्तितः । हरिद्वारगतस्यापि कल्केर्मुनिसमागमः १७ सूर्यवंशस्य कथनं सोमस्य च विधानतः । रामस्य चरितं चारु सूर्यवंशानुवर्णने ।।१८।। देवापेश्च मरोः सङ्गो युद्धायात्र प्रकीर्तितः । महाघोरवने कोकविकोकविनिपातनम् ।। १९ ।। भल्लाटगमनं तत्र शय्याकर्णादिभिः सह । युद्धं शशिध्वजेनात्र

अनन्त ऋषिके पिताका मरण होनेके अनन्तर विष्णुक्षेत्रमें मायाका देखना १३ अनन्तका आख्यान, अनन्त ऋषिके ज्ञान और वैराग्यका वर्णन,राजाओंका जाना, फिर पद्माके साथ कल्किजीका संभलमें जाना १४ फिर विश्वकर्माका संभल में नगरी बनाना,तदनन्तर पद्मा और जातिके पुरुषोंके साथ तथा भ्राता और मित्रोंके साथ और पुत्रोंके साथ सेनाको साथमें ले कल्कि भगवान्का विश्वकर्माकी बनाईहुई नगरी में निवास करना,फिर बौद्धोंका पराजय करना १५ बौद्धों की स्त्रियोंका संग्रामके लिये आना,फिर बालखिल्य नामक मुनियोंका आना और आत्मसमर्पण करना १६ फिर पुत्र सहित कुथोदरी नामक राक्षसीका वध करना,हरिद्वारमें जाने पर कल्किजीसे मुनियोंका मिलना १७ फिर सूर्यवंशका वर्णन, चन्द्रवंशका वर्णन सूर्यवंशके वर्णनमें श्रीरामचरित्रका वर्णन १८ संग्राम करनेके लिये मरु और देवापिका आना, फिर

सुशान्ताभक्तिकीर्त्तनम् ॥ २० ॥ युद्धे कल्केरानयमं धर्मस्य च कृतस्य च। सुशान्तायाः स्तवस्तत्र रमोद्वाहस्तु कल्किना २१ सभायां पूर्वकथनं निजगृध्रत्वकारणम् । मोक्षः शशिध्वजस्यात्र भक्तिमार्थयितुर्विभोः ॥२२॥ विषकन्यामोचनञ्च नृपाणामभिषेचनम् । मायास्तवः शम्भलेषु नानायज्ञादिसाधनम् २३ नारदाद्विष्णुयशसो मोक्षश्चात्र प्रकीर्त्तितः । कृतधर्मप्रवृत्तिश्च रुक्मिणीव्रतकीर्त्तनम् ॥ २४ ॥ ततो विहारः कल्केश्च पुत्र पौत्रादिसम्भवः । कथितो देवगन्धर्वगणागमनमत्र हि ॥ २५ ॥ ततो वैकुण्ठगमनं विष्णोः कल्केरिहोदितम् । शुकप्रस्थान-

---

महाघोर कोक विकोकका नाश १९ कल्किजीका भल्लाटनगर में जाना, शय्याकर्ण आदिके साथ संग्राम करना, राजा शशिध्वजके साथ कल्कि भगवान्का युद्ध, सुशांताकी भक्ति का वर्णन २० फिर संग्रामभूमिसे कल्कि, धर्म और सत्ययुग का लाना, सुशांताकी कीहुई कल्किजी की स्तुति, तहाँ ही कल्किजीके साथ रमाका विवाह॥२१॥सभामें शशिध्वजके पहले जन्मके वृत्तांतका वर्णन, अपने गृध्रपनेका कारण कहना विभु कल्कि भगवान्से भक्तिकी प्रार्थना करनेवाले शशिध्वज की मुक्ति होना२२फिर विषकन्याको शापसे छुटाकर राजाओंका अभिषेक, फिर मायाकी स्तुति और सम्भलग्राममें अनेकों यज्ञ करना२३तदनन्तर नारदजीके उपदेशसे विष्णुयशकी मुक्ति, फिर सत्ययुगके धर्मकी प्रवृत्ति और रुक्मिणी व्रतका वर्णन २४ तदनन्तर कल्किजीका विहार, कल्किजीके पुत्र पौत्र आदिकी उत्पत्ति, फिर सम्भलग्राममें देवता, गधर्व आदिका आना २५ फिर विष्णुरूप कल्किजीका वैकुण्ठ-

सुचितं कथयित्वा कथाः शुभाः ॥२६॥ गङ्गास्तोत्रमिह प्रोक्तं पुराणे मुनिसंमतम्। जगतामानन्दकरं पुराणं पंच लक्षणम्२७ सकल्कसिद्धिदं लोकैः षट् सहस्रं शताधिकम्। सर्वशास्त्रार्थ-तत्त्वानां सारं श्रुतिमनोहरम् ॥ २८ ॥ चतुर्वर्गप्रदं कल्कि-पुराणं परिकीर्त्तितम् । प्रलयान्ते हरिमुखान्निःसृतं लोक-विस्तृतम् ॥ २९ ॥ अहो व्यासेन कथितं द्विजरूपेण भूतले। अत्र कल्केर्भगवतः प्रभावं परमाद्भुतम् ॥३०॥ ये भक्त्यात्र पुराणसारममलं श्रीविष्णुभावाप्लुतं शृण्वन्तीह वदन्ति साधु-

---

जाना वर्णन किया है, यह सम्पूर्ण कथा कहकर शुकदेवजीका बदरिकाश्रमको जाना २६ फिर इस पुराणमें मुनियोंकी कही हुई गङ्गाजीकी स्तुतिका वर्णन है,यह कल्किपुराण सर्ग,प्रति-सर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित इन पाँच लक्षणोंसे युक्त और संसारको परमआ नन्द देनेवाला है२७जो कलि-कालके पातकोंसे भरेहुए हैं,उनको भी इसके सुननेसे सिद्धि प्राप्त होती है इसमें छः हजार एक सौ श्लोक हैं, यह सब शास्त्रोंके अर्थके तत्त्वका सार है, इसको सुनते ही पुरुषों का चित्त चुरजाता है ॥२८॥ कहा है,कि-इस कल्किपुराण से धर्म, अर्थ,काम, मोक्षरूप चतुर्वर्गकी प्राप्ति होती है, प्रलय के अन्तमें श्रीहरिके मुखसे उत्पन्न होकर यह कल्किपुराण संसारमें फैला है ॥ २९ ॥ भगवान् वेदव्यासजीने द्विजरूप से भूतलपर अवतार लेकर इस पुराणका वर्णन किया है, इसमें विष्णुरूप कल्कि भगवान्का परम अद्भुत चरित्र वर्णन किया है ॥ ३० ॥ जो पुण्य-क्षेत्रमें, पुण्य-तीर्थमें, पुण्य-आश्रममें साधुपुरुषोंकी मण्डलीमें ब्राह्मणोंको आदरपूर्वक

सदसि क्षेत्रे सुतीर्थाश्रमे । दत्त्वा गां तुरगं गजं गजवरं स्वर्णं द्विजायादरात्, वस्त्रालङ्करणैः प्रपूज्य विधिवन्मुक्तास्त एवोत्तमाः ॥ ३१ ॥ श्रुत्वा विधानं विधिवद्व ब्राह्मणो वेदपारगः । क्षत्रियो भूपतिर्वैश्यो धनी शूद्रो महान्भवेत् ॥ ३२ ॥ पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् । विद्यार्थी लभते विद्यां पठनाच्छ्रवणादपि ॥ ३३ ॥ इत्येतत्पुण्यमाख्यान लोमहर्षणजो मुनिः । श्रावयित्वा मुनीन्भक्त्या ययौ तीर्थाटनादृतः ॥३४॥ शौनको मुनिभिः सार्द्धं सूतमामन्त्र्य धर्मवित् । पुण्यारण्ये हरिं ध्यात्वा ब्रह्म प्राप सहर्षिभिः॥३५॥ लोमहर्षणजं सर्वपुराणज्ञं

गौ; घोड़ा, हाथी, गजराज और सुवर्णका दान करके तथा वस्त्रभूषण आदिसे विधिपूर्वक पूजन करके भक्तिपूर्वक विष्णुभावयुक्त इस परम निर्मल पुराणके सारको सुनेंगे अथवा पढ़ेंगे,वे मनुष्योंमें श्रेष्ठ और मोक्षपदके भागी होंगे३१ इस कल्किपुराणको विधिपूर्वक सुननेसे ब्राह्मण वेदोंके पारगामी होते हैं, क्षत्रिय राजा होते हैं, वैश्य धनवान् होते हैं और शूद्र महत्त्वको प्राप्त होते हैं ॥३२॥ इस कल्किपुराण को सुनने अथवा पढ़नेसे पुत्रकी इच्छा करनेवालेको पुत्रकी प्राप्ति होती है धनकी इच्छा करनेवालेको धनकी प्राप्ति होती है और विद्याकी इच्छा करनेवाले को विद्याकी प्राप्ति होती है ॥३३॥ लोमहर्षणके पुत्र सूतजी भक्तिपूर्वक शौनकादि ऋषियोंसे यह आख्यान कहकर तीर्थयात्रा करनेको चलेगए ॥ ३४ ॥ योगशास्त्रमें परमप्रवीण धर्मात्मा शौनक ऋषि मुनियों सहित सूतजीके साथ सम्भाषण करके नैमिषारण्यमें श्रीहरिका ध्यान करके ब्रह्मलोकको प्राप्त होगए३५

यतव्रतम् । व्यासशिष्यं मुनिवरं तं सूतं प्रणमाम्यहम् ॥३६॥ आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः । इममेव सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥ ३७ ॥ वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा । आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ३८ सजलजलदवर्णो वातवेगैकवाहः करधृतकरवालः सर्वलोकैकपालः । कलिकुलवनहन्ता सत्यधर्मप्रणेता कलयतु कुशलं वः कल्किरूपः स भूपः ॥३९॥ इति श्रीकल्किपुराणे ऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

मैं सम्पूर्ण पुराणोंको जाननेवाले यमनियमधारी व्यासजीके शिष्य मुनिवर लोमहर्षणके पुत्र सूतजीको प्रणाम करता हूँ३६ सम्पूर्ण शास्त्रोंको आवृत्ति करके और वारंवार विचार करनेसे यही सिद्धान्त निश्चित हुआ है, कि–सदा श्रीनारायणका ही ध्यान करना चाहिये ॥ ३७ ॥ वेद, रामायण, भारत और पुराणोंके आदि मध्य तथा अन्तमें श्रीहरिका ही कीर्त्तन है ॥ ३८॥ जो जलपूर्ण मेघमण्डलकी समान श्यामवर्ण कांति-युक्त हैं, जिनकी सवारी वायुकी समान वेगवान् है,जिन्होंने हाथमें तलवार धारण करके सब लोकोंकी रक्षा की है और जिन्होंने सम्पूर्ण अधर्मी राजाओंकी सेनाका संहार करके सत्य–धर्मको स्थापन किया है वह कल्किरूप महाराज तुम सबोंका कल्याण करें ॥ ३९ ॥

इति श्रीकल्किपुराणस्य पश्चिमोत्तरदेशीय-मुरादाबादनिवासि-भारद्वाजगोत्रोद्भव श्रीयुतप० भोलानाथत्मज ऋषिकुमारोप-नामक प० रामस्वरूपकृता भाषाटीका

समाप्ता ।

शब्दसूची

य

र

श्लोकानुक्रमणिका

उ

ऊ

ऋ